आचार्य तुलसी
संवाद प्रबुद्धजनो के साथ

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

आचार्य तुलसी
संवाद प्रबुद्धजनों के साथ
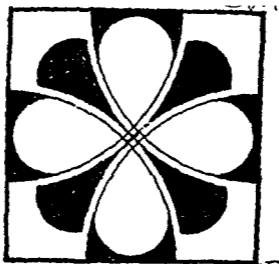
संपादिका

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

आदर्श साहित्य सघ, चूरू (राजस्थान)

परदादाजी स्वर्गीय महालचन्दजी मूलचन्दजी डागा (सरदारशहर) की पुण्य स्मृति म
श्री पूनमचन्द राकेशकुमार पकजकुमार डागा, चेन्नई (तमिलनाडु) क सोजन्य से प्रकाशित

प्रकाशक कमलेश चतुर्वेदी प्रबन्धक, आदर्श साहित्य सघ, चूरू (राजस्थान)
मूल्य पचास रुपये / द्वितीय सस्करण १९९८, मुद्रक पवन प्रिटर्स नवीन शाहदरा,
दिल्ली ३२

ACHRAYA TULSI SANVAD PRABUDHJANON KE SATH Rs 50 00
by Sadhvipramukha Kanakprabha

उपोद्घात

जिज्ञासा मनुष्य की प्रकृति है। एक छोटा बच्चा जिज्ञासा के साथ नया-नया ज्ञान प्राप्त करता है। एक बड़े से बड़ा विद्वान भी जिज्ञासा करता है, स्वय उसका उत्तर खोजता है और दूसरों से उसका समाधान पाना चाहता है। प्रश्नोत्तर की शैली का विकास धर्म, दर्शन, साहित्य योग आदि सभी क्षेत्रों में हुआ है।

गौतम स्वामी ने जिज्ञासा की—भते ! ये जो द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय जीव है, इनके आन, अपान तथा उच्छ्वास और नि श्वास को हम नही जानते हैं, नही देखते है। क्या ये जीव आन, अपान तथा उच्छ्वास और नि श्वास करते हैं ?'

भगवान महावीर ने उत्तर दिया—'हा, गौतम ! ये जीव आन अपान तथा उच्छ्वास और नि श्वास करते हैं।'

जयती ने जिज्ञासा की—'भते ! जीव का सुप्त रहना अच्छा है या जागृत रहना अच्छा है ?'

महावीर ने कहा—'किसी जीव का सुप्त रहना अच्छा है, किसी जीव का जागृत रहना अच्छा है।'

पार्वती ने पूछा—'देव ! बताओ, यह ब्रह्माण्ड किससे उत्पन्न हुआ है ? इसका पालन कैसे होता है ?'

शिव ने उत्तर दिया—'देवी ! यह ब्रह्माण्ड तत्त्वो से उत्पन्न हुआ है। तत्त्वो से उसका पालन होता है और तत्त्वों में ही पुन लीन हो जाता है। इसलिए ब्रह्माण्ड का निर्माण तत्त्वों से होता है।'

प्राचीन ग्रन्थों में सवादशैली के आधार पर लिखा हुआ विपुल साहित्य है। गीता में भी इस शैली का बहुत उपयोग हुआ है। यह शैली आज भी उतनी ही मान्य है, जितनी आज से तीन हजार वर्ष पहले थी। प्राचीन ग्रन्थों में सवाद की विषयवस्तु विश्व विश्व की व्यवस्था और वैश्विक समस्या प्रमुख रही है। यत्र-तत्र वर्तमान की समस्याओ का भी स्पर्श हुआ है। वर्तमान में सवाद की विषय-वस्तु समाज-व्यवस्था राजनीति अर्थव्यवस्था सम्प्रदाय आदि जीवन से जुड़ी हुई समस्या का सकुल है।

सामाजिक भूमिका में विचार-विनिमय का बहुत मूल्य है। विचार-विनिमय के लिए सवादशैली का स्वयसिद्ध मूल्य है। आचार्य तुलसी ने लम्बे समय तक लबी-लबी यात्राए की। हजारों-हजारों व्यक्तियों से सपर्क हुआ। उत्कृष्ट कोटि के विद्वान और अनपढ ग्रामीण सब प्रकार के लोग सपर्क में आए। वार्ता के सैकड़ों-सैकड़ों प्रसग बने। जितने प्रश्नोत्तर हुए, उन सबका सकलन होता तो विशाल साहित्य-राशि तैयार हो जाती। वैसा नही हो सका। फिर भी जितना सकलन हुआ है, वह काफी महत्त्वपूर्ण है, वर्तमान समस्या का समाधान देने वाला है।

समय-समय पर सकलित सवादों का साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा ने सपादन किया है। प्रस्तुत पुस्तक मे प्रबुद्धजनों के साथ हुए सवादों का सग्रहण है। यह सवादशैली का ग्रन्थ इतना व्यापक है कि अनेक ग्रन्थों के पढने से जो ज्ञान नही होता, वह सहज ही इस एक ग्रन्थ से हो सकता है। सहज सरलता, सरसता और स्वाभाविक अभिव्यक्ति आचार्य तुलसी के जीवन की विशेषताए रही हैं। उनके परिमल से पाठक का मन प्रमुदित और सुवासित होगा, ऐसा विश्वास है।

जैन विश्वभारती
लाडनू (राजस्थान)
२८ मई १९९८

आचार्य महाप्रज्ञ

सम्पादकीय

ससार के प्राणियों में मनुष्य के पास जैसा उर्वर मस्तिष्क है, अन्य किसी के पास नही है। मस्तिष्कीय ज्ञानतन्तुओं के आधार पर वह चिन्तन के नए-नए स्रोत खोजता है। मनुष्य के पास सोचने की शक्ति नही होती तो वह आज जहा खड़ा है, वहा नही मिलता। वटवृक्ष की विराटता उसके बीज में सन्निहित है। उपजाऊ धरती की गोद पाकर बीज अपने अस्तित्व को मिटाता है तो दो कोंपले फूटकर बाहर आती है। वह छोटा-सा अकुर धीरे-धीरे बढ़ता है और छतनार वृक्ष बनकर एक अच्छा विश्रामस्थल बन जाता है। चिन्तन को बहुआयामी बनाने के लिए चिन्तनशील व्यक्तियो का सम्पर्क अपेक्षित रहता है। सम्पर्क-स्थापना में यात्रा की भूमिका जितनी महत्त्वपूर्ण है, विद्वद्गोष्ठियों में सभागिता और प्रबुद्धजनो के साथ बातचीत भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है।

आचार्यश्री तुलसी के सम्पर्कसूत्रों का जाल उत्तरोत्तर विस्तारशील रहा है। धर्मसघ के आचार्य होने के नाते तेरापथ समाज के लोग उनके सान्निध्य का लाभ प्रारम्भ से ही उठाते थे। आचार्यश्री के कर्तृत्व से तेरापथ की खिड़किया और दरवाजे सबके लिए खुल गए। अणुव्रत के रूप में सम्प्रदायातीत धर्म का प्रवर्तन करने के बाद देश के साहित्यकार, पत्रकार तथा अन्य प्रबुद्ध लोग भी उनके कार्यक्रम से जुड़ते गए। उन्होने सामाजिक और राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य मे समय-समय पर आचार्यश्री के साथ वार्तालाप किया। उनके सवादों से वैचारिक मन्थन से सत्य का जो नवनीत निकला, वह युग-युग तक मानवमस्तिक को पोषण देता रहेगा।

आचार्यश्री का जीवन व्यक्तिगत कम और सार्वजनिक अधिक रहा। उन्होने अपनी सुविधा-दुविधा को कभी प्राथमिकता नही दी। जब कभी लोग मिलने के लिए आते जिज्ञासाओं का ज्वार साथ लेकर आते, आचार्यश्री उन्हें समय देने मे कमी नही रखते। अनेक बार घण्टा-आधा घण्टा तक भिक्षा आई हुई पड़ी रहती, उनका वार्तालाप पूरा नही होता। वार्तालाप के लिए समय पूर्व निर्धारित ही हो, यह भी जरूरी नहीं था। इसलिए उसका अधिग्रहण करने की निश्चित व्यवस्था भी नही थी। व्यवस्था के अभाव

में सेकड़ों उपयोगी प्रसग विस्मृत हो गए। आज जो कुछ सुरक्षित बचा है, उसका श्रेय कुछ साधु-साध्वियों को दिया जा सकता है, जिन्होंने अपनी रुचि या प्रेरणा से उन सवादो को सलक्ष्य सुना और लिखा।

आचार्यश्री तुलसी के साथ देश के विशिष्ट लोगों के जितने सवाद सुरक्षित हैं, उनमे अनेक सवादों की सुरक्षा मे मुनि गुलाबचन्दजी निर्मोही, मुनि किशनलालजी और मुनि धर्मरुचिजी की सक्रिय भूमिका रही है। दिन हो या रात, मुनित्रय ने निष्ठा से उन सवादों को सुना, लिपिबद्ध किया और पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से पाठकों तक पहुचाया। कुछ वर्ष पूर्व आचार्यवर के समग्र साहित्य को सुव्यवस्थित करने का चिन्तन स्थिर हुआ। उसी समय से कुछ साध्वियों को यत्र-तत्र बिखरे हुए विचारो, सदेशों व वार्ताओ को सकलित करने का निर्देश दे दिया। सवाद-सकलन का दायित्व साध्वी विभाश्रीजी और साध्वी शुभप्रभाजी ने सभाला। उन्होने निष्ठा के साथ समय लगाकर सवाद एकत्रित किए। सभव है कुछ सामग्री छूट भी गई हो। अवशिष्ट सामग्री को खोजने आर सकलित करने का काम भी यथासमय पूरा करना ही है।

बिखरे हुए मोतियो को एक-सूत्र मे पिरोने से हार बन जाता हे। बिखरे हुए विचार-कणा को सुव्यवस्थित करने से साहित्य तेयार हो जाता है। कोई भी साहित्य भातिक आकार ग्रहण करता है, उससे पहले रचनाकार के भीतर उसका जन्म हो जाता हें। कुछ साहित्यकार लिखने या बोलने से पहले परिस्थिति को अनुकूल बनाते हैं। अमुक प्रकार की मनोदशा मे ही उनके विचारो का वातायन खुल पाता हे। कुछ लेखक लिखने के लिए एकान्त स्थान का चुनाव करते हैं। कुछ लेखको को प्राकृतिक सुषमा की अभिप्रेरणा प्रभावित करती है। कुछ लेखक चाय की चुस्कियो के साथ कलम की कारीगरी करते हें। कुछ लोग तो बातचीत के लिए भी हर समय तेयार नही होते। किन्तु आचार्यश्री की रचनाधर्मिता मे कभी कोई अवरोध नही आया। उनके सामने ऐसी कोई प्रतिबद्धता नही रही। प्रात, साय मध्याह्न और रात्रि—कोई भी समय हो उनकी रचनाप्रक्रिया मे अन्तर नही देखा। उनकी इस विलक्षणता का एक साक्ष्य मै स्वय रही हू। विगत ढाई-तीन दशको से उनकी साहित्य-यात्रा मे मुझे भी साथ रहने का सुअवसर उपलब्ध हुआ। सैकड़ो बार उनसे डिक्टेशन लेने का मौका मिला। मैंने अपनी ओर से हजारों प्रश्न पूछे। विषय कितना ही नया क्यों न हो, उसके लिए पाच-दस मिनट भी अतिरिक्त चिन्तन नही करना पड़ा। इधर प्रश्न सामने आया और उधर उत्तर तैयार। जिन-जिन व्यक्तियों ने आचार्यश्री तुलसी के साथ सवाद स्थापित किया सभवत उन सबका ऐसा ही अनुभव है।

'आचार्य तुलसी सवाद प्रबुद्धजनों के साथ' पुस्तक के सवादों के व्यवस्थितीकरण में साध्वी कल्पलताजी ने पूरे मनोयोग से श्रम किया। श्रद्धेय आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने प्रस्तुत पुस्तक का उपोद्घात लिखकर हमारा उत्साह बढ़ाया। उनके आशीर्वाद से साहित्य-सपादन की यह यात्रा अनवरत चलती रहे, यह अभीप्सा है।

ऋषभद्वार साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा
लाडनू (राजस्थान)
२५ मई, १९९८

अनुक्रम

सवाद देश के प्रबुद्धजनों के साथ

सवाद विदेश के प्रबुद्धजनों के साथ

संवाद : देश के प्रबुद्धजनों के साथ

आचार्य तुलसी : डॉ० सम्पूर्णानन्द

[राजस्थान के राज्यपाल डॉ० सम्पूर्णानन्द आचार्यश्री तुलसी से भेट करने आए। डॉ० सम्पूर्णानन्द बहुत ही स्पष्ट और सुलझे हुए विचारो के धनी थे। अणुव्रत-आन्दोलन की विभिन्न गतिविधियों से वे बहुत प्रभावित थे। उन्होने *आचार्यश्री को श्रद्धापूर्वक नमस्कार किया और बैठ गए। बातचीत का प्रारम्भ* आचार्यश्री ने किया।]

आचार्यश्री— आज कई दिनों के पश्चात् पुन विचार-विमर्श का अवसर आया है।आपकी पीढ़ी यानी पुरानी पीढ़ी के लोगों से बात करने में हमें आनन्द आता है। किन्तु वह तो क्रमश जा रही है और नई पीढ़ी तैयार नही हो रही है। जो है वह उतनी अनुकूल भी नही है।

सम्पूर्णानन्द—हमें भी कभी-कभी ख्याल आता है कि जिस युग में हम जी रहे हैं, वह किसी पाप का प्रायश्चित्त है। नये व्यक्तियों से हमारा मेल नही होता है और पुराने जा रहे हैं।

आचार्यश्री—एक बार मैंने ढेबर भाई से भी कहा था कि नई पीढ़ी तैयार नही हो रही है, यह चिन्ता का विषय है। गाधीजी ने जिन व्यक्तियों को तैयार किया, उनमें से बहुत कम रहे हैं।

सम्पूर्णानन्द—अकेला व्यक्ति किससे बात करे, मनोविनोद भी नही हो सकता।

आचार्यश्री—मुझे भी इसका अनुभव है। मेरे समवयस्क साधु जब बहिर्विहारी हो गए तब उनका अभाव मुझे अक्सर खलता था। आजकल कुछ लेखन-कार्य भी चलता होगा ?

सम्पूर्णानन्द—नया तो इन दिनों में कुछ नही लिखा। कुछ महीने पहले बनारस से मेरी एक पुस्तक प्रकाशित हुई थी—'*वैदिक देव परिवार का विकास*'। उसके पश्चात् लेखन-कार्य प्राय स्थगित ही है।

[आचार्यश्री ने तेरापन्थ की साहित्य-साधना का विस्तार से परिचय दिया। डॉ० सम्पूर्णानन्द ने सद्य सम्पादित दशवैकालिक को बहुत गौर से देखा। वार्तालाप में

विभिन्न प्रसग उभरते रहे । आचार्यश्री ने अणुव्रत-समिति द्वारा नैतिक शिक्षा के सम्बन्ध मे किये जा रहे प्रयत्नों की भी चर्चा की ।]

डॉ॰ सम्पूर्णानन्द —नैतिक-शिक्षा के विभिन्न पहलुओ पर चिन्तन करने के लिए श्री श्रीप्रकाश की अध्यक्षता मे एक आयोग बैठा था। किन्तु वह अपने आपमें सफल नही हुआ। असफलता का मूल कारण यह था कि वे नैतिक-शिक्षा के आधार को नही पकड़ सके। धर्म को जब तक उसका आधार नही बनाया जाएगा, तब तक नैतिक शिक्षा पनप नही सकेगी। धर्म को आधार न बनाने का कारण यह था कि हमारे देश को 'धर्म-निरपेक्ष' घोषित किया गया। धर्म-निरपेक्षता के नाम पर देश का बहुत बड़ा अहित हुआ है। 'धर्म-निरपेक्ष' शब्द ही भ्रम पैदा करने वाला है। धर्म का अर्थ है—सत्य। क्या कोई भी देश सत्य से निरपेक्ष रह सकता है? धर्म-निरपेक्षता की ओट म स्वार्थ, दभ और शोषण की अभिवृद्धि हुई है। धर्म के प्रति उपेक्षा बढ़ी है। यही कारण है कि देश का नेतृवर्ग धर्म का नाम लेने मे सकोच करता है। धर्म-निरपेक्ष के स्थान पर यदि 'सम्प्रदाय-निरपेक्ष शब्द हो तो वह अधिक उपयुक्त होगा तथा देश की अन्तर्भावना का यथार्थ प्रतिनिधित्व कर सकेगा। नैतिक शिक्षा के लिए शिक्षण- केन्द्रों में भी अनुरूपता नही है। यदि पाठ्यक्रम मे उसे जोड़ा जाता हे तो विद्यार्थी उसकी तैयारी करते हैं। किन्तु ज्ञान के साथ श्रद्धा का विकास न हो तो नैतिक शिक्षा चल नही सकेगी आत्मसात् नही हो पाएगी। अत शासन की मनोवृत्ति ही मूलत बदलनी होगी। नैतिक शिक्षा के लिए हमे उसका अनुकूल वातावरण भी तैयार करना होगा अन्यथा वह स्थायी नही होगा। इस कार्य के लिए हमे धर्म का भी सहारा लेना होगा। जिस धर्म को लोग भूल चुके हैं, उसे पुन लाना होगा।

आचार्यश्री—आप लोगों के द्वारा इसके लिए कुछ प्रयत्न हो तो सभव है कोई अनुकूल परिणाम निकल आए।

सम्पूर्णानन्द—कुछ लोग धार्मिक चेतना जगाने के लिए प्रयत्न करने की बात कर रहे हैं।

आचार्यश्री—देश में अनेक धर्म हैं, आप किस धर्म के लिए प्रयत्न की बात कहते हैं?

सम्पूर्णानन्द—उपासना में मतभेद हो सकता है किन्तु सच बोलने में किसी का मतभेद नही है। बस इसे ही लाना होगा।

आचार्यश्री—मेरी दृष्टि में 'आचार-धर्म'— चरित्र ही एक ऐसा तत्त्व है जिसमें

किसी को कोई मतभेद नही हो सकता।

सम्पूर्णानन्द—जी हां, यह नाम बहुत सुन्दर है। शिक्षा प्रणाली में नैतिकता का प्रवेश होना चाहिए। किन्तु नैतिकता का मूल आधार यही धर्म होगा।

आचार्यश्री—आपके विचार भी माननीय है।

सम्पूर्णानन्द—मेरा तो जहा तक वश चलता है, इस सम्बन्ध में कहता ही रहता हू।

आचार्यश्री—कहने के साथ यदि आप अपने अधिकार के उपयोग से इसके लिए काम करें तो अधिक बेहतर होगा।

सम्पूर्णानन्द—जब तक केन्द्रीय सरकार इस पर नही चलेगी, तब तक नीचे से कुछ नही हो सकता।

आचार्यश्री—भारत के राष्ट्रपति आदि तो धर्म में विश्वास रखते हैं।

सम्पूर्णानन्द—अपने मन में मैं बहुत अच्छा हू, किन्तु उसके लिए कुछ कहू या करू तभी तो काम होगा।

आचार्यश्री—हमने इस बार दिल्ली जाने का निर्णय लिया हे। वहा इस प्रसग को कुछ और आगे बढ़ाने का विचार है। मैं यह मानता हू कि कोई भी कार्य अध्यात्म की पृष्ठभूमि पर ही सफल हो सकता है। जहा राष्ट्रहित का प्रश्न सामने आता है, वहा राष्ट्र की सुरक्षा और विकास के लिए सब-कुछ मान्य किया जाता है। किसी राष्ट्र की जनसख्या अधिक है। वहा जनता का पोषण न हो तो सभव है, सरकार यह नियम बना दे कि बच्चो को पैदा न किया जाए और जो अधिक हैं उन्हें खत्म कर दिया जाए। जिस राष्ट्र की जनसख्या कम है, वहा बच्चों की पैदावार बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन दिया जाए। यह राष्ट्र की नीति हो सकती है, पर आध्यात्मिकता नही। अध्यात्म की भित्ति पर टिकी हुई नैतिकता ही एकमात्र राष्ट्रहित में हो सकती है।

सम्पूर्णानन्द—आपने ठीक कहा। राष्ट्रहित में तो जब भी जो उपयुक्त लगता है, उसे मान्य किया जाता है।

आचार्यश्री—भारत-सरकार ने शिक्षा प्रणाली में परिष्कार के लिए एक आयोग नियुक्त किया है। आयोग के अध्यक्ष डॉ॰ डी॰ एस॰ कोठारी इस सम्बन्ध में हमारी राय जानना चाहते हे। अत हम भी इसके लिए कुछ सोच रहे हैं।

सम्पूर्णानन्द—इसमे एक दिक्कत हे। पत्रकारो ने इस विषय मे मेरे विचार भी मागे थे। मैंने 'लिंक' मे अपना एक लेख भी दिया है। शिक्षा के विभिन्न स्तरो पर क्या सिद्धान्त हों इस सम्बन्ध मे निश्चय करना आयोग का काम नही सरकार का

है । मैं नही समझता कि यह आयोग अपने उद्देश्य में सफल हो सकेगा । दुनिया के किसी भी देश में ऐसा आयोग नही, जिसके सदस्य विदेशी हों । हमारी सस्कृति विदेशों से भिन्न है । अत आयोग का विदेशी सदस्य इस देश की शिक्षा प्रणाली के विषय में अपने सुझाव किस प्रकार दे सकेगा । विदेशी सदस्यों में भी रूस और अमरीका जैसी सर्वथा भिन्न सस्कृतियों में पले व्यक्ति किसी तीसरे देश की समस्या का उचित समाधान कर सकेंगे, ऐसा मैं नहीं मानता । इस आयोग में भारतीय सस्कृति और परम्परा में विश्वास रखने वाले व्यक्तियों को स्थान मिलना चाहिए ताकि देश की शिक्षा प्रणाली का उचित ढग से परिष्कार और सुधार हो सके ।

आचार्यश्री—देश की शिक्षा-प्रणाली के परिष्कार का प्रश्न बहुत जटिल बन रहा है । भारत को स्वतन्त्र हुए सत्रह वर्ष हो गए । किन्तु अब भी वह यह निर्णय नही ले पा रहा है कि उसकी शिक्षा का स्वरूप क्या हो ? देश के नेतृवर्ग को भी उचित मार्ग- दर्शन की अपेक्षा है । जब देश में भारतीय सस्कृति के प्राणभूत व्यक्ति मौजूद हैं तब उनके विचारों की उपेक्षा करना कहा तक सगत हो सकेगा । शिक्षा प्रणाली को धर्म से सर्वथा रहित कर देना मैं अच्छा नही मानता । यद्यपि मैं धर्म को किसी साम्प्रदायिकता के रूप में स्वीकार नही करता । किन्तु धर्म के जो सार्वभौम सिद्धान्त हैं, उनका तो व्यापक प्रसार होना ही चाहिए । अणुव्रत-समिति ने नैतिकता के सम्बन्ध में आज तक जो प्रयत्न किये हैं, उनका अच्छा परिणाम निकल रहा है ।

[वार्ता-प्रसग बहुत ही सरस रहा । अनेक प्रकार के नये-नये विचार उभर कर सामने आए । आचार्यश्री ने राजस्थान प्रादेशिक अणुव्रत आन्दोलन की भी चर्चा की । डॉ. सम्पूर्णानन्द ने सब बातो को बहुत गहराई से ग्रहण किया ।]

आचार्य तुलसी : श्री आर. आर. दिवाकर

[मध्याह्न का समय था। सर्वोदयी-चिन्तक एव बिहार के भूतपूर्व राज्यपाल श्री आर. आर दिवाकर आचार्यश्री के दर्शन करने आए। वर्तमान परिस्थितियो एव अणुव्रत के विभिन्न दृष्टिकोणो पर चर्चा चली। दिवाकरजी ने अहिंसा के विधेयात्मक स्वरूप को पुन प्रतिष्ठित करने पर बल देते अपनी बात शुरू की।]

दिवाकरजी—अहिंसा का निषेधात्मक रूप समाज के सम्मुख आया। जनता दूसरो को कष्ट नही देने एव हिंसा-निवृत्ति तक ही अहिंसा की पूर्णता मानने लगी। दूसरों को कष्ट नहीं देना और उसके कष्ट को दूर करने में सहयोगी बने बिना अहिंसा की पूर्णता कैसे सभव है ? कुछ व्यक्तियों का यह दृष्टिकोण है कि कोई पीड़ित एव दु खी है, वह उसका अपना कर्म है। हमें उसमें दखल नही देनी चाहिए।

आचार्यश्री—आज युग की भाषा का एक प्रवाह हो गया है प्रवृत्ति। लेकिन निवृत्ति के बिना केवल प्रवृत्ति का कोई मूल्य नही है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों की आवश्यकता है। एकागी दृष्टि सम्यक् नही हो सकती। गतिक्रम में एक कदम आगे बढ़ता है तो दूसरा पीछे हो जाता है। मनुष्य दूसरों के दु ख की निवृत्ति का प्रयत्न नही करता क्योकि वह तो उसके कर्म का फल है। लेकिन स्वय को जब दु ख होता है तब उससे निवृत्त होने का पुरुषार्थ क्यों किया जाता है ? क्यों नही कर्म का फल मानकर उसे सहन कर लिया जाता। किसी कार्य में केवल कर्म ही नही, द्रव्य, क्षेत्र, काल, स्थिति आदि का भी योग होता है।

दिवाकरजी—आज मानवता की स्थिति गिरती जा रही है। नीतिज्ञों ने कहा—'राजा कालस्य कारणम्'—राजा काल का नियामक होता है। राजा के आचरणों का समाज पर असर पड़ता है। आज राजनेता सम्यक् आदर्श उपस्थित नही कर रहे हैं। जनतत्र के मूल आधार मत का भी खुले आम विक्रय हो रहा है।

आचार्यश्री—राजनीति, समाजनीति और धर्मनीति पर स्वार्थनीति छा रही है।

दिवाकरजी—स्वार्थ के परित्याग की बात बहुत दूर है। आज कोई भी व्यक्ति,

फिर चाहे वह पूजीपति है या सत्ताधारी, सतुष्ट नही है।

आचार्यश्री—और तो और गाधीजी के साथ रहनेवाले भी उसी तरह सत्ता और धन के व्यामोह में फस रहे हैं।

दिवाकरजी—महापुरुषों के साथ रहते हैं तब तो कुछ असर रहता है। किंतु वहा से हटते ही वह भी चला जाता है। इसका मूल कारण है उसके अतर्मन में सच्ची प्यास जगी नहीं।

आचार्यश्री—जनता की प्यास अपने आप जग जाएगी, ऐसी नियति में मेरा विश्वास नही है। लेकिन वह जिनके द्वारा जागृत हो सकती है, उनका जागृत रहना तो आवश्यक है। आज स्थिति इसके विपरीत बन रही है। जागृति का सदेश देनेवाले भी सुषुप्त हैं। तब क्या हो?

दिवाकरजी—सात्विक शक्तियों का सगठित उपयोग आवश्यक है। गाधीजी ने सत्याग्रह का सगठित प्रयोग कर हिंसा को चुनौती दी थी। अहिंसा से काम करने में समय लग सकता है।

आचार्यश्री—समय क्या हिंसा में नहीं लगता है? अहिंसा को शक्तिशाली बनाने के लिए उसकी प्रतिरोधात्मक शक्ति को विकसित करना जरूरी है। आज लोगों का दृष्टिकोण गलत हो गया। जहा व्यापक दृष्टि से सोचना था, वहा व्यक्तिगत दृष्टि से चिन्तन किया जाता है और जहा व्यक्तिगत दृष्टि से चिन्तन करना चाहिए था, वहा मैं अकेला क्या करू ? सब तो वैसा ही कर रहे हैं, ऐसा सोचा जाता है।

दिवाकरजी—जब तक विश्व में दूसरे दुखी रहेंगे, क्या किसी एक व्यक्ति की मुक्ति हो सकती है?

आचार्यश्री—यह दर्शन का विषय है। कुछ बातें वैयक्तिक हैं तो कुछ सामूहिक। प्रत्येक व्यक्ति की अनुभूति स्वय की होती है।

दिवाकरजी—व्यक्ति समाज में ही पलता है पढ़ता है, वह सब कुछ समाज से ही सीखता है। समाज का उस पर ऋण है, तब वह अकेला साधना कैसे कर सकता है?

आचार्यश्री—एक स्थूल देहधारी अपने कर्तृत्व का असर समाज पर डाल सकता है। तब एक साधक अपनी साधना द्वारा समाज में आदर्श क्यों नही उपस्थित कर सकता?

धर्म के दो रूप हैं—निवृत्ति—सयम और सत्प्रवृत्ति। प्रवृत्ति-निवृत्ति दोनों की

ही आवश्यकता है। लेकिन भारतीय चिन्तन एक धारा में बहा। कभी वह प्रवृत्ति पर इतना चला कि उसका अतिम छोर आने लगा। इससे जहा उच्छृखलता पनपी वहा निवृत्ति का दृष्टिकोण सब कुछ छोड़ देने पर आ गया। समाज केवल प्रवृत्ति या केवल निवृत्ति से नही चल सकता।

[भूदान और अणुव्रत आदि की प्रवृत्तियों के बारे में भी विस्तार से चर्चा चली।]

२८-११-६८
मद्रास

आचार्य तुलसी : श्री पी. बी. चेरियन

[राष्ट्र-संत अणुव्रत-अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी कुछ संतो व कार्यकर्त्ताओं के साथ बम्बई के राजभवन में पधारे। समुद्र के तट पर स्थित विशाल राजभवन के अतिथि-कक्ष मे प्रात १० बजे महाराष्ट्र के राज्यपाल डॉ॰ श्री पी बी चेरियन एव उनकी धर्मपत्नी श्रीमती तारा चेरियन ने आचार्यश्री का स्वागत किया। शिष्टाचार के अनन्तर आचार्यश्री टेबल पर विराजे और सामने सोफे पर राज्यपाल एव उनकी धर्मपत्नी बैठे। श्री सुन्दरभाई जवेरी वार्तालाप मे अनुवादक का कार्य कर रहे थे। वार्तालाप का सक्षिप्त अश प्रस्तुत है—]

आचार्यश्री—आप हिन्दी जानते हैं क्या ? समझ तो सकते होगे ?

राज्यपाल—थोड़ी-थोड़ी जानता हू। बाजारू हिन्दी नही समझ सकता, अच्छी हिन्दी समझ लेता हू।

आचार्यश्री—हम अच्छी हिन्दी में ही आपके साथ वार्तालाप करेंगे।

राज्यपाल—आप और आपके सत कहा-कहा के हैं ?

आचार्यश्री—भारत के विभिन्न प्रातो के साधु-साध्विया हैं। अधिकाश राजस्थान के हैं।

राज्यपाल—आपका आश्रम कहा है ?

आचार्यश्री—हमारा कही भी कोई मठ, मन्दिर, स्थल और आश्रम नही होता। भ्रमण करते रहते हैं और किसी के भी मकान को माग कर ठहर जाते हैं।

राज्यपाल—बहुत सुन्दर ! जैसा कि जीसस क्राइस्ट का था। चिड़िया की तरह थोड़ी देर विश्राम करने के बाद पुन उड़ जाना।

आचार्यश्री—आदमी सच्चा आदमी कैसे बने, इस दृष्टि से हमने अणुव्रत आन्दोलन चलाया है। व्यक्ति-सुधार की आचार-सहिता हमने प्रस्तुत की है।

राज्यपाल—क्या आप सन्त तुकड़ोजी से परिचित हैं ? वे मेरे मित्र हैं।

आचार्यश्री—वे हमसे मिले हैं और उनसे हमारा आत्मीय-सबध है। अणुव्रत के कार्यक्रम में रस लेते रहते हैं।

राज्यपाल—अच्छा, क्या आप कुछ फलों का रस इत्यादि लेंगे ? ठडा या गर्म कुछ भी पेय लीजिए।

आचार्यश्री—हम प्राय सुबह आहार नही लेते हैं। पर आपकी भावना इतनी प्रबल है तो कुछ लिया जा सकता है। जाते समय देखेंगे।

राज्यपाल—आप यहा से आगे किधर जायेंगे ?

आचार्यश्री—दक्षिण भारत की ओर जाने का चिन्तन है।

राज्यपाल—आप वहा अवश्य ही जाए और भाषा के झगड़े को बद कराए। आपका प्रभाव पड़ेगा।

आचार्यश्री—हमारा यह प्रयास रहेगा। भ्रातृत्व, प्रेम और शाति ही हमारा लक्ष्य है।

राज्यपाल—आपको भूकप-पीड़ित क्षेत्र कोयना भी जाना चाहिए। सतारा से नजदीक है। वहा एहार नामक ग्राम में एक भी घर नही बचा। सब धरती पर गिरे पड़े हैं।

तारा—यह राष्ट्रीय दु खद घटना है। आचार्यजी को वहा जाकर अपना आशीर्वाद देना चाहिए। स्वामीजी के आशीर्वाद से वहा सब व्यवस्थित हो सकेगा। दु खी लोगों को आपकी ओर से एव अणुव्रत समिति से सहयोग मिलना चाहिए।

आचार्यश्री—हमने वहा की दर्द भरी कहानी सुनी है। अणुव्रत के कार्यकर्ता वहा गए हैं। अणुव्रत समिति की ओर से कार्यकर्ता सहयोग भी कर रहे हैं। मनुष्य का मनुष्य के प्रति फर्ज है, उसे पूरा करना चाहिए।

राज्यपाल—मै पिछले सप्ताह वहा जाकर आया हू। आपको भी समय निकालकर वहा जाना चाहिए।

आचार्यश्री—आपकी तरह यदि हम हवाई यात्रा करते तो शायद सबसे पहले वहा पहुचते। किंतु पद-यात्रा में समय लगता है।

तारा—वहा रिलीफ कार्य में बहुत धाधली होती है। रसोई-घर से सामान बनाकर जब तक घायलों व बीमारों तक पहुचाया जाता है, तब तक बीच में ही आधा सामान गायब हो जाता है। ईसाई मिशनरी की नर्सें वहा सेवा कार्य कर रही हैं। यदि स्वामीजी की साध्विया भी वहा कोई सेवा कार्य कर सकें तो महाराष्ट्र सरकार इसकी व्यवस्था कर सकती है।

आचार्यश्री—सेवा मे भी अप्रामाणिकता की बात सबसे बड़ा आश्चर्य है। हम मानते है कि नैतिकता का कार्य सर्वाधिक जरूरी है। इसीलिए हमारा साधु-समाज

मानवता या नैतिकता के कार्य में सलग्न है।

राज्यपाल—आपका कार्य अच्छा है और देश में इसकी जरूरत है।

आचार्यश्री—किंतु आपने अब तक हमारे इस नैतिक कार्यक्रम में भाग लिया या नही ?

राज्यपाल—मैं एक बार यहा अणुव्रत के किसी कार्यक्रम में भाग ले चुका हू। आप मुझे जब कहे, जहा कहें, जिस समय कहें, मैं आपके लिए सदा तैयार हू।

आचार्यश्री—५ फरवरी को दोपहर में मर्यादा-महोत्सव का कार्यक्रम है।

राज्यपाल—में अवश्य ही उसमें भाग लूगा। दोपहर में तो कठिनाई है। क्योंकि मैं उस समय सोता हू, मेरा स्वास्थ्य ठीक नही रहता है। इसलिए ५ बजे के बाद का समय ठीक रहेगा।

आचार्यश्री—हमारा कार्यक्रम तो ४ बजे तक का है। उसके बाद विलम्ब करने मे हमें कठिनाई है।

राज्यपाल—में आपके लिये सब-कुछ कर सकता हू। यद्यपि ४ बजे के कार्यक्रम म आज तक किसी के यहा नही गया। किंतु आपके कार्यक्रम में ४ बजे ही आऊगा।

(उन्होने तुरत अपने कार्यक्रम की डायरी मगवाई और अपने हाथ से कार्यक्रम लिखकर समय निश्चित किया।)

आचार्यश्री—नैतिकता के कार्य मे आपकी इतनी निष्ठा होना अच्छी बात है। मेरा यही कहना है कि आप अणुव्रत के कार्य मे नैतिक सहयोग देते रहे।

राज्यपाल —[आचार्यश्री के हाथ मे रजोहरण देखकर] आपके हाथों में यह सफेद लकड़ी क्यों है ?

आचार्यश्री—अहिंसा के लिये है। लकड़ी पर कपड़ा इसलिए है कि कोई जानवर इसे देखकर डरे नही। इसके नीचे ऊन से बना हुआ रजोहरण है। इससे रात्रि में एव दिन में भी स्थान को साफ कर बेठते हैं।

तारा—आचार्यश्री का हमें आशीर्वाद चाहिए। आप आशीर्वाद जरूर दें।

आचार्यश्री—मैं आपको भगवान की वाणी का पाठ सुनाऊगा। वह मगल-पाठ ही आशीर्वाद है।

[आचार्यश्री से मगलपाठ सुन चेरियन दम्पति बहुत खुश हुए]

१५-१-६८
बम्बई

आचार्य तुलसी : बलवन्तसिंह मेहता

आचार्यश्री—देश की आजादी के कुछ समय बाद ही हमने राष्ट्रीय चरित्र को उन्नत बनाने के लिए अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन किया था। हमें अनुभव हो रहा है कि आज देश में नैतिक सुधार की बहुत आवश्यकता है। जब तक नैतिक और चारित्रिक सुधार नही होगा तब तक राष्ट्रीय जीवन उन्नत नही बन सकता। भारत *के अन्यान्य प्रदेशों की तरह मेवाड़ में भी अणुव्रत का अधिकाधिक प्रचार हो, वहा* की पिछड़ी जातियों वाले लोगों का ध्यान इस ओर लाया जाए तो बड़ा उपकार हो सकेगा।

मेहताजी—आपका फरमाना सर्वथा उचित है। मेवाड़ की भील आदि पिछड़ी जातियां के लोगों में आज भी बड़ी उत्तम धर्म भावना है। भगवान ऋषभनाथ के नाम के प्रति उनमे बड़ी आस्था है। भगवान ऋषभनाथ की शपथ लेने को कहा जाएगा तो एक भील अपने बड़े से बड़े अपराध को स्वीकार कर लेगा। प्रतिकूल परिस्थितियो के कारण उनके जीवन में बुराइया आ गईं। किंतु जैसा कि मैंने निवेदन किया, उनमे धर्म के प्रति अविकसित निष्ठा अवश्य है।इसलिए उनमें इन नैतिक नियमों के प्रचार की बड़ी आवश्यकता है।

महाराज! एक बात मैं पूछना चाहूगा कि जैनधर्म जो एक सार्वजनीन और उदार धर्म है, जिसके सिद्धान्त प्राणीमात्र से सम्बन्ध रखने वाले हैं, केवल महाजन जाति तक ही सीमित होकर क्यों रह गया?

आचार्यश्री— इसका बहुत कुछ कारण जैन महाजन ही हैं। वे अपने को ऊचा समझते हैं। अपनी उच्चता का अध्यारोपण वे धर्म में भी करते हैं। यों भी कहा जा सकता है कि उन्होंने जैनधर्म को महाजन जाति का पर्याय मान लिया। वास्तव में यह भूल है। धर्म पर जाति-विशेष का क्या अधिकार? वह व्यक्ति मात्र का है। जो व्यक्ति धर्म का पालन करे, वही उसका अधिकारी है। अत हर जाति का मनुष्य उसे पाल सकता है। इस भावना के कम हो जाने से ही जैनधर्म की ऐसी स्थिति हुई।

मेहताजी—जैनधर्म जहा अपरिग्रहवाद को महत्त्व देने वाला है, महाजन जाति सबसे अधिक परिग्रही है। हम महाजनों के हाथों इसकी रक्षा कैसी होगी ? क्योंकि कहा गया है कि सुई के छेद से ऊंट का निकल जाना सभव है परन्तु परिग्रही का उद्धार सभव नही।

आचार्यश्री—तत्त्वत परिग्रह बुरा है, आत्मा को नीचे गिराने वाला है। इसमें कोई शक नही। परन्तु ससार में रहते उसका सर्वथा परिहार भी तो नही किया जा सकता। कोई भी गृहस्थ अपरिग्रही होकर न अपना जीवन चला सकता है और न परिवार का भरणपोषण कर सकता है। परन्तु उसके लिए वह एक निश्चित सीमा करे, जिससे उसका परिग्रह से यथाशक्य बचाव हो सके—ऐसा जैनधर्म का उसूल है। परिग्रह के लिए बताया गया है कि उसका जितना बाह्य वस्तुओं धन-धान्य आदि से सम्बन्ध है, उससे कही अधिक सम्बन्ध मनोभावों से है। इसलिए परिग्रह की परिभाषा की गई है—'मूर्च्छा परिग्रह' —मूर्च्छा, ममत्व या आसक्ति-भाव परिग्रह है। थोड़े धन के होते हुए भी यदि मूर्च्छा तीव्र हे तो मनुष्य उतना ही अधिक परिग्रही है।

मेहताजी—जैन गृहस्थ प्राय व्यापारी हैं। व्यापार में जितनी अनैतिकता, हिंसा और शोषण है, उतना अन्य व्यवसायो में नही। खेती जिसमें हिंसा, शोषण और अनाचारपूर्ण वृत्ति अपेक्षाकृत कम है, जैनों में विहित नही मानी गई, ऐसा क्यों?

आचार्यश्री—अनैतिकता, हिंसा और अनाचारपूर्ण वृत्ति का जितना सबन्ध मनुष्य की वृत्तियों से है, उतना बाह्य पदार्थों से नही है। व्यापार करने वाला हुआ भी मनुष्य भी यदि वह सद्‌वृत्तियों वाला है तो उक्त दुर्गुणों से अपने को बहुत-कुछ बचा सकता है। इस कथन का यह अभिप्राय नही है कि मैं व्यापार का समर्थक हू। मैं तो व्यापार और कृषि, जो लौकिक प्रवृत्तिया हैं उनके सम्बन्ध में अपनी सीमा के अनुसार जो कहना होता है, कह सकता हू। प्रस्तुत विषय के स्पष्टीकरणार्थ मेरा कहना है कि वृत्तियों की शुद्धता आवश्यक है और यदि ऐसा है तो जिस व्यापार कार्य को आपने शोषणपूर्ण कहा वह भी अधिकाधिक शोषण-रहित हो सकता है। कृषि को अविहित मानने की बात जैन शास्त्रों में कहीं नही है। जैन श्रावक तो भगवान महावीर के समय में भी खेती करते थे। भगवान के जो दस बड़े-बड़े श्रावक थे, प्राय उनके कृषि का व्यवसाय था। आज भी जैन श्रावक इधर आकर्षित हो रहे हैं।

साराश यह है कि हिंसा और शोषण को रोकने के लिये गृहस्थ को एक मर्यादा करनी होगी। ऐसा करने से वह हिंसा, शोषण आदि से बहुत-कुछ बच सकता है।

[आचार्यश्री ने तेरापथ के विधान, साधुओं के लिये अपने-अपने शिष्य न करने की मर्यादा, साधुओं के स्वावलम्बनपूर्ण जीवन आदि के विषय में भी अनेक बातें बतलाई, जिन्हें जानकर वे बहुत प्रसन्न हुए।]

८.१०५१

आचार्य तुलसी : श्री धर्मवीर

[मैसूर के नव मनोनीत राज्यपाल श्री धर्मवीर ने आचार्यश्री तुलसी विशेष भेंट की। धर्मनेता आचार्यश्री और राजनेता श्री धर्मवीर के बीच विभिन्न विषयो पर लगभग पौन घटे तक महत्त्वपूर्ण वार्तालाप हुआ। आचार्यश्री को वदना करते हुए श्री धर्मवीर ने कहा—'नमस्कार है आचार्यदेव।']

आचार्यश्री—बहुत दिनो के बाद मिले हैं।

श्री धर्मवीर—हा पहले उत्तर भारत मे मैने आपके दर्शन किए थे। उसके बाद मिलने का मौका नही मिला। यहा (बेंगलोर) आने पर सोचा आपके साक्षात दर्शन करू।

आचार्यश्री—इन दिनो हम दक्षिण-यात्रा के क्रम में यहा चातुर्मासिक प्रवास कर रहे हैं।

श्री धर्मवीर—यहा से आप कहा जाएगे?

आचार्यश्री—हैदराबाद की तरफ।

श्री धर्मवीर—क्या पैदल ही जाना होगा?

आचार्यश्री—जैन साधु के लिये एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिये पद-यात्रा के अतिरिक्त कोई विकल्प नही है। पद-यात्रा हमारा जीवन-व्रत तो है ही, साथ ही साथ इससे हमें दो लाभ और भी होते हैं—

१. साधारण से साधारण व्यक्तियों से साक्षात मिलने का मौका मिलता है।
२. प्रचार-प्रसार बहुत सुन्दर होता है। आप जानते ही होंगे कि पिछले २० वर्षों से हम अणुव्रत आन्दोलन चला रहे हैं। इस आन्दोलन के द्वारा हम जन-जन को मानवता और नैतिकता का सदेश देते हैं। यह कार्य पद यात्रा से बहुत अच्छे ढग से होता है।

श्री धर्मवीर—मैं अणुव्रत के सबध में सदा पढता रहता हू। जयप्रकाशजी ने इस आन्दोलन के सबध में अपने बहुत ही सुन्दर विचार दिए हैं।

आचार्यश्री—हा जयप्रकाशजी तथा अन्यान्य प्राय सभी उच्चस्तरीय लोग इस

आन्दोलन में बहुत रुचि लेते हैं। यह भी प्रसन्नता की बात है कि देश का बौद्धिक वर्ग भी इसे बहुत ऊची दृष्टि से देखता है। एक सप्रदाय विशेष से सम्बन्धित होने पर भी हम असाम्प्रदायिक और व्यापक दृष्टि से कार्य करते हैं। यही कारण है कि हमे सभी प्रकार के लोगों का सहयोग प्राप्त हो रहा है।

श्री धर्मवीर—आचार्यजी! आज की स्थिति में यह कार्य बहुत आवश्यक है। पिछले दिनो बोद्ध विहार के प्रधान भिक्षु मेरे पास आए थे। वे मुझे कह रहे थे कि हमारे देश के वैदिक, जैन और बौद्ध—इन तीन प्रमुख धर्मों के सार तत्त्व को निकालकर एक ऐसा रास्ता निकालना चाहिए जो तीनों धर्मावलबियो को समान रूप से मान्य हो।

आचार्यश्री—हमने इस तरह का प्रयत्न प्रारभ किया है। हम ऐसा साहित्य तैयार कर रहे हैं, जिसमे जैन, बोद्ध और वैदिक तीनों धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन हो। पिछले दिनो हमारे शिष्य मुनि नगराजजी (बाद में सघ-मुक्त) की एक पुस्तक 'आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन' प्रकाशित हुई हे। उसमे जैन व बौद्ध धर्म का तुलनात्मक रूप प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार और भी साहित्य तैयार हो रहा है। दूसरा चिन्तन हमारा यह है कि एक ऐसा मच तैयार किया जाए, जहा तीनो धर्मों के लोग आकर बात कर सके।

श्री धर्मवीर—सब लोग मिलकर एक साथ चिन्तन मनन, स्वाध्याय, ध्यान आदि कर सके ऐसा प्रयत्न करना चाहिए।

आचार्यश्री—आज धर्म का रूप विकृत हो गया है। लोगो ने धर्म के मूल को भुलाकर अपने-अपने कदाग्रह के कारण उसे झगड़े का कारण बना दिया है। धर्माधिकारी लोगो को जितनी चिन्ता अपने मठ, मदिर, सप्रदाय और गद्दी की सुरक्षा की हे, उससे शताश चिन्ता भी धर्म के मूल सिद्धातो को जनता में फैलाने की नही है।

श्री धर्मवीर—आचार्यजी! यह बड़ी विचित्र बात है कि धर्म में भी दभ आ जाता है। आज सब अपने-अपने धर्म को सर्वश्रेष्ठ बताने का दभ भरते हैं। मेरी दृष्टि में धार्मिक दभ से ब्रढकर कोई दूसरा दभ नही। मुझे तो बहुत ही आश्चर्य होता हे कि इस धर्म के कारण लोग एक-दूसरे का सिर भी काट देतें हैं ओर उसे कोई दोष भी नही मानते।

आचार्यश्री—में बहुत बार कहा करता हू कि हम जिस मकान में रहते हैं उसमें

आकाश है। यह बात ठीक है। पर इसका अर्थ यह नही कि सारा आकाश हमारे कमरे मे समा गया है, बाहर आकाश है ही नही। आकाश तो असीम है। इस प्रकार हमने जिस धर्म को स्वीकार किया है, वह सत्य है, ऐसा मानने में दोष नही है।पर यह सोचना कहा तक उचित है कि हमारे धर्म से बाहर सत्य है ही नही, अन्यत्र अच्छी बाते हैं ही नही। इसका अर्थ यह हुआ कि अनत सत्य को हम अपने सप्रदाय की चारदीवारी में बद करना चाहते हैं।

श्री धर्मवीर—आपका कथन बहुत ठीक है।

आचार्यश्री—पिछले दिनो अहमदाबाद मे जो घटनाए हुईं, उन्हें सुनकर तो मन में बहुत दु ख होता है।

श्री धर्मवीर—सचमुच वे घटनाए तो बड़ी शर्मजनक थीं।

आचार्यश्री—राजनैतिक लोगों में भी साप्रदायिकता आ गई है।

श्री धर्मवीर—राजनैतिक लोगों का तो यह काम ही है। पर धार्मिक लोग उन्हें सहयोग दे रहे हैं, यह बहुत ही विचित्र बात है।

आचार्यश्री—आज की स्थितियो को देखकर मानना चाहिए कि जल भी आग पैदा कर रहा है। जो धर्म सारे विश्व को शाति का सदेश देने वाला तत्त्व है, वही धर्म यदि आज अपने पड़ोसी भाई का सिर काटने की बात कहता है, इससे बढ़कर और क्या विडम्बना होगी ?

भगवान महावीर की २५ वी निर्वाण शताब्दी सन् १९७४ में है । इस अवसर पर तेरापथ धर्मसघ ने जैन विश्वभारती के रूप में भगवान महावीर के चरणों में अपनी श्रद्धाजलि समर्पित करने का निश्चय किया है। उस ऐतिहासिक अवसर को मनाने के सबध मे आपका कोई सुझाव है क्या ?

श्री धर्मवीर—मैंने इस विषय में अभी तक चिन्तन नही किया। पर आपने कहा है इसलिए अवश्य सोचूगा। आपकी जैन विश्वभारती की पूरी योजना मुझे मालूम नही है एक बात मैं अवश्य सोचता हू कि इस समय एक ऐसा सस्थान बनना चाहिए जहा सब भारतीय धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सके। वहा यदि सब भारतीय धर्मो के तत्त्वों की चक्की चलती रहे तो जनता को बहुत लाभ होगा। मैं जब पजाब में था तब मैंने गुरु नानक जयन्ती के अवसर पर पजाब विश्वविद्यालय पटियाला में एक ऐसा ही विभाग प्रारभ किया था। वहा उनके विचारों का अन्य धर्मों के साथ तुलनात्मक अध्ययन होता है और तत्सबधी साहित्य भी प्रकाशित होता

है। यह तो एक छोटी योजना थी, पर भगवान महावीर की निर्वाण शताब्दी के अवसर पर बहुत विस्तृत रूप में यह कार्य होना चाहिए।

आचार्यश्री—मैं नही जानता आपके ये विचार बिना मगाए ही मेरे पास कैसे पहुच गए। जैन विश्वभारती में बहुत अशों में यही कार्य करने की बात सोची जा रही है। 'जैन विश्वभारती' की पूरी योजना जानकर शायद आपको सतोष होगा।

श्री धर्मवीर—मैं इस योजना को पढूगा।

[अत में श्री धर्मवीर आचार्यश्री को नमस्कार कर पुन मिलने की भावना लेकर विदा हो गए।]

२९, अक्तूबर, १९९८
बैंगलोर

आचार्य तुलसी : श्री श्यामाचरण शुक्ल

[मध्यप्रदेश के मुख्यमत्री श्यामाचरण शुक्ल एव मध्यप्रदेश काग्रेस कमेटी के अध्यक्ष श्री मिश्रीलाल गगवाल आचार्यश्री से भेट करने आए। लगभग २५ मिनट तक वार्तालाप हुआ।]

आचार्यश्री—हमारी यह अणुव्रत यात्रा चल रही है। इस यात्रा में लाखों लाखों लोगों से हमारा प्रत्यक्ष सपर्क हुआ है।

शुक्लजी—सभवत हजार, डेढ़ हजार वर्षों में भी इतने बड़े सघ के साथ ऐसी यात्रा नही हुई होगी। इस यात्रा से उत्तर और दक्षिण के मध्य और अधिक निकटता आई है।आपके नेतृत्व में चरित्र-निर्माण का जो काम हो रहा है, वह बहुत जरूरी है। ऐसे कार्यक्रमों से ही देश में नैतिक निर्माण की सभावना की जा सकती है।यह देश की महान सेवा है। आपका कार्य बहुत ही व्यवस्थित ढग से चल रहा है।

आचार्यश्री—ऐसा करके हम किसी पर अहसान नही कर रहे हैं। यह तो हमारा कर्त्तव्य है, जिसे हम पूरा कर रहे है। देश में जितने साधु हैं, उनमे थोड़े भी इस कार्य को करें तो देश का कायाकल्प हो सक्ता है। आज भी साधु-सन्तो के प्रति जो श्रद्धा है, वैसी दूसरों के प्रति नही।

शुक्लजी—आज देश मे हिंसा का बहुत विस्तार हो रहा है, जो बहुत ही विचारणीय हे।

आचार्यश्री—ऐसा लगता है कि इन्सान आज हैवान बनता जा रहा है।लोग कहते हैं, आज विकास हो रहा हे पर वास्तव में मेरी दृष्टि से मानव समाज ह्रास की ओर जा रहा है। वह अपने अस्तित्व को भूल रहा है।

शुक्लजी —आज देश मे रेडियो, सिनेमा आदि प्रचार के साधन भी हिंसा और अनैतिकता का प्रचार कर रहे हैं। दूसरी ओर वे राजनैतिक पार्टिया भी जो हिंसा में विश्वास रखती हैं, हिंसात्मक प्रवृत्ति में लगी हुई हैं और लोगों को गुमराह करती हैं।

गगवालजी—आज तो ऐसा लग रहा है कि चेतन शक्ति से भी जड़ शक्ति का तेज बढ़ रहा है।

आचार्यश्री—आज अहिंसक शक्तिया भी निस्तेज हो गई हैं। मैं चाहता हू कि अहिंसा में भी प्रतिरोध की शक्ति का विकास हो। इस सम्बन्ध में चिन्तन करना बहुत जरूरी है।

शुक्लजी—अहिंसक लोगों को तटस्थ नही रहना चाहिए। हिंसा के विरुद्ध आवाज उठानाईचाहिए। मैंने इन्दौर में विनोबाजी से भी कहा था कि आपको ऐसी स्थिति मे मौन नही रहना चाहिए। दलगत राजनीति में आप चाहे न पड़ें किन्तु उससे सर्वथा अलग रहेंगे तो हिंसा से मुकाबला नही हो सकेगा। दूर बैठकर तमाशा देखने से कुछ भी होने वाला नही है।

आचार्यश्री—अभी-अभी हम भी विनोबाजी से मिले थे। इस सम्बन्ध में हमारी उनसे बहुत खुलकर बातचीत हुई थी। उन्होने स्वीकार किया था कि अच्छे लोगों को भी राजनीति में अवश्य भाग लेना चाहिए।

मुनि नथमलजी—अहिंसक लोगों की निष्क्रियता से देश को बहुत नुकसान उठाना पड़ रहा है।

शुक्लजी—कलकत्ता आदि में गाधी साहित्य की होली जलाई गई। उनके प्रति गाली-गलौज किया गया। किन्तु किसी ने उसके विरोध में आवाज नही उठाई।

गगवालजी—जब शक्ति ही नही रही तो आवाज कौन उठाए? शक्ति तब थी जब नोट नही थे। आज नोटों के नीचे शक्ति दब गई। विसर्जन की शक्ति लुप्त हो गई है।

मुनि राकेशकुमारजी—यदि अध्यापक-वर्ग में कुछ कार्य किया जाए तो समय रहते इस स्थिति का समाधान हो सकता है। उनमे काफी अच्छा उत्साह है। केवल प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है।

मुनि नथमलजी—आज सर्वत्र नेतृत्व का अभाव-सा है।

आचार्यश्री—आज जो निराशा की भावना फैल रही है, यह मेरी दृष्टि में बहुत खतरनाक है।

शुक्लजी—इसके लिए निषेधात्मक दृष्टिकोण छोड़कर विधेयात्मक दृष्टिकोण को सामने रख कर कार्य होना चाहिए। ऐसा करने से ही वह दूर हो सकती है।

आचार्यश्री—आजकल विलासिता का विस्तार हो रहा है। सादे-जीवन का

अभ्यास छूट-सा गया है। जिस देश में अनेक लोगों को भरपेट भोजन न मिले वहा मत्री और सम्पन्न लोग आलीशान बगलों में रहें, वातानुकूलित कारों में सैर करें, यह अन्तर कितने दिन चलेगा ? अभी हम सेवाग्राम गए थे। गाधीजी की कुटिया को देखकर लगा कि वे इस साधारण-सी कुटिया से भी क्रान्ति का शखनाद करते थे। किन्तु आज जमीन आसमान का अन्तर आ गया है। आज तो खादी का दर्शन समाप्त हो रहा है।

शुक्लजी—विलासिता भी आज सभ्यता बन गई है। इसके बिना मनुष्य का सम्मान ही नही होता।

आचार्यश्री—इसी मूल्य को अणुव्रत बदलना चाहता है। मानव का सच्चा मूल्य उसकी मानवता से आका जाना चाहिए, न कि सत्ता और पैसे से।

मुनि नथमलजी—सम्प्रदाय और धर्म को आचार्यश्री ने पृथक्-पृथक कर दिया है। उनका क्षेत्र समन्वयात्मक दृष्टि मे इतना विशाल हो गया है कि उसमें सभी धर्म समा जाते हैं।

श्री गगवालजी— अणुव्रत भारतीय सस्कृति का अन्तर्नाद है। यदि उस अन्तर्नाद को हम भारतवासी सुन लें तो बहुत-सी समस्याओं का समाधान हो सकता है।

शुक्लजी—हमारे देश मे सन्तों की महान परम्परा रही है। जब कभी देश में अधर्म का पलड़ा भारी हुआ तब महान व्यक्तियो ने जन्म लेकर देश का उद्धार किया। आचार्यश्री तुलसी भी एक ऐसे ही महामानव हैं जो भारत की मूर्च्छित मानवता को जगा रहे हें। भारत मे दर्शन की दृष्टि से जितना गहरा चिन्तन हुआ है, उतना अन्य देशो मे नही हुआ होगा। पर यह भी आश्चर्यजनक है कि आज जितनी अनैतिकता यहा है उतनी अन्य देशों में नही होगी। मैं चाहता हू कि आचार्यश्री का अणुव्रत आन्दोलन सफल बने और हम पुन अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त करें। मध्यप्रदेश मे अणुव्रत दर्शन को सक्रिय करने के लिए आपके दीर्घकालीन सान्निध्य की अपेक्षा है। इस दृष्टि से मेरा अनुरोध है कि आप एक चातुर्मास्य रायपुर में करे।

आचार्यश्री—आज देश नैतिकता और चरित्र के अभाव में निराधार-सा हो रहा हे। मानवता मूर्च्छित हो गई हे। उसे पुन सजीव करने के लिए ही हमने अणुव्रत चलाया है। धर्मस्थाना के प्रति भारतीय जनता का आकर्षण आज भी कम नही है। हजारो की भीड़ वहा देखी जाती हे। पर वे ही व्यक्ति जब दूकान कार्यालय और घर में जाते हैं तब घोर अधार्मिक बन जाते हैं। मेरी ऐसी मान्यता है कि नैतिक बने

बिना कोई भी व्यक्ति धार्मिक नही बन सकता। सच्चे इन्सान बने बिना भारत का उद्धार होना कठिन है। इसलिए हर वर्ग के लिए अणुव्रत निर्धारित किए गए हैं। इस कार्यक्रम को लेकर मेरे शिष्यों न पिछले वर्ष शिक्षा के क्षेत्र में अच्छा कार्य किया है। इस कार्य में हमें सबका सहयोग लेना है। अभी-अभी मुख्यमत्रीजी ने हमारे लिए रायपुर-चतुर्मास के लिए निवेदन किया है। प्रार्थना करने से चतुर्मास की सहज ही जिम्मेदारी भी आ जाती है। रायपुर के अन्य लोग भी काफी निवेदन कर रहे हैं। सभी के निवेदन को ध्यान में रखकर मैं आगामी चतुर्मास रायपुर मे बिताने की घोषणा करता हू।

२४ जुलाई १९६८
राजनान्दगाव

आचार्य तुलसी : श्री नम्बूद्रीपाद

[अपराह्न का समय केरल के मुख्यमत्री श्री ई॰ एम॰ एस॰ नम्बूद्रीपाद से आचार्यश्री का मिलन हुआ। मुख्यमत्री ने आचार्यश्री का विनम्रतापूर्वक स्वागत किया। जेन सन्तो या जेनाचार्यों से उनके मिलने का यह पहला अवसर था। इस कारण मुख्यमन्त्री जी के निकटस्थ लोगो मे भी काफी उत्सुकता थी। सक्षिप्त, किन्तु सारपूर्ण वार्तालाप का कुछ अश यहा प्रस्तुत है।]

आचार्यश्री—क्या आप हिन्दी समझते हैं ?

श्री नम्बूद्रीपाद—थोड़ी-थोड़ी समझता हू।

आचार्यश्री—केरल मे मै पहली बार आया हू। केरल प्रदेश मे कभी सहस्रों जेन सतो का विहरण होता था। राज्य-विग्रह के कारण इसमे परिवर्तन आया। एक हजार वर्ष से भी अधिक समय के पश्चात् हम फिर एक विशाल सघ को लेकर यहा आए हैं। क्या जेन साधुओ से कभी मिलन हुआ ?

श्री नम्बूद्रीपाद—नहीं मुझे ऐसा अवसर नही मिला।

आचार्यश्री—केरल प्रदेश मे जेन सतो का भ्रमण नही होने से ऐसा अवसर कैसे मिलता ?

श्री नम्बूद्रीपाद—आपकी पदयात्रा कब से प्रारभ हुइ ?

आचार्यश्री—मेरी यात्रा का प्रारभ ४४ वर्ष पूर्व दीक्षा लेते ही हो गया। जेन मुनि के लिए पदयात्रा जावन-व्रत हे। अणुव्रत आन्दोलन के प्रारभ के साथ मेरी यात्राओं का विस्तार हुआ।

श्री नम्बूद्रीपाद—आपके साथ कितने साधु-साध्विया है ?

आचार्यश्री—४५ साधु-साध्विया यहा हे ओर लगभग इतने ही तमिलनाडु कर्नाटक आदि दक्षिण भारत के प्रान्ता मे हैं। तमिलनाडु के पश्चात् लोगों न मुझे सुझाव दिया कि आप कही भी जाए किंतु केरल म न जाए। क्योकि यहा कम्युनिस्ट राज्य है। मैने उनसे कहा—'म और कही जाऊ या न जाऊ, किंतु केरल म अवश्य जाऊगा। क्योकि वहा तो धर्म की ओर अधिक आवश्यकता है। साम्यवाद अपने

आप में बुरा नही, यदि उसमें से हिंसा निकाल दी जाए। एक अपेक्षा से हम लोग भी साम्यवादी कहलाते हैं।

श्री नम्बूद्रीपाद—आप साम्यवादी कैसे हैं? आपके कोई मदिर है या नही? इस धर्मसघ के सस्थापक आप हैं?

आचार्यश्री—जैन धर्म प्राणीमात्र की समता में विश्वास करता है। इस दृष्टि से हम साम्यवादी हो गए। हम मूर्तिपूजा में विश्वास नही करते। इसलिए हमारा कोई भी मन्दिर नही है। तेरापथ धर्मसघ के प्रथम सस्थापक आचार्य भिक्षु थे और मैं नवम आचार्य हू। तेरापथ सघ एक जागृत धर्मसघ है। उसने धर्म में क्रातिकारी प्रयोग किए हैं और चरित्र को प्रथम स्थान दिया है।

श्री नम्बूद्रीपाद—मैं जैन श्रावकों से मिला था। सुना है कि वे रात्रि को कुछ नही खाते।

आचार्यश्री—रात्रि-भोजन नही करना जैनधर्म की आचार सहिता का एक बिन्दु है।जैन मुनि के लिए रात्रि भोजन करना सर्वथा निषिद्ध है। जैन श्रावक भी रात्रि-भोजन से बचते हैं, पर उनके लिए इसकी अनिवार्यता नही है।

श्री नम्बूद्रीपाद—क्या जैनधर्म को भगवान महावीर ने चलाया था।

आचार्यश्री—भगवान महावीर अतिम तीर्थंकर थे। उनसे पहले तेईस तीर्थंकर हो गए हैं। प्रत्येक तीर्थंकर अपने युग में धर्म का प्रवर्तन करते हैं। इस दृष्टि से भगवान महावीर के साथ इसका सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। वस्तुत जैनधर्म वैज्ञानिक धर्म है। वह बौद्धिकवर्ग को विशेष रूप से आकृष्ट करता है। कामरेड यशपाल हमसे मिलने आए थे। उन्होंने जैनधर्म का विशेष अध्ययन करने की बात कही और स्वीकार किया कि जैन-दर्शन तर्क-सयुक्त वैज्ञानिक दर्शन है।

श्री नम्बूद्रीपाद—मैं भी कभी संस्कृत का छात्र था। जैनधर्म के मूल ग्रथ सस्कृत, पाली या अन्य किस भाषा में है?

आचार्यश्री—वे सस्कृत पाली में नही, अर्द्धमागधी में हैं। केरल भी तमिलनाडु की तरह जैनों का केन्द्र रहा था। यह ऐतिहासिक युग की बात थी।

मेरी इस यात्रा का मूल उद्देश्य मानवता का निर्माण है। आज का मनुष्य मनुष्यता से दूर होता जा रहा है। उसे अपने स्थान पर प्रतिष्ठापित करना है। उसी विचार को फैलाने के लिए हम केरल मे आए हैं।

श्री नम्बूद्रीपाद—मुझे अफसोस है कि मैं आपकी सेवा में उपस्थित नही हो सका।

आचार्यश्री—आपके कुछ कठिनाइया हो सकती हैं। चरित्र के विचारों की कद्र और उसके आचरण को ही मैं सच्ची सेवा मानता हू।

श्री नम्बूद्रीपाद—यात्रा से पहले आप कहा रहते थे?

आचार्यश्री—हमारा कोई एक स्थान निश्चित नही होता। हम तो घूमते रहते हैं। राज्य सरकार ने स्कूलों आदि के लिए सर्क्यूलर निकालकर हमारे लिए स्थान की काफी सुविधा कर दी।

श्री नम्बूद्रीपाद—यह हमारा परम कर्तव्य है।

आचार्यश्री—केरल की सादगी से मैं प्रसन्न हू। चरित्र का कार्य केरल में भी चलना चाहिए। उसमें आपका क्या सहयोग हो सकता है?

श्री नम्बूद्रीपाद—अभी तक मैंने अणुव्रत का पूरा साहित्य नही पढ़ा है। केरल में कोई सगठन हो तो मैं उससे सपर्क रखूगा और सहयोग करूगा।

आचार्यश्री—केरल में हम अभी-अभी आए हैं। त्रिवेन्द्रम् में तीन दिनों में दो सो से अधिक व्यक्ति अणुव्रती बने हैं। कॉलेज के छात्र अणुव्रत में अत्यधिक रुचि ले रहे हैं।

१७ मार्च १९६९
केरल

आचार्य तुलसी : श्री भक्तवत्सलम्

[चोरडिया निवास मे तमिलनाडु के भूतपूर्व मुख्यमत्री श्री भक्तवत्सलम् ने आचार्यश्री तुलसी से भेट की। एक घटे का यह वार्तालाप अत्यत सुखद व प्रेरक रहा। प्रारभिक औपचारिकताओ के बाद वार्ता का प्रारभ आचार्यश्री ने किया।]

आचार्यश्री—आपका यह प्रान्त सास्कृतिक ही नही, अपितु सरसब्ज भी है। यात्रा-काल में मैंने सड़क के दोनों ओर मीलों तक चावल और ईख के लहलहाते खेतों को देखा। उनकी सिंचाई का कार्य बिजली से कुओं द्वारा होता है। लोगों से सुना कि यह सब कार्य आपके शासन-काल में हुआ है।

भक्तवत्सलम्—बिजली की सुलभता से खेत-खेत में कुए बनाने का प्रयास किया गया है। भूमि के अन्दर पानी काफी है। इसलिए यह योजना बहुत सफल रही। विनोबाजी जब इधर आए तो उन्होंने भी यही कहा था कि बिजली पानी को नीचे गिराने से बनती है। किन्तु मनुष्य अपनी बुद्धि से उसी विद्युत से पानी को ऊपर उठाने का कार्य करता है।

आचार्यश्री—जो गिरे हुए को ऊपर उठाए, वही तो शक्ति है। उस शक्ति से क्या जो दूसरों को गिराने का प्रयत्न करे।

भक्तवत्सलम्—आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं।

आचार्यश्री—यहा आने में कुछ विलम्ब हो गया। हम लोग आपके शासनकाल में नही आ सके।

भक्तवत्सलम्—आप उस समय आते तो हमारा सौभाग्य होता। आपके अन्य मुनियों के सान्निध्य में अणुव्रत कार्यक्रमों में मैं शामिल होता रहा हू।

आचार्यश्री—अणुव्रत का कार्य तो मानवता और अच्छाई के विकास का है।उसमें आप जैसे सुलझे हुए व्यक्ति शामिल क्यो नही होंगे।

भक्तवत्सलम्—लोकतन्त्र में ऐसे आन्दोलनो को बढ़ावा मिलना ही चाहिए। कल के पत्र और रेडियो में आपका भाषण सुना और पढ़ा। आपने बुराई के लिए

अगुलि-निर्देश की बात कही, वह अत्यन्त आवश्यक है। बुराई के प्रति अगुलि-निर्देश नही होगा तो लोकतत्र टिक ही नही सकेगा। मद्रास सरकार शराब बदी के पुराने नियम को मानती है। किंतु सभासद कहलाने वाले भी बोतलें पीते हैं तो दूसरों से क्या कहेंगे।

[मानसिक व्यथा प्रकट करते हुए] आचार्यश्री। आज हम कानून बनाते हैं। उस पर जोरदार भाषण कर देते हैं। लेकिन आचरण में उसके विपरीत चलते हैं।

आचार्यश्री—शासक होकर भी जो शराब के नशे में चूर रहेगा, वह शासन कैसे चला सकेगा। अणुव्रत का मुख्य कार्य लोकमानस को प्रबुद्ध करना है। वह तब ही सभव है, जब समाज बुराई के प्रति सामूहिक असहयोग प्रकट करेगा। लेकिन आज कोई भी किसी को कुछ कहकर कटु बनना नही चाहता। दूसरा कारण भय है। लोग सोचते हैं कि किसी को कुछ कहेगे तो पता नही क्या हो जाएगा? इसको हमे तीव्रता से तोड़ना है।

भक्तवत्सलम्—तमिलनाडु में क्या, शराब पीना तो दिल्ली में भी शिष्टाचार और फैशन का प्रतीक बन गया है।

आचार्यश्री—यह शिष्टाचार नहीं भ्रष्टाचार है। इसको मिटाने के लिए ऐसे आन्दोलनों की अत्यत अपेक्षा है।

भक्तवत्सलम्—हा आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। अणुव्रत का समाज में जितना व्यापक प्रसार हो सके, होना चाहिए।

आचार्यश्री—इसके लिए आपकी दृष्टि में पहले किस कार्य को यहा लेना चाहिए।

भक्तवत्सलम्—हम सब काम एकसाथ कर नहीं सकते। इसलिए प्रारभ में चरित्रवान् और कुशल व्यक्तियों का सकलन करें। उनमें अहिंसा और चरित्र की गहरी निष्ठा उत्पन्न करें। उन व्यक्तियो के पवित्र आचरण से जनता अपने आप अच्छे पथ का अनुसरण करने लगेगी।

आचार्यश्री—प्राचीन युग में सतो और ऋषियों के प्रभुत्व के कारण ही समाज चरित्र की ओर आगे बढ़ पाया है।

भक्तवत्सलम्—तमिलनाडु में धार्मिक सस्थाए बहुत हैं। मठ और मदिर तो गली-गली में हैं। धार्मिक सस्थाओं के सगठन का मैं अध्यक्ष रहा हू। मैंने साधु सतों को चारित्रिक कामों के लिए काफी कहा। किंतु उसका परिणाम कुछ नही आया।

आचार्यश्री—देश के सारे धार्मिक सस्थान एव साधुजन जनता के चरित्र को

उन्नत करने का सकल्प कर लें तो देश का उद्धार हो जाए। उन सबको इस ओर प्रेरित करने के लिए कोई प्रयत्न किया जा सकता है।

भक्त-वत्सलम्—उनके मुख्य अधिकारियों से मिलकर ही उनकी मानसिकता को समझा जा सकता है।

[विद्यार्थियों, व्यापारियों एव भाषा सबधी विविध विषयों पर भी अच्छी चर्चा हुई।]

९-७-१९६८

मद्रास

[मद्रास के पूर्व मुख्यमत्री श्री भक्तवत्सलम् अपने मित्र, मद्रास न्यायालय के न्यायाध्यक्ष श्री एन० के० कृष्ण स्वामी रड्डियार के साथ आचार्यश्री के उपपात मे पुन उपस्थित हुए। उन्होने गहरी श्रद्धा के साथ आचार्यश्री को वन्दना की और जिज्ञासु भाव से वहा बैठ गए]

भक्तवत्सलम्—आपसे फिर दुबारा मिलन हो गया है। इस बार इनको (न्यायाध्यक्ष को) साथ में लाया हू।

आचार्यश्री —अच्छे आदमी से बार-बार मिलना अच्छा है, उनसे बात करना अच्छा है। आज सत्सग के अभाव से ही दुनिया मे दो-तीन बाते क्षीण होती जा रही हैं—

- प्रामाणिकता
- मनुष्यता
- पवित्रता

भक्तवत्सलम्—यहा आते वक्त रास्ते में यही चर्चा चल रही थी। आज व्यक्तिगत श्रेष्ठ चरित्र कम हो गया है। इसलिए राष्ट्रीय चरित्र तो अपने आप कम होगा।

आचार्यश्री —चरित्र की कमी क्यो आई? इस प्रश्न पर विचार करता हू तो मुझे लगता है कि इसका एक कारण धर्मगुरुओं के सम्यक् पथदर्शन का अभाव रहा है। यदि उनके द्वारा जनता को सम्यक् पथदर्शन मिलता रहता तो ऐसा कभी नही होता।

भक्तवत्सलम्—आचार्यश्री! मठ और मन्दिर जिस लक्ष्य के लिए निर्मित हुए, उनका वह लक्ष्य नही रहा है। आज तो मठों में उसके विपरीत प्रवृत्तिया हो रही हैं।

न्यायाध्यक्ष—वहा तो उनकी सुरक्षा और व्यवस्था के अतिरिक्त कुछ नही सोचा जाता। कुछ चिन्तन चलता है तो अपने सम्प्रदाय को फैलाने का चिन्तन चलता है।

किन्तु मनुष्य का विकास कैसे हो, ऐसी चिन्ता किसी को नहीं है।

आचार्यश्री—मेरा भक्त किसी दूसरे के पास चला न जाए। शिष्यों का यह व्यामोह भी व्यक्ति की सम्यक् सोच में बाधक है। आज इन सब पर गहराई से सोचने की आवश्यकता है कि चरित्रवान बने बिना केवल पूजा, उपासना और अन्य प्रवृत्तियों से कल्याण होने वाला नहीं है।

भक्तवत्सलम्—अनेक धर्मों का अभिमत यही है कि मनुष्य का आदर्श ऊंचा हो, उसकी नीति अच्छी हो, लेकिन काम आदर्श के अनुरूप हो नहीं रहा है।

आचार्यश्री—धर्म के क्रियान्वयन का रूप ही अणुव्रत है। उसमें किसी भी जाति, धर्म, भाषा आदि के भेदभाव बिना सम्यक् आचरण पर बल दिया गया है। वह मनुष्य मात्र के लिए है। कोई जैन बने या न बने, किन्तु अच्छा आदमी अवश्य बने।

न्यायाध्यक्ष—तिरुकुलर में भी अणुव्रत की तरह सम्यक् उपदेश दिया गया है। उस ग्रन्थ पर अनेक धर्मों के लोग अपना अधिकार जताते हैं। जैन लोग जैनों का ग्रन्थ बताते हैं। वैष्णव लोग अपना बताते हैं। शैव और सिक्ख भी अपना होने का दावा पेश करते हैं। किन्तु उसमें अंकित अच्छी बातों को अपनाने के लिए कोई भी तैयार नहीं है।

आचार्यश्री—धर्म-ग्रन्थो की अच्छी बातें अपना ली जाए तो ससार का कायाकल्प हो जाए।

न्यायाध्यक्ष—अच्छा और बुरा मिला हुआ है। आज भले-बुरे को अलग-अलग करना भी मुश्किल हो गया है।

आचार्यश्री—भलाई और बुराई साथ रहेगी। ससार सर्वथा भला और सर्वथा बुरा बन जाए, यह सम्भव नही है। हम तो अणुव्रत के माध्यम से इतना ही चाहते हैं कि ससार में बुराई का पलड़ा भारी न हो। कम से कम ऐसी बुराइया न रहें, जो दूसरों के लिए घातक हो। इतना हो जाए तो हम अपने को कृतकृत्य समझेंगे।

न्यायाध्यक्ष—अणुव्रत अच्छाई का मध्यम मार्ग है जो सबके लिए ग्राह्य है। क्योंकि यह सबको अच्छा आदमी बनने की बात कहता है।

आचार्यश्री—सम्पूर्ण अहिंसा सत्य अचौर्य और अपरिग्रह महाव्रत महात्माओं के लिए हैं। किन्तु किसी के साथ विश्वासघात मत करो यह अणुव्रत जन साधारण के लिए है। सत्य अणुव्रत में वह झूठी साक्षी न दे, जिससे दूसरों का अहित हो।

न्यायाध्यक्ष—आज व्यक्ति चार आने के लिए बड़े से बड़ा झूठ बोल लेता है।

पैसा तो दूर रहा, वह हसी -मजाक में भी झूठ बोल लेता है। कभी अकारण ही कुतूहल के लिए भी झूठ बोल लेता है। एक आदमी ने झूठी साक्षी इसलिए दी कि सामने वाले को फासी मिले। यह भी कैसा विचित्र शोक है।

आचार्यश्री—आजकल कुछ लोग अपने आपको विश्वविख्यात बनाने के लिए भी बड़े-बड़े व्यक्तियो की हत्याए कर देते हैं। वे कहते हैं कि मर भले ही जाए, लेकिन नाम अमर हो जाएगा।

न्यायाध्यक्ष—अणुव्रत का तात्पर्य है कि जहा तक बन सके, अच्छा बनने का प्रयत्न करना। किन्तु आज मनुष्य अच्छे लोगों की सगति में आना ही नही चाहता। अच्छे लोगो की सगति अच्छा बनने का पहला रूप है।

आचार्यश्री—हमारे धर्मसघ के साधु-साध्विया सवा सौ वर्गों मे देश के विभिन्न भागो मे घूम-घूम कर प्रचार कर रहे है। हमारे धर्मसघ मे मन्दिर, मठ आदि नही होते। अपनी साधना के साथ-साथ जनकल्याण का यह कार्य बिना किसी भेदभाव के सभी वर्गों में करते हैं। वे भिक्षा में प्राप्त स्वल्प पदार्थों से अपने सयम-जीवन का निर्वाह करते हैं।

न्यायाध्यक्ष—प्रचार के लिए पदयात्रा सर्वोत्तम साधन है। इससे प्रत्येक ग्राम से सम्पर्क सधता है। साथ ही आपकी माधुकरी वृत्ति से प्रत्येक व्यक्ति से मिलन हो जाता है।

आचार्यश्री—आज शिक्षा, न्याय और स्वास्थ्य जन-साधारण के लिए अलभ्य और महगा है। धर्म तो और अधिक महगा हो गया है। गुरु और भगवान के दर्शन करने हों तो पहले भेंट चढ़ानी होती है अन्यथा दर्शन नही होते हैं। आचार्य भिक्षु ने कहा—'धार्मिक बनने के लिए धन की आवश्यकता नही होती है। प्रभु दर्शन के लिए भी किसी बाह्य पदार्थ की आवश्यकता नही है। धर्म और भगवान तो स्वय के सदाचरण से मिलते हैं।

भक्तवत्सलम्—कुछ लोग आपके सम्बन्ध मे आक्षेप करते हैं कि आचार्यश्री मन्दिरों का खण्डन करते हैं। उसम जाने के लिए मना करते हैं।

आचार्यश्री—हमारी नीति खण्डनात्मक नही है। और न हम किसी को कही जाने से रोकते हैं। द्रव्य-पूजा को में नही मानता और मेरा ख्याल है कोई भी जैन साधु द्रव्य पूजा को नही मानता। जहा भगवान की भाव पूजा का सवाल है, वह कही भी की जा सकती है। मै स्वय करता हू तथा औरों को भी प्रेरणा देता हू। फिर भी हमें तो अणुव्रत का कार्य ही मुख्य रूप में करना है, जिससे मानव अच्छा मानव

बन सके।

न्यायाध्यक्ष—हम भी अच्छे बनें, यही हमारी इच्छा है। आपने छोटी-छोटी अणुव्रत की बातों से विश्व को महत्त्वपूर्ण देन दी है। छोटा सकल्प भी दृढ़ता से पालन करने से अन्त करण में क्रान्ति हो जाती है। लोग कहते है कि सिगरेट छूटता नही। कभी मैं भी सिगरेट पीता था। एक दिन वर्षा का समय था। सिगरेट को जलाने का मैंने प्रयत्न किया। वह जली नही। वहा से दूसरे स्थान पर गया। फिर तीसरे स्थान पर पहुचा। एक घटे का समय नष्ट करके भी कार्य पूरा नही कर सका। मन में एक विचार आया और साथ ही अपनी आदत पर तरस आया। मैंने तत्काल सिगरेट फेंक दी। आज पाच वर्ष होने जा रहे हैं। उसके बाद सिगरेट को छुआ तक नही।

आचार्यश्री—सकल्प का विकास करने वाले के लिए कठिन काम भी सरल बन जाता है। आज फिर से समाज मे सकल्पशक्ति को जागृत करना है। आप लोग भी मुख्यमत्री आदि को शपथ दिलाते हैं। वह तो एक उपचार-सा रह गया। मैं चाहता हू कि आप आत्मसाक्षी से अणुव्रतो का सकल्प करें।

[न्यायाधीश महोदय और श्री भक्तवत्सलम्जी मुस्कराते हुए एक-दूसरे की ओर देखने लगे।]

न्यायाध्यक्ष—मैं पहले अणुव्रत के साहित्य और व्रतो को अच्छी तरह पढ़ लू। दूसरी बार मिलने के समय अवश्य सकल्पपूर्वक अणुव्रतों को ग्रहण करने का प्रयास करूगा।

१५-७-१९६८
मद्रास

आचार्य तुलसी : श्री गुमानमल लोढा

[राजस्थान उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री गुमानमल लोढा प्रात कालीन प्रवचन के बाद आचार्यश्री तुलसी के दर्शन करने आए। उन्हाने आचार्यश्री के साथ आधा घटा बात की। युवाचार्य महाप्रज्ञ भी उस वार्तालाप मे सभागी रहे।]

आचार्यश्री—वतमान युगीन आचार के सकट से सभी समाज एव वर्ग न्यूनाधिक रूप से प्रभावित हैं। फिर भी जैन समाज का औसतन स्तर इस दृष्टि से ऊचा है। हम निराशा की दृष्टि को छोड़ ऐसे व्यक्तियो को आगे लाना होगा, जिनकी प्रामाणिकता ओर नैतिकता की सर्वत्र छाप हो।

लोढाजी—आपके इस दृष्टिकोण के साथ में सहमत हू कि चरित्रवान व्यक्तियो का सम्मान किया जाना चाहिए। विशेषत धार्मिक मचो पर ऐसे ही व्यक्ति को प्रतिष्ठा प्राप्त हो।

युवाचार्यश्री—हम लोगा ने सभी सम्प्रदायो के जैन साधुओ एव श्रावकों के लिए एक न्यूनतम आचार-सहिता बनाने की योजना पर चिन्तन किया है। हम चाहते हे कि जेनधम की प्रभावना के लिए जैन साधुओ और श्रावको का स्तर इस सहिता से भिन्न न हो।

लोढा' इसकी बहुत बडी आवश्यकता है। एक ओर जैन मुनि सारे ससार मे त्याग आर अपरिग्रह के उच्च आदर्श के रूप म सम्मान पा रहे हैं, वहा कुछ साधुओ मे स्वच्छन्दाचार एव अनेक प्रकार की विकृतिया आ गई हैं जो जैन साधु के लिये अत्यन्त लज्जा की बात है' मै मन्दिरमार्गी हू, पर मेंने कुछ ऐसे साधुओं को परिग्रह के सग्रह में लिप्त हुए देखा ह। उनके बेक-बलेस भी पाए गए हैं।

आचार्यश्री—पालीताणा की स्थिति हमने देखी है। जहा जैन साधु-सघ की स्थिति बहुत दयनीय हे, चिन्तनीय हे।

लोढाजी—आचार्यजी! आप क्या कहते है। वहा की स्थिति देखकर मेरी आखों मे आसू आ गए। विचित्र बात यह ह कि वहा साधु-साध्वी स्वय अपना

अपमान करवा रहे हैं।

आचार्यश्री—वहा हमने देखा कि धन बहुत खर्च हो रहा है, लेकिन केवल मन्दिरों के निर्माण में। वार्तालाप के मध्य एक सुझाव आया कि इतने अर्थ व्यय से तो विश्वविद्यालय चलाये जा सकते हैं। तथा ज्ञान और विद्या का व्यापक प्रसार किया जा सकता है। इस सदर्भ मे यह कहा गया कि देव-द्रव्य का उपयोग उसमें नहीं किया जा सकता।

लोढाजी—मेरी तो मान्यता है कि यदि अर्थ का उपयोग मानव के लिए ज्ञान के लिए नही होगा तो देवता भी कह' प्रसन्न होंगे। इससे अधिक अच्छा उपयोग देव-द्रव्य का और क्या हो सकता है। वैसे आज जैन समाज में अर्थ की कमी नहीं है। यदि सही उपयोग हो तो अर्थ अपने आप आता है।

आचार्यश्री—जैन विश्वभारती के रूप में जो उपक्रम प्रारम्भ हुआ है वह व्यापक लक्ष्य को लेकर समाज के सामने आया है। सभी लोगो के लिए यह उपयोगी है।

लोढा जी—यह महान सस्थान है। प्राच्य विद्याओं के अनुसन्धान और शिक्षण प्रशिक्षण का सस्थान है। इससे सभी लोग उपकृत हो सकते हैं।

आचार्यश्री—यहा के साधना केन्द्र मे मनुष्य को बदलने की दिशा में प्रायोगिक स्तर पर कार्यक्रम चल रहे हैं।

युवाचार्यश्री—धर्म का उपदेश मनुष्य को बदलने की प्रेरणा दे सकता है पर परिणाम तभी आएगे जब उसका वास्तविक प्रयोग किया जाए। जैनधर्म में ग्रहण और आसेवन—दोनो प्रकार की शिक्षा पर बल दिया है। ग्रहण ज्ञानात्मक है, आसेवन प्रयोगात्मक। साधना के प्रयोग वैज्ञानिक आधारों को लिए हुए हैं। वे मनुष्य के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के रूपान्तरण की क्षमता रखते हैं। जैन विश्वभारती साधना केन्द्र के रूप मे प्रतिष्ठित हो चुकी है। अणुव्रत आन्दोलन का यह अगला चरण है।

लोढाजी—अणुव्रत आन्दोलन ने जो दृष्टिकोण दिया है वह आज के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। युग की माग को इसने पूरा किया हे ।

२१ सितम्बर १९८०
जैन विश्वभारती लाडनू

आचार्य तुलसी : श्री बलरामय्या

[यातायात विभाग, जज श्री बलरामय्या अपलेट ने आचार्यश्री से परिवार-नियोजन एव सयम विषय पर विचार-विमर्श किया।]

आचार्यश्री—आप हिन्दी जानते हैं ?

बलरामय्या—मुझे हिन्दी का अभ्यास नहीं है। मेरी मातृभाषा तेलगु है। तमिलनाडु में रहने से तमिल का अभ्यास भी हो गया है।

आचार्यश्री—आप अग्रेजी तो जानते होंगे ?

बलरामय्या—अग्रेजी जाने बिना कोई जज नहीं बन सकता।

(आचार्यश्री मुस्कराने लगे। उनकी चमकती आखों ने कुछ कहा वह भारतीय सस्कृति की दृष्टि से चिन्तनीय अवश्य है। अग्रेजी जाने बिना जज नही हो सकता। यह एक भारतीय द्वारा भारतीय भाषा पर तीखा व्यग्य है। अग्रेजों को भारत से गए २१ वर्ष हो रहे हैं फिर भी अग्रेजा से विरासत मे मिला अग्रेजीपन भारतीयों के मन से अभी तक गया नही। काश! भारतीय लोग अब भी भारतीय सस्कृति और भारतीय भाषा के बारे मे सोचते। दक्षिण के लोगों की सस्कृति एव सस्कार भारतीयता के अधिक अनुरूप हैं। श्री बलरामय्या भी भारतीय सस्कृति के उपासक हैं। फिर भी आज अग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों का समय अग्रेजी के गौरवगान में बीतता है। केवल अग्रेजी में ही ज्ञान-विज्ञान को अभिव्यक्ति देने की सामर्थ्य हो, यह जरूरी नही। किसी भी भारतीय भाषा में ऐसी योग्यता हो सकती है।)

बलरामय्या—आचार्यश्री! भारत सरकार ने २३५ करोड़ की राशि केवल परिवार-नियोजन पर खर्च करने का निश्चय किया है। उसके लिए अनेक प्रविधिया अपनाने के लिए जनता को बाध्य किया जा रहा है। वन्ध्यकरण की परम्परा मनुष्य जाति के लिए बहुत ही खतरनाक है और पापाचार फैलने का खुला मार्ग है। आप जैसे समर्थ आचार्य को इस सबध मे विचार व्यक्त करने चाहिए। आपके मार्गदर्शन से जनता सही निर्णय कर सम्यक् जीवन जी सकती है।

आचार्यश्री—आचार्य विनोबा भावे ने इस सबध में कुछ कहा है ?

बलरामय्या—अभी तक तो स्पष्ट रूप में कुछ नही कहा है। एक बार उन्होंने इसके विरोध में ही कुछ अभिमत व्यक्त किया था।

आचार्यश्री—अभी तक मैने इसका गहराई से अध्ययन नही किया है। इसलिए स्पष्टत इसके विपक्ष या पक्ष में बोलने से पहले कुछ अध्ययन करना चाहिए। फिर भी इतना तो स्पष्ट है कि यह मनुष्य को विकृति की ओर ले जा रहा है।

बलरामय्या—आप जैसे व्यक्तित्व के धनी को इसके बारे में विशेष पढ़ने और जानने की आवश्यकता नही। आपके स्पष्ट विचारों से हम जैसों को सहारा मिल जाता है।

आचार्यश्री—आज बहुत-सी बातें सामयिक आवश्यकता की होती हैं। जनता की उपयोगिता के आधार पर उनका प्रचलन और प्रचार होता है। उसके परिणाम के सबध मे विचार नही किया जाता।

बलरामय्या—आपको इसके सबध में अपना अभिमत व्यक्त करना चाहिए।

आचार्यश्री—मैंने अपनी राय कई बार व्यक्त की है। अपनी राय को अभिव्यक्त करने मे कोई कठिनाई नही है।

बलरामय्या—मै इसके खिलाफ हू। किंतु सरकारी नौकर होने के नाते कुछ बोल नही सकता।

आचार्यश्री—क्रिश्चियन, मुसलमान आदि भी इसे नही मानते। लेकिन आजकल के युवक विशेष रूप से इस ओर आकृष्ट हैं। उनके सामने तो केवल इन्द्रिय-सुख का लक्ष्य है।

बलरामय्या—आधुनिक युवक ही नही आज आम गरीब जनता को प्रलोभन देकर इस प्रक्रिया का प्रसार किया जा रहा है। सरकार एक ऑप्रेशन पर ५० रु पारितोषिक देती है। उसके लोभ मे डॉक्टर भी इस आर लोगो को प्रेरित करते हैं।

आचार्यश्री—वन्ध्यकरण की विदेशों मे क्या स्थिति है ?

बलरामय्या—वहा ऑप्रेशन का प्रचलन ही नही है। लेकिन अन्य साधनों का उपयोग करते है। वहा वे उनके उपयोग में विवेक भी रखते है।

आचार्यश्री—गरीब लोगो के पास साधन नही हैं। इसलिए उनकी गरीबी का दुरुपयोग करना तो अच्छा नही हो सकता। उनमे भी विवेक जागृत कर उन्हे सयम की ओर प्रेरित किया जाए तो समस्या का सहज समाधान हो जाए।

बलरामय्या—सयम और आत्मज्ञान की बात अलग है । सरकार अपनी मनचाही चला रही है । समाज मे क्या हित या अहित होता है, उसकी ओर कौन गौर करता है । पुराने जमाने म बचपन में शादी कर देते थे । इस समय सरकार द्वारा १६ वर्ष पहले लड़की की शादी पर प्रतिबध लगा हुआ है । अब सरकार उस उम्र को २१ वर्ष तक बढ़ाने की सोच रही है । इसके परिणाम समाज में क्या आयेगे ? आपको मैं क्या बताऊ । आज के दूषित वातावरण मे बड़ी लड़कियों से समाज मे विकृतिया फैलेगी । लेकिन सरकार को इससे क्या ? हम लोगों को अनुभव है कि किस प्रकार ऐसे वातावरण मे अपनी लड़कियों की जिम्मेदारिया निभाते हैं ।

आचार्यश्री—प्रश्न बड़ी-छोटी अवस्था का नही है । जब तक स्कूल एव समाज मे नैतिक शिक्षा की प्रवृत्ति नही होगी ये समस्याए मिटने की नहीं । माता-पिता को अपनी सताना मे सयम के सस्कार भरने चाहिए ।

बलरामय्या—उनमे सयम के सस्कार हो तब न ।

आचार्यश्री—गुजरात महाराष्ट्र आदि प्रान्तो म लड़कियों की शादी बड़ी उम्र म होती है । फिर भी वे सुशील व विवेकशील लगती हैं ।

बलरामय्या—यहा की परिस्थिति भिन्न है । यहा सिनेमा आदि अन्य प्रवृत्तियों का इतना प्रचलन है कि उससे बच्चे के मन एव सस्कारों पर गलत असर आ जाता है । यहा स्त्री-शिक्षा का भी इतना प्रचलन नहीं है । इस कारण भी वे बुराइयों से बच नहीं सकती ।

आचार्यश्री—इस प्रदेश में छोटे-छोटे गावों में भी छविगृह देखने में आए हैं । मद्रास मे भी छविगृह बहुत हैं । सड़कों की दीवारों पर सिनेमा के इतने बड़े-बड़े पोस्टर दूसरे प्रदेशों में कम देखने मे आए ।

बलरामय्या—एक रुपया कमाने वाले मजदूर के यहा भी चार आने चाय कॉफी म चार आने चावल में और आठ आने सिनेमा देखने म व्यय हो जाते हैं । कभी पास मे पैसा न हो तो अच्छा कपड़ा गिरवी रखकर भी वह सिनेमा मे जाएगा ।

आचार्यश्री—युग-प्रवाह ऐसा चल रहा है । उसको रोकना सहज नही है ।

बलरामय्या—यह तो ठीक है । किन्तु आप जैसे महापुरुष ही इसके लिए कार्य कर सकते हैं ।

आचार्यश्री—अणुव्रत के माध्यम से जनता के मानस को प्रशिक्षित किया जा रहा है । यहा के लोगों मे धर्मगुरु और भगवान के प्रति श्रद्धा है । इसलिये

सम्यक् शिक्षण मिलने से सुधार सभव है।

बलरामय्या—समाज को जिस कारण से दु ख एव पीड़ा होती है, आपको सम रूप से एक सामूहिक वातावरण बनाकर उसको मिटाना चाहिए।

आचार्यश्री—मैं अपनी सीमा में रहकर अपना कार्य कर सकता हू। उसका प्रयत्न चल रहा है। अणुव्रत का राष्ट्र में व्यापक प्रसार हो जाए तो समस्याए स्वय समाहित हो जाएगी।

१७-८-६८
मद्रास

आचार्य तुलसी : श्रीमती सौन्दरम्

[मद्रास उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की धर्मपत्नी सौन्दरम् कैलाशम् से धर्म, नीति और व्यवहार के विभिन्न पहलुओं पर सरस चर्चा हुई। श्रीमती सौन्दरम् अपने चिन्तन को बड़ी निर्भीकता एव विनम्रता से प्रस्तुत कर रही थी। उसके प्रश्न एव चिन्तन के पीछे स्वाध्यायशीलता झलक रही थी।]

सौन्दरम्—इस वसुन्धरा पर पच्चीसवा अवतार होगा। मैंने कही ऐसा पढ़ा है।

आचार्यश्री—जैन मान्यता के अनुसार पच्चीसवा अवतार इस भूमडल पर नहीं होगा। प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी में चौबीस-चौबीस तीर्थंकर होते है। जैन साहित्य में २५वें अवतार का उल्लेख कही उपलब्ध नही है।

सौन्दरम्—प्राचीन युग मे मत्रविद्या थी। अथर्ववेद में भी जैन मुनियों के मत्र हैं। क्या आज भी वे उपलब्ध हैं?

आचार्यश्री—प्राचीन युग में मत्रविद्या का प्रचुर प्रचार था। आज भी कुछ उपलब्ध हैं। किंतु उन मत्रों का प्रयोग निषिद्ध होंने से वे लुप्तप्राय हो गए हैं।

सौन्दरम्—देश में अकाल, रोग और दु ख आदि को दूर करने के लिए तो इनका प्रयोग होना ही चाहिए।

आचार्यश्री—लोक-कल्याण के लिए मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिए, यह बात बार-बार आती है। किंतु श्रमण लोग अध्यात्म की भूमिका पर ठहरे हुए हैं। प्राचीन आचार्यों ने केवल अध्यात्म-विकास के लिए ही उनका प्रयोग करना बताया है।आज रोग, अनावृष्टि, अतिवृष्टि, क्लेश आदि का मूल कारण चरित्र की भ्रष्टता है। कर्मवाद को मानने वालों का अभिमत है कि वैयक्तिक और सामुदायिक कर्म-श्रृखला का ही यह परिणाम है। ऐसे चरित्र-भ्रष्ट वातावरण में सुकाल और सुवृष्टि हो तो यह आश्चर्य होगा।

सौन्दरम्—एक भी सज्जन जब तक धरा पर रहता है।उसके सच्चरित्र या शुभ कर्मों से दूसरों को भी सहारा मिल जाता है।

आचार्यश्री—लोग सुख की कामना तो करते हैं किंतु अपने

परिवर्तन करना नही चाहते। आचरण में परिवर्तन किये बिना सुख की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?

सौन्दरम्—भूखा व्यक्ति सब-कुछ कर लेता है। वह एक बार तो भगवान का बात भी नही मानता। जब तक समाज में भूख और असमानता रहेगी तब तक अमन होना मुश्किल है।

आचार्यश्री—आज भूख भी कृत्रिम हो रही है। सच्ची भूख कम है। कहने को तो कहते है कि हम भूखे मर रहे है, पेट भरने को भी पूरा नही है। मैं इस यात्रा म बेलूर जिला के अतर्गत वेलीऊर ग्राम मे गया। ग्राम के सैकड़ो लोग बड़ा श्रद्धा से दर्शनार्थ आए। मैं एक वृक्ष के नीचे ठहरा हुआ था। आने वाले लोगों स बातचीत के प्रसग में मैंने पूछ लिया—'तुम्हारे खेत लहलहा रहे हैं। तुम लोग तरह से सुखी तो हो ?'

'नही महाराज। हमें सुख कहा ? दो समय भरपेट रोटी भी मुश्किल हा रहा है।'

'क्यो ?अनाज तो तुम्हारे खेतों मे बहुत होता है ?'

'किन्तु'—। किंतु फिर क्या है ? खेत में अनाज हो और भरपेट रोटी नहा। समझ में तो कुछ कम ही आ रहा है। खैर—तुम लोग शराब पीते हो ?

महाराज। कभी कभी पी लेते है।'

'सिनेमा और धूम्रपान ?'

'इसके बिना मनोरजन का साधन हमारे पास और है ही क्या ?'

मैं यह सुनकर अवाक् रह गया। क्या शराब सिनेमा ओर सिगरेट के अतिरिक्त कोई मनोरजन का साधन है ही नही ? पैसे का इतना दुरुपयोग। फिर कहते हैं कि पेट भूखा है। भूखे पेट को सिनेमा या शराब अच्छे लगेगे ? भूख नही, आज लोग व्यसनो में डूबे जा रहे हैं। उनको सम्यक् जीवन जीने का प्रशिक्षण भी नही दिया जाता है। उनको शिक्षण दे भी कौन ? राजनीतिज्ञो को तो कुर्सी चाहिए। कुर्सी की सेवा से ही उनको फुरसत नही तब जनता की सेवा कौन करे ?

सौन्दरम्—कुर्सी की सेवा भी तो कहा करते हैं ? कुर्सी की सेवा करें तो भी कुछ समस्या हल हो जाए।

आचार्यश्री—जन-साधारण को भूख का कष्ट नही है। उनका वास्तविक कष्ट तो जीवन जीने की कला के ज्ञान का अभाव है। सम्यक् जीवन जीने की कला सीख ली जाए तो भुखमरी या गरीबी की सारी समस्याए ही स्वत हल हो जाए। अणुव्रत

मनुष्य को जीवन जीने की कला सिखाता है। मनुष्य सही ढग से जीना सीखने, व्यसनमुक्त जीवन का सकल्प कर ले तो एक सीमा तक, अमीरी और गरीबी की समस्त समस्याओं का हल निकल सकता है।

सौन्दरम्—आचार्यश्री! आपकी पदयात्रा की प्रक्रिया अत्युत्तम है। तमिल में यात्रा को 'अड़ी' कहते हैं। उसका दूसरा अर्थ कृपा भी होता है। आप यात्रा के साथ जगत पर कृपा भी कर रहे हैं।

आचार्यश्री—भारतीय मानस की यही तो कठिनाई है। वे श्रद्धा से भरे रटे-रटाए वाक्य बोल कर अपने-आपको भक्तिपरायण मान लेते हैं। किंतु उनके अनुकूल कर्म करने को तैयार नहीं होते। कर्म किए बिना किसी भी फल की प्राप्ति नही हो सकती। यहा भक्तिवाद का तो विकास हुआ किंतु पुरुषार्थवाद विकसित नही हो सका।

सौन्दरम्—कर्मवाद तो आज है ही कहा। आज तो इन्सान ऐसे-ऐसे कार्य कर निश्चिन्त बना हुआ है मानो उसे कभी मरना ही नही है और न ही अपने कृत कर्मो का फल भोगना है।

आचार्यश्री—बुरे से बुरा कार्य करके मानव भगवान से प्रार्थना करता है।'भगवन्! ऐसी दया करो कि मैं बिल्कुल साफ निकल जाऊ। यदि निकल गया तो स्वर्ण-मुकुट और छत्र चढ़ाऊगा।' आज भगवान और गुरु के पास भी शुद्ध भावना से जाने वाले कितने लोग हैं?

सौन्दरम्—गुरु और मदिर मे तो सब-कुछ मान्य है। वहा उसके मन में जोश भी रहता है। लेकिन वहा से हटते ही वह सब-कुछ भूल जाता है और गलत रास्ते मे पड़ जाता है।

आचार्यश्री—मनुष्य ने अपने विचारो आचरण तथा व्यवहार से कृत्रिम वातावरण बना रखा है। वह उससे निकलना नही चाहता। उसमें ही वह तृप्त है। उस घेरे मे रहते हुए वह सच्चाई पा नही सकता। सच्चाई को पाने के लिए बहुत-कुछ त्याग करना होता है।

सौन्दरम्—आज ऐसा वातावरण बन गया है कि सच्चाई के लिए ही नहीं, झूठ के लिए भी हम लोगो को न जाने क्या-क्या करना होता है। मेरे पास कुछ गरीब लड़किया नौकरी की सिफारिश करवाने के लिए आती हैं। यदि मैं उनकी सिफारिश करने नही जाऊ तो घमडी कहलाती हू। कही सहयोग के लिए जाती हू तो ऐसे-ऐसे आदमियो की खुशामद करनी होती है जिनके [illegible] और जीवन मैं जानती हू। उनको गरीबों का मसीहा बनाना पड़ता है। इन प्रवृत्तियो से दिल अन्दर ही अन्दर

विद्रोह करता है। आचार्यश्री! इसके निवारण का उपाय सन्यास ही है या और कुछ?

आचार्यश्री—सन्यास के अतिरिक्त अणुव्रत का रास्ता भी है। अणुव्रत का सूत्र है— सयम। जीवन मे सयम उतरते ही आवश्यकता कम हो जाएगी। आवश्यकताए सीमित होंगी तो उनके लिए बोली जाने वाली झूठ और खुशामद अपने आप कम हो जाएगी।

सौन्दरम्—आपने व्रत की बात कही, वह अच्छी है। किंतु उनके पालन मे इतनी दृढता कहा है? प्रलोभन सम्मुख आते ही व्रत खिसक जाते हैं। उसके लिए क्या करना चाहिए?

आचार्यश्री—सकल्प की दृढता के लिए भावना-योग का प्रयोग करना चाहिए। भावनाओ के द्वारा सस्कार बदल जाते हैं। दूसरी बात— सकल्प का स्वीकरण गुरुसाक्षी या सार्वजनिक रूप से सबके सम्मुख करना चाहिए। जिससे मन में सकल्प के सस्कार गहरे बैठ जाए।

सौन्दरम्—मैने बहुत बड़े-बड़े लोगो को देखा है। किंतु आपकी विशाल आखें उन सबसे भिन्न हैं।

आचार्यश्री—मेरी आखे मुझे तो दिखाई नही देती।

सौन्दरम्—तभी तो आप इनसे सारे ससार के अत करण को देखते हैं और उसमें अमृत उड़ेलते हैं।

आचार्यश्री—पूज्य गुरुदेव कालूगणी भी कहा करते थे कि इसकी आखों की चमक कुछ भिन्न ही है। मैं तो इसको गुरु की महर ही मानता हू।

सौन्दरम्—आप जैसे बड़े लोगों क दर्शन से पाप कटते हैं।

आचार्यश्री—लोगो मे ऐसी भक्ति तो है, किंतु अपने आचरण को ऊचा उठाने की भावना कम है। अधिक लोग परलोक सुधारने और सुख-समृद्धि पाने के लिए ही धर्म करते हैं।

सौन्दरम्—भगवान की पूजा में भी स्वार्थ जुड़ा रहता है। व्यक्ति का पुनर्जन्म अच्छा हो उसे ऐश्वर्य और सुख मिले यह लक्ष्य प्रमुख रहता है।

आचार्यश्री—भगवान महावीर ने कहा—'इहलोक, परलोक, कीर्ति और श्लाघा के लिए तपस्या नही करनी चाहिए। निर्जरा के अतिरिक्त अन्य किसी भी उद्देश्य से तपस्या नहीं करनी चाहिए।'

सौन्दरम्—आप शरीर को इतना कष्ट क्यों देते हैं?

आचार्यश्री—हम लोग शरीर को कष्ट देने के लिए अपनी चर्या नही करते। पदयात्रा हमारी चर्या का एक अग है। आप लोगों को यह कष्ट लगता है। किंतु हमें इसमें आनद की अनुभूति होती है। हमारे अभिमत से साधु की जीवन-पद्धति सहज एव सरल है। गृहस्थ का जीवन दिखावटी सुख-सुविधाओं से भरपूर दिखाई देने पर भी अन्ततोगत्वा कष्टपूर्ण जीवन है, जिसे आप महसूस नही करती। करती हैं तो भी आपका अन्त करण उससे कपित नही होता।

सौन्दरम्—आपकी कष्टपूर्ण यात्रा की स्मृति से तो मेरे रोम-रोम खड़े हो जाते हैं।

आचार्यश्री—ऐसे करोड़ों गृहस्थ हैं, जिनका जीवन कष्टों से प्रताड़ित है। उनकी ओर आख उठाकर देखने को भी कोई तैयार नही है, सहानुभूति और सहयोग की बात तो बहुत दूर है। लेकिन हमारी सामान्य चर्या भी लोगों को कष्टपूर्ण लगती है। मुझे इस सबध में टालस्टाय की बात याद आ जाती है। उसने कहा था—'ईसा की शूली को सब बड़ी श्रद्धा से स्मरण करते हैं, किंतु करोड़ों गृहस्थ जो जीवन-भर शूली पर लटके हुए हैं, उनको कोई पूछता नहीं।' अतर इतना ही है कि ईसा की शूली परमार्थ की थी और गृहस्थों की शूली स्वार्थ की है। परमार्थ में जो कष्टपूर्ण जीवन जीता है, उसे लोग देख लेते हैं। किंतु स्वार्थ-साधना में निरत लोगों की ओर कोई ध्यान नही देता।

सौन्दरम्—आचार्यजी! आप बिल्कुल ठीक कह रहे हैं। जो स्वार्थ का त्याग कर परमार्थ में जीता है, वह महान बनता है।

(सौन्दरम् अपने साथ कुछ फल लाई थी। बातचीत के प्रसग में उसने जैन मुनियों की विधि को जान लिया। फलों की टोकरी एक ओर रखती हुई कहने लगी)

आचार्यश्री! आप तो यह भिक्षा नही लेंगे। किंतु मुझे तो आत्म-भिक्षा दीजिये।

आचार्यश्री—आप भी बड़ी विचित्र हें। भिक्षुओं से भिक्षा माग रही हैं? आपने सहज तत्त्वचर्चा से जो पाया है, वह क्या कुछ कम पाया है। उसका प्रयोग करने से जीवन में एक अभिनव क्राति हो जाएगी।

सौन्दरम्—यह तो मैं करूगी ही। लेकिन प्रेरणा के लिए आप अपना पुराना वस्त्र ही दे दें। मैं उसे पूजा-स्थान में रखूगी।

आचार्यश्री—हम सब चैतन्य के उपासक हैं। उसकी पवित्रता ही हमारा लक्ष्य है। तब वस्त्र को रखने से क्या लाभ? पुष्प द्वारा वस्त्र-पूजा से ही कल्याण हो जाए तो फिर त्याग और तपस्या की आवश्यकता ही क्या रहेगी? दूसरी बात हमारी

उपासना ऐसी होनी चाहिए जिसमें किसी छोटे से छोटे पुष्प जैसे प्राणी को भी क्लेश न हो। अगर किसी को हमारी उपासना से क्लेश होता हो तो वह उपासना ही क्या?

सौन्दरम्—यही बात प्रकारान्तर से प्रसिद्ध सत ताइमानवर ने कहा है। वे एक दिन पूजा के लिए फूल तोड़ने गए। फूलों को तोड़ने के लिए ज्योंही उन्होंने हाथ डाला कि वे अवाक् रह गए। दो क्षण रुककर वे बोले—'अरे ! यह तो पुष्प नहीं, साक्षात् परमात्मा हैं। उनको उसी फूल में भगवन के दर्शन हो गए। वे वहा से हट गए और बोले—'भगवान् को तोड़कर भगवान के चरणों में कैसे चढाऊ? मुझसे ऐसा नही होगा।

आचार्यश्री—जिसको आत्मानुभूति हो जाती है, उसके लिए छोटे-बड़े सभी जीव समान हैं। फिर वह पुष्प का जीव हो या और किसी का जीव। इस बात को भगवान महावीर ने 'आय-तुला पयासु' आत्मा के तुल्य प्राणियों को जानो—कह कर बताया है।

सौन्दरम्—आप फूलों के जीवन की बात करते है। उनका क्या होगा जो बकरों को काट-काट खा जाते हैं। तड़पते हुए जीव की भी परवाह न कर बड़ी निर्दयता से ऐसा कर लेते हैं।

आचार्यश्री—सत्सग का मतलब यही है कि मनुष्य महापुरुषों के श्रेष्ठ आचरणों का अनुगमन करे। एकसाथ पूर्णरूप से नही तो क्रमश अभ्यास करे। अभ्यास हो जाने पर सकल्प करे। यही अणुव्रत है। इसको स्वीकार करने से स्वत आत्म-सयम हो जाता है। आत्म-सयम आगे चलकर आत्म-साक्षात्कार की ओर ले जाता है।

२४ जुलाई १९६८
मद्रास

आचार्य तुलसी : श्री गोकुल भाई भट्ट

[गोकुल भाई भट्ट, राजस्थान प्रादेशिक सेवा सघ के मत्री बद्रीनाथ, प्राकृतिक चिकित्सक श्री सरदारमलजी जैन आदि अनेक प्रमुख व्यक्ति आचार्यश्री के उपपात म उपस्थित थे। अहिंसा शक्ति और कार्यकर्ता शक्ति के बारे मे गभीर चर्चा हुई। भावात्मक एकता सप्ताह और अणुव्रत अधिवेशन के साथ कार्यकर्ताओ का विशेष सम्मेलन आमन्त्रित करने का निर्णय लिया गया।]

आचार्यश्री—६ से ८ अक्टूबर, १९६२ तक अणुव्रत अधिवेशन चलने वाला है। उस समय हम उसके कार्यक्रम में व्यस्त रहेगे। ९ अक्टूबर को कार्यकर्ताओ का सम्मेलन होने से अधिवेशन के साथ इसका सवध जुड़ जाएगा।

बद्रीनाथ—यह अच्छा ही रहेगा। ऐसा होने से हमे आपका सान्निध्य मिल जाएगा।

गोकुल भाई—अणुपरीक्षण के विरोध में बर्टेंड रसेल आवाज उठा रहे है। शाति म विश्वास रखने वालो को उनकी आवाज में आवाज मिलाकर सबल बनाना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय शाति सेना का कार्यालय लन्दन में है। बर्टेंड रसेल जयप्रकाशजी, सिद्धराजजी डड्ढ़ा आदि भी इसके सदस्य हैं। उसकी एक शाखा बनारस मे भी है। ९ सितम्बर को उसका एक विश्वव्यापी कार्यक्रम हो रहा है। उस दिन प्रत्यक व्यक्ति आधे दिन भोजन न करके कुछ आर्थिक सहायता शाति-सगठन को द, यह चिन्तन किया गया है। उस दिन प्रदर्शन और सभाए भी होनी चाहिए। म चाहता हू कि उदयपुर मे भी आपके सान्निध्य मे एक सभा हो जिसमे सभी साधु सभागी बन और अहिंसा के विषय मे दो शब्द कहें।

आचार्यश्री—अहिंसा म विश्वास रखने वाले सघ परस्पर में सगठित होना तो दूर, मिलना भी नही चाहते। उपासना का तत्त्व अपना-अपना रखते हुए भी अहिंसा क आचरण मे वे एकमत होना नही चाहते। इसीलिए अणुव्रत आचार-सहिता मे अणुव्रती के लिए एक नियम रखा गया है—मैं सब धर्मों के प्रति तितिक्षा के भाव रखूगा। तितिक्षा पारस्परिक निकटता बढ़ती है। अहिंसक सगठन का यह पहला

सोपान है। अक्टूबर के महीने में अणुव्रत का अधिवेशन हो रहा है। श्री जयप्रकाश कुछ महीने पहले धवल समारोह पर आए थे। उनसे बात हुई थी। यदि व्यस्त न रही तो संभव है वे इसमें भाग लें सकेंगे। चिन्तनशील व्यक्तियों के पास विचार-विमर्श करते रहने से विचारों को बल मिलता है। कम से कम एक-दूसरे के विचारों से अवगत तो होते ही हैं।

बद्रीनाथ—विनोबाजी भी यही कहते हैं कि अहिंसा में आस्था रखनेवालों को सर्वोदयी परिवार का सदस्य मान लिया जाए।

आचार्यश्री—आस्था की सीमा क्या रहेगी?

गोकुल भाई—कोई मूर्तरूप होना चाहिए।

आचार्यश्री—अहिंसा में आस्थावान रहने का मार्ग है—अहिंसा अणुव्रत अपनाना। उसके मुख्यत दो बिन्दु यहा महत्त्वपूर्ण हैं—

- जातीयता के कारण किसी को अस्पृश्य मान घृणा नही करूगा।
- सब धर्मों के प्रति तितिक्षा के भाव रखूगा।

इससे एक सीमा तक अहिंसा का मूर्तरूप सामने आ जाएगा।

गोकुल भाई—अब आवश्यकता है अहिंसा के पुजारी एक जगह इकट्ठे हो जाए।

आचार्यश्री—मैंने इन दस वर्षों में बहुत यात्रा की है। अपने दिमाग को खुला रखा है। अनेक विचारकों से मिलने का अवसर मिला है। अपने विचार दिए हैं और उनके लिए भी हैं।

गोकुल भाई—जितने आप व्यापक बनेंगे, उतना ही आनद मिलेगा। आपका दिमाग खुला है इसलिए आप खुले में बैठे हैं और आपकी बात हवा ले जाती है। (सब हसने लगे)

आचार्यश्री—हमारे दो कार्य प्रमुख हैं— एक प्रचारात्मक है। यह काम हम अणुव्रत के माध्यम से कर रहे हैं। दूसरा काम अनुसधानात्मक है। इसमें हम आगमों का हिन्दी अनुवाद, टिप्पण आदि का कार्य करते हैं।

गोकुल भाई—सर्वोदय सघ ने भी साहित्य की बहुत सेवा की है।

आचार्यश्री—आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमारा साहित्य भी व्यापक है और जनभोग्य है। एक सम्प्रदाय में रहते हुए भी हमने कभी सकुचित दृष्टि को स्थान नहीं दिया। हम व्यापकता लेकर चले है।

गोकुल भाई—आपका प्रचार कम नही है।

आचार्यश्री—हमारा प्रचार सहज हो जाता है। साधु-साध्वियों के १०० से

अधिक दल हैं। वे पैदल घूमते हैं। हमारे मुख्य कार्यकर्ता साधु-साध्वी हैं और विनोबाजी के पास सामाजिक कार्यकर्ता हैं।

गोकुल भाई—साधु और गृहस्थ मिलकर कार्य करे तो अभाव मिट जाएगा और कार्य को बल मिलेगा। इसीलिए हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि ता. ९ को होने वाले सम्मेलन को सफल बनाए।

आचार्यश्री—यदि इसकी एक बैठक ता. ८ को सायकाल हो जाए और ता. ९ को उसका पूरा कार्यक्रम रहे तो उपयुक्त रहेगा।

[वार्तालाप के आखिरी चरण में यह निर्णय लिया गया कि कार्यकर्ता सम्मेलन में अणुव्रत कार्यकर्ता और सर्वोदय कार्यकर्ता मिलकर एक मार्ग निश्चित करें। वे अन्य सस्थाओ के कार्यकर्ताओं को आमत्रित कर उनका सहयोग भी स्वीकार करे।]

आचार्य तुलसी : श्री चालप्पन पिल्लै

[त्रिवेन्द्रम के प्रमुख काग्रेसी कार्यकर्ता श्री के के चालप्पन पिल्लै ने आचार्यश्री के दर्शन किए। वे एक अच्छे सर्वादयी विचारक थे। अणुव्रत से व बहुत प्रभावित थे।]

श्री पिल्लै—आचार्यश्री! अणुव्रत का प्रारम्भ कर आपने बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किया है। मेरा निवेदन है कि जिस प्रकार 'सदाचार समिति' अयोग्य व्यक्तियों के हाथों में जाने से असफल हो गई, वैसे अणुव्रत अयोग्य व्यक्तियों के हाथों में नही जाना चाहिए। अन्यथा सदाचार समिति' की तरह अणुव्रत भी असफल हो सकता है।

आचार्यश्री—मैं प्रारम्भ से ही इस दिशा में सतर्क हू कि अणुव्रत अयोग्य व्यक्तियों के हाथा में न जाने पाए और उसका दुरुपयोग न हो।

श्री पिल्लै—आज देश में अमीर और गरीब दो वग हो गए हैं। इन दोनो के बीच काफी असमानता है। इस असमानता को मिटाने के बारे मे आप क्या सोचते है?

आचार्यश्री—यो तो अमीरी ओर गरीबी की समस्या हर युग में रही है। पर वर्तमान मे अमीर और गरीब के बीच असमानता बहुत बढ़ गई है। अणुव्रत इस असमानता को मिटाने का मार्ग है। हम यह नही सोचते कि यह असमानता बिल्कुल ही समाप्त हो जाएगी और सब व्यक्ति समान हो जाएगे। हम अणुव्रत के माध्यम से यह काम करना चाहते है कि आज जो विषमता बढ़ गई है वह अवश्य कम हो जाए। एक बात और ध्यान देने की है कि केवल आर्थिक विषमता मिटने से ही कार्य नही होगा आध्यात्मिक दृष्टि से भी व्यक्ति-व्यक्ति के बीच समता का विकास करना नितान्त आवश्यक है। कोई मालिक रहे और कोई नोकर रहे, यह एक व्यवस्था हो सकती है। नोकर के प्रति अमानवीय व्यवहार तथा विषम आचरण नही होना चाहिए। सभी एक-दूसरे को भाई समझ और भाईचारे का व्यवहार कर, यह स्वस्थ पद्धति है।

श्री पिल्ले—क्या मनुष्य को अध्यात्म-शक्ति म विश्वास करना चाहिए ?

आचार्यश्री—अवश्य करना चाहिए। मेरा विश्वास है कि यदि व्यक्ति अध्यात्म मे विश्वास नही करेगा तो वह कभी भी वास्तविक सुख और शाति की अनुभूति नही कर सकेगा।

श्री पिल्लै—केरल मे साम्यवादी सरकार अध्यात्म को समाप्त कर भौतिकवाद को लाना चाहती है। क्या यह देश के लिये बड़ा खतरा नही है ?

आचार्यश्री—मैं आपसे कुछ भिन्न सोचता हू। केरल के प्रमुख साम्यवादियों से बातें करने स मुझे लगा कि वे वास्तव म अध्यात्म के खिलाफ नही हैं। लेकिन आज मदिरों, मठा, मस्जिदों और चर्चों में धर्म तथा भगवान के नाम पर जो धन एकत्रित किया जा रहा है वे उसके विरुद्ध हैं। नैतिकता, सदाचार, अहिंसा, सत्य आदि जो धर्म के मूल सिद्धात है उनमें कोई भी अच्छा साम्यवादी विचारक विश्वास न कर, ऐसा मै नही मानता।

श्री पिल्लै—धार्मिक गुरुओं का धार्मिक क्रान्ति लाने के लिए प्रयास करना चाहिए—क्या आप इस बात से सहमत हैं ?

आचार्यश्री—मैं बहुत बार सोचता हू कि यदि धार्मिक तथा आध्यात्मिक लोग इस सबध मे बहुत पहले सोच लेते तो शायद लोगों को आज हिंसक क्रान्ति की बात नही सोचनी पड़ती। धार्मिक गुरुआ की स्थिति यह हे कि उन्ह जितनी चिन्ता मानवता के निर्माण की नही है, उतनी चिन्ता अपने सप्रदाय मन्दिर, मठ तथा गद्दी की सुरक्षा की है। मैं सोचता हू यदि अब भी वे कुछ चिन्तन कर मानवता के निर्माण के क्षेत्र मे कार्य करें तो बहुत बड़ा कार्य हो सकता है और हिंसक क्रान्ति का खतरा टल सकता है।

[श्री चालप्पन पिल्लै आचार्यप्रवर के विचारों से अत्यधिक प्रसन्न और प्रभावित हुए।]

९-१०-१९६९
केरल

आचार्य तुलसी : श्री नवजात

[पाण्डिचेरी आश्रम के सचिव श्री नवजात भाई का आचार्यश्री से मिलन हुआ। श्री नवजात भाई ने अरविन्द आश्रम के सचालन एव व्यवस्था के बारे मे विस्तार से बातचीत की। उसका साराश यहा प्रस्तुत है।]

श्री नवजात— श्री अरविन्द ने जीवन के सपूर्ण कर्म को अध्यात्म के साथ सयोजित कर दिया। बाह्य व्यवस्थाओं में भी वे अध्यात्म को साकार करना चाहते थे। इसलिए उन्होने अति मानस-अवतरण का प्रयत्न किया। धीरे धीरे वह सम्पन्न होता गया। बाह्य व्यवस्थाओ के सम्यक् होने से आध्यात्मिक विकास स्वत होने लगता है।

आचार्यश्री—भारतीय चिन्तनधारा से अध्यात्म इतना अलग हो गया है कि वह कोरा अध्यात्म होकर रह गया। दूसरी ओर व्यवहार उससे इतना अलग हो गया कि वह कोरा व्यवहार ही रह गया। अध्यात्म और व्यवहार अधे और पगु के न्याय के समान है जो दोनो अलग रहकर मजिल तक नही पहुच सकते। दोनों का सयोग ही सफलता का योग है।

श्री नवजात—लोग अध्यात्म और भगवान को इतना नीचे स्तर पर ले गए कि वही उनको धन दे वही बेटा दे और सब-कुछ वही हाजिर करे।

आचार्यश्री—भगवान की भक्ति के नाम पर लोग अपने पौरुष को भूल गए। वे अपने भगवान को जागृत करना सीख लेते तो हिंसा की समस्या सामने नहीं आती। दूसरी ओर कार्ल मार्क्स ने भूल यह की कि उसने अध्यात्म को भुला दिया। एक बार लगा कि यह सम्यक् पथ है। किंतु स्वल्प समय के पश्चात पुन समस्याए खड़ी हो गईं। साम्यवाद मे अध्यात्म का योग होता तो वह स्थायी समतावादी आनदकारक बनता।

श्री नवजात—श्री अरविन्द ने जो मार्ग बताया, उसको बड़े-बड़े साम्यवादियों ने भी बड़ी श्रद्धा से स्वीकार किया है। एक बहुत बड़े साम्यवादी इजीनियर थे, उनके सम्मुख जब ऑरोविल (विश्व-परिवार) की चर्चा चली और अरविन्द के विचारों

को पढ़ा गया, तब वे अपने आप इस ओर आकृष्ट होकर आ गए। उन्होने कहा—'यह साम्यवाद का ही स्वरूप है।'

आचार्यश्री—शब्दों की उलझन मे क्यों जाए ?

श्री नवजात—अधे और पगु के योग का अवसर आ गया है। विश्वभर में अध्यात्म और व्यवहार की युक्ति के प्रयोग तीव्रता से हो रहे हैं।

आचार्यश्री—मूलतत्त्व मे कोई भेद नहीं होता। भले ही प्रक्रिया उनकी भिन्न-भिन्न क्यों न हो।

श्री नवजात—पूर्ण प्रकाश का समय आता है तब कमरे में खिड़कियों से अपने आप प्रकाश आ जाता है। कौन-सी खिड़की का वहा प्रश्न नही रहता। प्रश्न है प्रकाश का फिर चाहे वह किसी भी खिड़की से आए।

आचार्यश्री—आज धर्म सप्रदाय-ग्रस्त हो गया। इसलिए वह धर्म नही रहा सप्रदाय बन गया। सप्रदाय में धर्म हो सकता है। धर्म सप्रदाय से अतिरिक्त भी है। उसे मैं निर्विशेषण धर्म कहता हू। अणुव्रत इस अर्थ में सार्थक हो रहा हे।

श्री नवजात—आपके ही विचार अरविन्द आश्रम में मूर्तिमान हो रहे हैं। उसको देखकर आप भी प्रसन्न होंगे। मुख्य रूप से शिक्षा, व्यवस्था और आन्तरिकता के प्रयोग हुए हैं। शिक्षा में तो आश्रम ने महत्त्वपूर्ण उपलब्धिया हासिल की हैं। आश्रम को नियमा से जकड़ा नही गया। समर्पण, सपूर्ण ब्रह्मचर्य, धूम्रपान-वर्जन और राजनीति का निषेध—यहा मुख्य रूप से ये चार नियम ही हैं।

आज निष्पक्ष राजनीति अर्थनीति समाजनीति की आवश्यकता है। क्योकि अब राष्ट्रीयता के दिन गए, अन्तर्राष्ट्रीयता की चर्चा हो रही है।

आचार्यश्री—कुछ भी हो, अतिवाद में नही जाना चाहिए। चलना जब भूमि पर है तो खाली आकाशी उड़ानें इतनी लाभप्रद नही होगीं। मेरी मान्यता है कि व्यक्ति के अच्छे होने से ही परिवार, समाज, प्रान्त, राष्ट्र और विश्व अच्छा बनेगा। अपनी शक्ति के अनुसार प्रयास लाभप्रद होता है।

२७-१२-६८
पाण्डिचेरी

आचार्य तुलसी : आचार्य गणेशीलाल

[आचार्यश्री तुलसी ने सुना कि स्थानकवासी आचार्यश्री गणेशीलालजी रात को बहुत अस्वस्थ हो गए। तब आपने उनसे खमत-खामणा करने का निश्चय किया। प्रात कालीन व्याख्यान के बाद चढते मध्याह्न मे आचार्यश्री साधुओ सहित उनके स्थान पर पधारे। साथ मे कई भाई भी थे। उन्हे सूचना मिल चुकी थी इसलिए उन्होने भी अपनी व्यवस्था कर रखी थी। सेकडा बहन भाई खडे थे। आचार्यश्री ऊपर पधारे।जेन समाज के दो आचार्यो का मिलन इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण पृष्ठ बन गया। उनके वार्तालाप का सक्षिप्त रूप यहा प्रस्तुत है।]

आचार्यश्री—अतीत के वर्षो मे आप के प्रति भावो मे उतार-चढ़ाव का बा काम पड़ा है। इसलिए मन और वचन से खमत-खामणा करता हू।

आचार्यश्री गणेशीलालजी— आपने बड़ी उदारता की। मैं शुद्ध अन्तक से खमतखामणा करता हू।

आचार्यश्री—[भगवान महावीर वाणी का उच्चारण करते हुए] शरीर अस्वस्थ है पर चित्त मे मानसिक समाधि रहे यह आवश्यक है। हमें जो तत्व मिला है सचमुच वह सौभाग्य का परिचायक है।

आचार्यश्री गणेशीलालजी— जैनधर्म मिला है यह सौभाग्य की बात है।

सेवाभावी चम्पालालजी स्वामी—मैने रात को आपके स्वास्थ्य के बारे मे आचार्यश्री को जानकारी दी तो आपने तत्काल कहा—सभव हुआ तो कल सुख सवाद जानने और खमतखामणा करने के लिए जाने का विचार है।

आचार्यश्री—अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा आचार्यश्री जवाहरलालजी के सम्प्रदाय से हमारा अधिक सपर्क, व्यवहार व नैकट्य रहा है।

आचार्यश्री गणेशीलालजी—नैकट्य क्या, हम तो एक मूग के दो फाड़ है। मैं तो चाहता हू कि जो तड़ पड़ गई है उसे भी हम मिलालें। आपसी-विचार विभेद के जो कारण है उनका विचार-विनिमय के द्वारा हल निकाल लें।

सेवाभावीजी—भेदों को भूल जाए, पर परस्पर जो प्रेम है उसको न भूलें।

आचार्यश्री—भगवान् महावीर ने हमको स्याद्वाद दिया है। जो स्याद्वाद ससार की समस्या को सुलझा सकता है, वह हमारे बीच समन्वय के बीजों का अकुरण क्यों नही करेगा? वैसे हमारी समस्या है भी क्या?

मुनि नथमलजी—आज तो वायुमडल ऐसा बन रहा है कि जैनेतर लोग जैन साहित्य का अन्वेषण करते हैं। थीसिस लिखते हैं और उसको प्रकाश में लाने के प्रयत्न मे है। पर उनकी रुचि के अनुसार हिन्दी भाषा में पर्याप्त जैन साहित्य नही है। ऐसे समय में हमारा कर्त्तव्य है कि हम इस ओर ध्यान दें। यदि परस्पर में मैत्री का वातावरण रहे तो कार्य मे सुगमता हो सकती है।

एक मुनि—आचार्यश्री ने भीनासर मं एक योजना बनाइ थी कि सवत्सरी पर्व को सब एक दिन मनाए।

आचार्यश्री गणेशीलालजी—इसमें क्या आपत्ति है? तिथि का निर्णय तो जीत व्यवहार से कर सकते हैं।

आचार्यश्री—मैंने अभी क्षमा दिवस पर कहा था और कलकत्ते में भी कहा था कि सवत्सरी पर्व पर हमें चिंतन करना चाहिए। यदि चिन्तन करें तो अपने लिए विशेष कठिनता की बात नहीं है। कुछ सम्प्रदायों को कठिनाई हो सकती है। पर मैं सोचता हू कि चिंतन करने से कुछ न कुछ हल अवश्य निकल सकता हे।

आचार्य गणेशीलालजी—आप तैयारी रखें तो हम भी तैयार हैं।

आचार्यश्री—इस भावना का स्वागत है।

एक मुनि—यह मिलन का पहला अवसर है?

आचार्यश्री—नही, एक बार हम पहले जयपुर में मिले थे। पर वह इतना मधुर मिलन नही था। मधुरता की दृष्टि से यह पहला ही है। वैसे चातुर्मास साथ करने का मौका तो मिला ही है। बीकानेर, जोधपुर, जयपुर और उदयपुर के चातुर्मास्य साथ-साथ हुए हें। इस वर्ष आप अन्यत्र जाना चाहते थे, पर श्रावकों ने आपको जाने नही दिया।

आचार्यश्री गणेशीलालजी—आप ठीक कह रहे है। हमारा विहार का लक्ष्य था, पर श्रावको के आग्रह पर रुक गए।

आचार्यश्री—अपना मिलन व खमत-खामणा व्यक्तिगत दृष्टि से जेन समाज की दृष्टि से तथा शहर के वायुमडल की दृष्टि से उपयोगी सिद्ध होगा।

आचार्य तुलसी : स्वामी करुणानन्द

[जब व्यक्ति मे आध्यात्मिक भाव जागृत होते है, तब वह जातीय, दायरा और इसी प्रकार अन्यान्य बन्धनो को तोडकर आगे बढता है और अपने विचारो के अनुकूल एक साधना मार्ग अपना लेता है। एक साधक ने ऐसा ही किया। वे आस्ट्रेलिया मे एक अध्यापक थे। शिक्षक होने के साथ साथ वे एक सफल कलाकार भी थे। पार्थिवकला मे पारगामी हो वे अध्यात्म कला की ओर मुडे। आत्मा को सवारने की भावना तीव्र हो उठो। वे स्वामी शिवानन्द के शिष्य बन गए। उनका नाम करुणानन्दजी हो गया।

आचार्यश्री तुलसी उन दिनो बीकानेर मे थे। स्वामी करुणानन्दजी भी कार्यवश बीकानेर आये हुए थे। प्रिन्सिपल स्वर्णलता के साथ वे आचार्यश्री के सम्पर्क मे आए। भाषण रात्रि मे रखा गया। स्वामी करुणानन्दजी का भाषण हुआ। वे अग्रेजी मे बोले। श्रीमती स्वर्णलता ने उसका हिन्दी मे अनुवाद प्रस्तुत किया। आचार्यश्री ने भी प्रवचन दिया। कार्यक्रम की सम्पन्नता के बाद वे आचार्यश्री से बातचीत करने ऊपर आए।]

आचार्यश्री—क्या आपने जैनदर्शन का अध्ययन किया है?

करुणानन्दजी—जैनदर्शन के विषय में मैं बहुत कम जानता हू। किन्तु इस दर्शन को जानने की मेरी प्रबल इच्छा है। अभी तक अवसर या पूरा साधन उपलब्ध नही हो पाया है।

आचार्यश्री—यदि आपका यहा दो-चार महीनो का निरन्तर वास हो तो जैनदर्शन के विषय में आपको अच्छी जानकारी करा सकते हैं।

करुणानन्दजी—यह मेरे सौभाग्य की बात है। मैं भी यही चाहूगा। अब आपसे परिचित तो हो ही गया हू। जब कभी अवकाश मिलेगा मैं उपस्थित हो जाऊगा।

आचार्यश्री—क्या आपने अणुव्रत के विषय में कुछ पढ़ा है?

करुणानन्दजी—नही यहा आने के बाद ही मैंने इस आन्दोलन के विषय में जाना है।

आचार्यश्री—क्या आप अखबार नही पढ़ते ?

करुणानन्दजी—आचार्यजी ! मुझे बाह्य प्रवृत्तियों में अधिक रुचि नही है। अखबार विक्षेप के कारण बनते हैं। यह मेरा अपना विचार है। दिव्य-आश्रम, जहा मैं रहता हू, वहा अखबार न पढ़ने का सकल्प हमने स्वेच्छा से किया है।

आचार्यश्री—यह ठीक है, जो प्रवृत्तिया आत्म-रमण में बाधक हों, उनका अनुसरण नही करना चाहिए। साधक-बाधक प्रवृत्तिया प्रत्येक व्यक्ति की भिन्न-भिन्न होती हैं। क्या आप कुछ लिखते भी हैं ?

करुणानन्दजी—हा, यदा-कदा Divine Life —'डिवाइन लाइफ' के लिए कुछ लिख देता हू। अभी मुझे भारतवर्ष में आए तीन ही वर्ष हुए हैं। योगाभ्यास की ओर बढ़ने का निर्णय कर मैं उसकी प्रगति में सदा सलग्न हू।

आचार्यश्री—अणुव्रत आन्दोलन विगत तेरह वर्षों से भारत में नैतिक जागरण का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है। इसके माध्यम से वैचारिक क्रान्ति हुई है, लोगों के मन आन्दोलित हुए हैं। हम चाहते हैं कि पाश्चात्य देशों में भी इसका प्रचार हो। क्या आप इसके माध्यम बन सकते हैं ?

करुणानन्दजी—हा मैं प्रसन्नता से इस कार्य में सलग्न हो सकता हू बशर्ते कि मेरे गुरु मुझे आज्ञा दे। मैंने अपना सर्वस्व गुरु-चरणों में अर्पित कर दिया है। इसलिए उनकी आज्ञा के बिना मैं कुछ भी करना नहीं चाहता। मुझे विश्वास है कि गुरुजी मुझे आज्ञा दे देंगे।

आचार्यश्री—क्या आप इस मिलन का जिक्र अपने गुरुजी से करेंगे ?

करुणानन्दजी— अवश्य, मेरे गुरुजी इसको सुनकर बहुत ही प्रसन्न होंगे।

आचार्यश्री—स्वामी शिवानन्दजी से हमारा परोक्ष परिचय है। निकट भविष्य में हम उनसे मिल सकें, ऐसी सभावना नही है। क्योकि वे दूर रहते हें और हम पद-यात्री हैं। फिर भी साहित्य से परिचय होता रहता है। अभी-अभी धवल-समारोह के अवसर पर उन्होने शुभकामना सन्देश भेजा था।

करुणानन्दजी—आचार्यजी। मैं भी पद-यात्रा के पक्ष में हू। परन्तु भाषा की कठिनाई के कारण में पद-यात्रा कर नही सकता। कुछ वर्ष पहले मैंने छह सो मील की पद-यात्रा की थी। उसमें मुझे बड़ा आनन्द मिला। अच्छा, आप अपना भोजन केसे प्राप्त करते हैं ?

आचार्यश्री—हम माधुकरी वृत्ति से अपना निर्वाह करते हैं। घर-घर से थोड़ा-थोड़ा लेते हैं और अपना काम चला लेते हैं।

करुणानन्दजी—बहुत सुन्दर ! पद-यात्रा में मैंने भी इसका प्रयोग किया था। परन्तु भाषाई कठिनाई के कारण मैं पूर्णत सफल नहीं हो सका।

आचार्यश्री—क्या आपके देश में *अणुव्रत आन्दोलन* के प्रसार की सम्भावना है ?

करुणानन्दजी— आचार्यजी ! मेरा कोई देश है ही नहीं। मैंने तो सब कुछ छोड़ दिया। वैसे मेरे कुटुम्बी आस्ट्रेलिया में रहते हैं। जब मैं वहां जाऊंगा तो आन्दोलन की बात अवश्य करूगा। सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि कोई भी व्यक्ति अपने देश में उतना मान्य नहीं होता। पश्चिमी लोग पूर्वीय व्यक्ति की बात को विशेष महत्त्व देते हैं और पूर्वीय लोग पश्चिमी व्यक्ति को। मैं अपने ही देश में अध्यात्म की बात करूगा तो मुझे वे पागल समझेंगे। मुझे वे पागल समझते ही हैं, क्योंकि प्राप्त भोग- सामग्री को छोड़ कर सन्यास लेना उनकी दृष्टि में गहरा पागलपन है। परन्तु मैं इसकी परवाह नहीं करता। मैं इस आन्दोलन की आपसे पूरी-पूरी जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करूगा और उसको पूर्णत जानकर उसके प्रचार में भी कुछ समय लगाऊगा। क्या अणुव्रत का साहित्य भी है ?

आचार्यश्री—हा, हिन्दी भाषा में अणुव्रत साहित्य की प्रचुरता है। किन्तु अंग्रेजी मे बहुत कम साहित्य प्रकाश में आया है। फिर भी कुछ साहित्य अवश्य है।

[ताराचन्दजी बोथरा ने उन्हें निम्नांकित साहित्य दिया—Light of India, Anuvrat Ideology, Terapanth, Glimpses of Terapanth आदि।]

करुणानन्दजी—इस साहित्य को मैं ध्यान पूर्वक पढ़ने का प्रयास करूगा।

आचार्यश्री—इस साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात् क्या आप दूसरा साहित्य लिखेगे ?

करुणानन्दजी—हा मैं अंग्रेजी भाषा मे कुछ साहित्य तैयार कर आपको निवेदित कर दूगा। आपका हैड क्वाटर कहा है ?

आचार्यश्री—हेडक्वाटर की तो बात ही क्या हमारा क्वाटर भी कहीं नहीं है। हम जहा जाते हैं वही हमारा हेड क्वाटर और क्वाटर बन जाता है। साधुओं को स्थान विशेष से प्रतिबद्ध नहीं होना चाहिये।

करुणानन्दजी—मेरे विचार भी ऐसे ही हैं। जब परमात्मा को सर्वस्व अर्पण कर चलते हैं तब स्थान आदि की चिन्ता तो होनी ही नहीं चाहिए।

आचार्यश्री—योगी सदा निसंग रहता है। क्या आप जैनयोग साधना से परिचित हैं ?

करुणानन्दजी—नही, मैं योग की सूक्ष्म बातों से विशेष परिचित नही हू। विशेषत आसन आदि किया करता हू और प्रतिदिन ध्यान या कभी-कभी जाप भी कर लेता हू। मैं मानता हू कि जब तक व्यक्ति अपने शरीर पर नियत्रण नही पा लेता, वह वचन और मन पर अनुशासन कैसे कर सकेगा। इसलिए हम सर्वप्रथम शारीरिक नियत्रण के लिए आसन आदि करते हैं और साथ-साथ ध्यान, एकाग्रता, शक्तिसचार आदि करते हैं।

आचार्यश्री—एक समय था जैन-योग साधना उत्कर्ष पर थी। परन्तु गुरु-परम्परा के विच्छिन्न हो जाने के कारण उसमें कुछ शिथिलता आई है। आज हम उसे पुन जीवित करने का प्रयास कर रहे हैं। मुनियों में तथा गृहस्थों में योग की रुचि बढ़े, इस दृष्टि से मैंने अभी 'मनोनुशासनम्' नाम से एक छोटे-से ग्रथ का निर्माण किया है। मन पर अनुशासन कैसे किया जाए? यह आज का ज्वलन्त प्रश्न है। मैंने इस छोटे से ग्रथ में उसका समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

आचार्य तुलसी : साध्वी लीलावती बाई

[लींबडी नान्हीपक्ष के श्री केशवलालजी महाराज की शिष्या साध्वी लीला-वतीबाई स्वामी और दरियापुरी सम्प्रदाय की प्रभाबाई स्वामी आदि साध्विया आचार्यवर से मिलने आई। श्रद्धापूर्वक अभिवादन कर वे आचार्यश्री के सामने विनीत भाव से बैठ गईं। साध्विया बहुत जिज्ञासु थी। उनके साथ हुई बातचीत का कुछ अश यहा प्रस्तुत है।]

आचार्यश्री —आप यहा कितनी साध्विया हैं?

साध्वीजी—यहा उन्नीस साध्विया हैं।

आचार्यश्री—अपने यहा भी अभी साध्वियो की सख्या उन्नीस है।

साध्वीजी—इस सघ का नाम तेरापथ कैसे हुआ?

आचार्यश्री—नामकरण का कोई उद्देश्य नही था। किंतु प्रारम्भ में इस सघ की मान्यता से प्रभावित तेरह साधु और तेरह श्रावक थे। इस सख्या को लेकर दूसरे लोगों ने इस सघ का नाम तेरापथ कर दिया।

साध्वीजी—तेरापथ सघ स्थानकवासी सघ से निसृत है ऐसा सुना जाता है। हम यह जानना चाहती है कि इस सघ के पृथक् होने का कारण क्या था?

आचार्यश्री—सघभेद का सबसे पहला कारण था आचार-विचार का भेद।

साध्वीजी—हमारे आचार-विचार मे ऐसा क्या भेद है, जिससे एक स्वतत्र सघ की रचना की गई?

आचार्यश्री—इस सघ के प्रथम आचार्यश्री भिक्षु स्वामी स्थानकवासी सघ में प्रव्रजित हुए। वे आचार्य रुघनाथजी के शिष्य थे और आठ वर्ष तक उनके साथ रहे थे। अतिम वर्षों मे आचार-विचार को लेकर उनके मन मे सदेह हो गया। उसका उल्लेख भिक्षु स्वामी द्वारा रचित ३०६ बोल की हुण्डी मे मिलता है।

स्थानकवासी परम्परा के अनुसार साधु-साध्विया स्थानक, उपाश्रय आदि बनवाने की आज्ञा देते हैं। भिक्षु स्वामी की दृष्टि मे वह आगम-सम्मत नहीं था, अत. उन्होंने इसका विरोध किया।

स्थानकवासी मिथ्यात्व की करणी को आज्ञा-बाहर मानते हैं तथा पुण्य का स्वतत्र बध स्वीकार करते हैं। किंतु भिक्षु स्वामी इन विचारों से सहमत नही थे।

साध्वीजी—मिथ्यात्वी की करणी आज्ञा में कैसे हो सकती है?

आचार्यश्री—मिथ्यात्वी के सभी काम असत् नहीं होते। उदाहरणार्थ एक मिथ्यात्वी ब्रह्मचर्य का पालन करता है। सत्य बोलता है। इसे हम आज्ञा मे क्यों नही मानेंगे?

साध्वीजी—आप पुण्य का बध धर्म के साथ ही मानते है या अतिरिक्त भी?

आचार्यश्री—हमारी मान्यता के अनुसार जहा धर्म होता है, वहा पुण्य होता है। पुण्य के बिना धर्म तो हो सकता है, पर धर्म के बिना पुण्य नही होता।

साध्वीजी—यदि हम पुण्य का स्वतत्र बध नहीं मानें तो प्रथम गुणस्थान मे मृत्यु का वरण करने वाला जीव नवग्रैवेयक तक कैसे पहुच सकता है! क्योंकि प्रथम गुणस्थान में धर्म तो होता नही।वहा से पुण्य के द्वारा ही व्यक्ति इतनी ऊची गति प्राप्त कर सकता है।

आचार्यश्री—मिथ्यात्वी के सवर धर्म नही होता, पर निर्जरा धर्म तो होता ही है। निर्जरा धर्म न हो तो पुण्य भी नही हो सकता।

साध्वीजी—कर्म निर्जरण रूप निर्जरा तो हर ससारी प्राणी के होती है। उससे धर्म कसे होता है?

आचार्यश्री—कर्मनिर्जरण रूप निर्जरा तो विपाकी निर्जरा है। वह नव तत्त्वों में नही आती। किंतु मिथ्यात्वी की निर्जरा तो उदीरणापूर्वक होती है। उदीरित निर्जरा धर्म है, यह आप भी मानते हैं।

दशवैकालिक सूत्र में भी तपस्या सयम और अहिंसा को धर्म माना गया है—

धम्मो मगलमुक्किट्ठ, अहिंसा सजमो तवो।
देवावि त नमसति, जस्स धम्मे सया मणो॥

साध्वीजी—हमने सुना है कि आप तेरापथी साधुओ के अतिरिक्त किसी भी सम्प्रदाय के मुनि को दान देने में पाप बताते है। क्या यह सही है?

आचार्यश्री—मै जब दिल्ली मे था तब ऋषभदासजी राका मेरे पास आए और बोले— आचार्यजी! हमने सुना है कि आप दूसरों को दान देने मे पाप बताते है। सुनी हुई बात को हमने यथार्थ नही माना। इसलिए सोचा कि इस बात का निर्णय आचार्यश्री से पूछकर ही करना है। अब आप ही बताइये कि तेरापथी साधुओ के

अतिरिक्त किसी को दान देने में धर्म होता है, पुण्य होता है या पाप?

मैंने उनके प्रश्न को समाहित करते हुए कहा—'मैं तेरापथ या स्थानकवासी के देने मे क्या होता है, यह व्यक्तिगत बात नही करता। जिस मुनि में सम्यक् ज्ञा सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र हो, उसे देने में धर्म है, निर्जरा है और पुण्य है।

मेरे ऐसा कहने पर ऋषभदास जी बोले—'क्या आप यह बात व्याख्यान कह सकेंगे?'

मैंने कहा—'जिस बात को मैं स्वीकार करता हू, उसे व्याख्यान में क्यों न कह सकता।' फिर मैंने व्याख्यान में इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा—हम अतिरिक्त किसी को भी दान देने में पाप है, यह हमारी मान्यता बिल्कुल नहीं है हम तो शुद्ध साधु को दान देना आत्म-शुद्धि का मार्ग मानते हैं।

साध्वीजी—आप स्थानकवासी मुनियों को शुद्ध साधु मानते हैं या नहीं?

आचार्यश्री—जिनमें सम्यक् ज्ञान दर्शन और चारित्र हैं, वे शुद्ध साधु हैं शास्त्रो में भी कहा है कि ऐसे साधु जघन्य दो हजार करोड़ और उत्कृष्ट नौ हजार करोड़ हैं। हम उन्हें एक सीमा मे कैसे बाध सकते हैं?

इन बातो का मैंने बहुत स्पष्टीकरण किया है। पहले मैं जहा भी जाता, वहा चूहे, बिल्ली, गोओ के बाड़े आदि-आदि प्रश्न तैयार रहते थे। अब राजस्थान की तरफ से ये प्रश्न शात हो गये हैं। पता नही आपके सौराष्ट्र में कैसे रह गए?

साध्वीजी—आप यहा आए नही इसलिए।

आचार्यश्री—अब तो हम यहा आ गए हैं।अत यहा के लोगों की भ्रान्ति मिट जानी चाहिए।

साध्वीजी—राजस्थान के लोगो की भ्रान्ति का निराकरण हो गया है तो फिर वहा का स्थानकवासी समाज आपके तेरापथ को मानता क्यों नहीं?

आचार्यश्री—हम स्थानकवासी और तेरापथी बाद मे पहले जैन हैं। मेरे प्रवचन में मुख्य रूप से अध्यात्म धर्म और जैनधर्म की बात आती है।

साध्वीजी—क्या यह सच है कि एक बिल्ली चूहे को मारे और उसे कोई बचाए तो तेरापथी उसमें पाप बताते हैं तथा बचानेवाले को मना करते हैं। क्योंकि वह जीव बचकर जो पाप करेगा वह सब बचानेवाले को लगेगा?

आचार्यश्री—जीव बचकर जो पाप करेगा, वह बचाने वाले को लगेगा—इसको हमारा सिद्धान्त बताना किंचित् भी सही नहीं है। यह बात हम पर आरोपित है। हमारी मान्यता के अनुसार पुण्य-पाप का सबध वर्तमान से है भूत और भविष्य

ो नही। पुण्य-पाप के बारे में न जाने और भी कितनी ही निराधार बातें हमारे सामने
गाई। में उनके बारे में सुनते-सुनते थक गया। पर आज तक मुझे कोई आधार नही
मेला। 'ग्रामो नास्ति कुत सीमा'—जब ग्राम ही नही है तो फिर सीमा का प्रश्न ही
कैसे उठेगा ?

साध्वीजी—यह बात बिल्कुल झूठी है तो फिर आप इसका प्रतिकार क्यों नही
करते ?

आचार्यश्री—बहुत वर्षों पहले तक हमारी नीति यह थी कि हम ऐसी झूठी बात
का भी प्रतिकार नहीं करेगे। उस समय आलोचना का जो स्तर था वह प्रतिकार के
योग्य था ही नही। जब हम बबई में थे तो वहा परमानदकवरजी कापड़िया ने इस
बारे में एक लेख लिखा वह आलोचना के स्तर का था। दलसुख भाई मालवणिया
ने भी इस बारे में कई तर्क प्रस्तुत किए। तब से प्रतिवाद की बात हमारे सामने आई।
हमारे द्वारा भिक्षु स्वामी के दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए हजारों पृष्ठ लिखे
गए। उनमे *भिक्षु विचार- दर्शन, अहिंसा तत्त्वदर्शन अहिंसा विवेक,* दान-दया
आदि पुस्तके उल्लेखनीय है। कमी इस बात की रही हैं कि यह साहित्य हिन्दी
भाषा मे है। तिस पर भी यहा आपके पास पहुच ही नही सका। हमारा निकट से
परिचय हुआ है तो साहित्यिक परिचय भी होना आवश्यक है।

स्थानकवासी मुनि सिरेमलजी हमारे साधुओं से मिले। वे सुना रहे थे कि
उपाध्याय अमरमुनि तेरापथ की दान-दया को सदा से ही काटते आए हैं पर अब
नए साहित्य को पढ़कर वे कहने लगे कि तेरापथ की दान-दया सबधी मान्यता कोई
तिनका नहीं है, जिसे बातों मं ही उड़ा दिया जा सके।

साध्वीजी—हमने सुना है तथा पत्रों में भी पढा है कि तेरापथी साधु दान-दया
के विरोधी हैं। हम जानना चाहते हैं कि आपकी दान-दया-विषयक प्ररूपणा क्या
है ?

आचार्यश्री—यह बात बिल्कुल सच है कि हमको दान-दया का विरोधी बताया
गया है। पर क्या कोई भी जैन मुनि दान-दया का विरोधी हो सकता है ? दान-दया
का विरोध न तो भिक्षु स्वामी ने किया था और न मैं करता हू। यह बात जरूर है
कि हम स्याद्वाद को मानते हैं अत किसी भी तत्त्व को ऐकान्तिक नही मानते।

दान-दया हमे मान्य हैं। इनके मुख्यत दो-दो भेद हैं—लौकिक और लोकोत्तर।
ज्ञान दान, सपति दान और अभय दान लोकोत्तर दान हैं। क्योकि ये मोक्ष के निमित्त
है। ससार के लिए दिये जाने वाला दान लौकिक है।

स्थानांग सूत्र में दस प्रकार के दानो की चर्चा है। इनमें एक धर्म दान है और एक अधर्म दान। शेष आठ दान क्या हैं? इसके सबध मे धर्म और पुण्य की कोई चर्चा नही है। मेरी दृष्टि में ये दान सासरिक दान हैं। इनका धर्म से कोई सम्बन्ध नही है।

साध्वीजी—हमने कई ग्रन्थों में तेरापथ के दान और दया से सम्बन्धित उद्धरण देखे हैं। उनको पढ़ने से तो यही लगता कि आप दान-दया को धर्म नही मानते।

आचार्यश्री—ऐसा लगना निष्कारण नहीं है। क्योकि जो उद्धरण प्रस्तुत किए हैं, वे सदर्भ को तोड़कर दिए गए है। सदर्भ को तोड़कर हम किसी भी अर्थ का अनर्थ कर सकते हैं। एक भाई ने कुरान हाथ मे लिया और चौराहे पर जाकर बोला—'देखो कुरान मे लिखा है कि नमाज पढ़ना गुनाह है।' यह सुनकर सबको आश्चर्य हुआ। इस बीच एक समझदार आदमी बोला—'भाई! इस वाक्य का सदर्भ पढ़कर सुनाओ।' सदर्भ इस प्रकार था— 'नापाक दशा में नमाज पढ़ना गुनाह है।' इस घटना से हम समझ सकते है कि बीच-बीच के उद्धरण कितने भ्रामक बन जाते हैं। उन उद्धरणो को समझने के लिए आपको सदर्भ देखना चाहिए।

दूसरी बात यह भी है कि हमारे चिंतन के दो पक्ष है—निश्चय और व्यवहार। आचार्य कुन्दकुन्द, उमास्वाति, श्रीमद् रायचन्द्र और आचार्य भिक्षु की परपरा निश्चयपरक थी। आचार्य हरिभद्र, यशोविजय तथा स्थानकवासी आचार्य व्यवहार की ओर झुके हुए थे। निश्चय दृष्टि के अनुसार सूक्ष्म मोह की परिणति भी पाप है। भिक्षु स्वामी निश्चयोन्मुख थे। इसलिए उन्होंने सवर, निर्जरा आदि लोकोत्तर कार्यों को ही धर्म बताया।

साध्वीजी—एक जीव किसी दूसरे जीव को मारे, उस समय कोई उसे बचाने का प्रयत्न करे या नही? यदि बचाने का प्रयत्न करे तो वह धर्म है या अधर्म?

आचार्यश्री—जीव को बचाने के लिए प्रवृत्त होने का अर्थ है, उस स्थिति को वह देख नही सकता। अपनी मोहजन्य व्यथा से प्रेरित होकर काम करना सासारिक व्यवहार है, मोक्षधर्म नही। यदि किसी को बचाना ही मोक्ष धर्म होता तो साधु वह काम क्यों नही करते? सामायिक में गृहस्थ क्यों नही करते? साधु और सामायिक की साधना करते समय श्रावक जो काम नही कर सकते, उसे अतिरिक्त समय में करने में धर्म कैसे होगा?

साध्वीजी—साधु और गृहस्थ की करणी एक नही है। साधु अपनी सीमा में रहते हैं। वे हर काम नही कर सकते पर गृहस्थ तो खुले हैं। वे मरते हुए जीव को

बचाए तो उन्हे प्रेरणा क्यों नही दी जाए ?

आचार्यश्री—साधु के लिए करना, कराना और अनुमोदना—ये तीनो एक ही कोटि मे आते हैं। जिस काम को मुनि स्वय नही कर सकता उस काम के लिए दूसरों को प्रेरित करे तो साधुता कहा टिकेगी ?

हम जानते हैं कि हर व्यक्ति वीतराग नही है श्रेणी आरूढ भी नही है। फिर भी हमारा सिद्धात एक है, लक्ष्य एक है और दिशा एक है। लक्ष्य पर चलते-चलते कोई व्यक्ति स्खलित हो सकता है। पर उस स्खलना को हम सिद्धान्त नही मान सकते।

साध्वीजी—यह बात तो ठीक है कि साधु स्वय किसी जीव को दूसरे जीव के मारने से बचा नही सकता। पर कोई गृहस्थ बचाता है, उसे मुनि मना क्यों करता है ?

आचार्यश्री—मैं तो मानता हू कि जो साधु जीव बचाने से मना करता है, वह साधु है ही नही। हमारे सिद्धात के अनुसार मना करने का तो प्रश्न ही नही उठता। पर यह तो विमर्शनीय है ही कि उस समय हमारा कर्तव्य क्या है ? उदाहरण के लिए आप समझिए कि एक साध्वी के पास आहार-पानी है। एक भूखा व्यक्ति वहा आया। भूख से वह अत्यत व्याकुल हे। उस स्थिति में वह साध्वी उसे आहार-पानी दे सकती हे ?

साध्वीजी—साध्वी गृहस्थ को दे नही सकती।

आचार्यश्री—मान लो कोई साध्वी दे तो ?

साध्वीजी—गृहस्थ को देने से सयम खडित होता है व्रत टूटता है।

आचार्यश्री—साध्वी ने त्याग किस चीज का किया है ?

साध्वीजी—अधर्म का।

आचार्यश्री—साध्वी को अधर्म यानी सावद्ययोग का त्याग है। अब आप ही सोचिए कि जिस काम से साधु-साध्वी को पाप लगता है, उसी काम को गृहस्थ करे तो धर्म होता है, यह बात समझ में आने जैसी है क्या ?

साध्वीजी—गृहस्थ वह काम करे तो धर्म तो नही होता, पर पुण्य तो होता ही है।

आचार्यश्री—साधु को पुण्य की करणी करने का त्याग है क्या ?

साध्वीजी—साधु को पुण्य कैसे होता है ?

आचार्यश्री—साधु-साध्वियों में परस्पर नव ही प्रकार का पुण्य हो सकता है।

साधु और गृहस्थ का धर्म एक है तो फिर उनका पुण्य पृथक् कैसे होगा?

साधु और श्रावक में अतर क्या है ? साधु व्रतों का सपूर्ण पालन करता है और श्रावक में उतनी शक्ति नही होती। इसलिए वह उसमें छूट रखता है। एक व्यक्ति की पाचन शक्ति प्रबल है, वह पूरे लड्डू को पचा लेता है। दूसरे की शक्ति क्षीण है, वह थोड़ा खाकर ही रह जाता है। इन दोनों में मात्रा की न्यूनाधिकता है, पर गुण तो एक ही है।

यदि जीव को बचाना अध्यात्म दृष्टि से दया हो, धर्म हो तब तो सबसे पहले हमको ही बचाना चाहिए। क्योंकि हम जिस काम की अनुमोदना कर सकते हैं, उसे करने और कराने में भी क्या बाधा होगी?

साध्वीजी—आपकी सेवा में श्रावक रहते हैं। इसमें आपकी अनुमोदना है या नही?

आचार्यश्री—श्रावक लोग यहा सत्सग करने के लिए आते हैं। सत्सग करने मे हमारी अनुमोदना क्यों नही होगी।

साध्वीजी—*श्रावक लोग यहा आते हैं तो गाड़ी या मोटर में बैठकर आते हैं।* उस समय जो हिंसा होती है उसका पाप आपको *लगेगा या नही ?*

आचार्यश्री—हमारा अनुमोदन तो सत्सग करने का है, *गाड़ी या मोटर* से आने मे नहीं। उसका पाप हमको क्यों *लगेगा ?*

साध्वीजी—श्रावक आपको पूछते हैं तो आप बताते हैं कि आप अमुक दिन *अमुक जगह पहुच रहे हैं। उस दिन वे लोग वहा आते हैं तो इसमें आपका अनुमोदन कैसे नहीं होगा ?*

आचार्यश्री—यदि हम बताए नही कि हम अमुक दिन वहा पहुच रहे हैं तो किसी को पता ही नही लगेगा। उदाहरणार्थ— शाति भाई ने पूछा कि हम जोरावरनगर कब पहुच रहे हैं? मैंने कहा—'सात तारीख को।' मैं जानता था कि लोग वहा आएगे तो मोटर से आएगे पर उसका पाप हमें क्यों लगेगा? वे मोटर में चढ़कर आते हैं या किसी दूसरे साधन को काम में लेते हैं, यह हमें काम्य नहीं है। हमें तो काम्य है उनका सत्सग में उपस्थित होना।

साध्वीजी—साधु-साध्वी जीव-दया क्यों नही कर सकते?

आचार्यश्री—दया दो प्रकार की होती है—*आत्मदया और परदया।* आत्मदया होगी तो परदया सहज ही हो जाएगी। जैसे किसी साधु के पाव के नीचे कोई कीड़ा आ गया और उसे पता न चले तो हम बता देते हैं कि तुम्हारे पैर के नीचे कीड़ा है।

बताने से वह मुनि अपने पाव को हटा लेता है। इस क्रिया का व्यावहारिक फलित है कीड़े का बचाव। किंतु तत्त्व दृष्टि से सोचें तो बचाव हुआ है आत्मा का। पाप से उसकी आत्मा बची है। कीड़े का बचना आत्मदया का प्रासगिक फल है। इसी प्रकार आत्मदया के फल मे हम गृहस्थों का भी पथदर्शन कर सकते हैं। पर जो काम हम स्वय नही करते, उसका अनुमोदन भी नही कर सकते।

आप इस तत्त्व को और गहराई से समझिए। एक मकान में साधु ठहरे हैं। वहा रात को चोर चोरी करने आए। साधुओं ने देखा और सोचा कि ये चोरी करेंगे तो इनकी आत्मा मलिन होगी और हमारे रहते-रहते चोरी होने से धर्म की बदनामी होगी। साधुओ ने चोरों को उपदेश दिया। चोर समझ गए और जीवन-भर चोरी करने का त्याग कर दिया।

इसी प्रकार एक कसाई मुनि के उपदेश से बकरों की हिंसा का त्याग करता है तथा एक व्यभिचारी वेश्यागमन का प्रत्याख्यान करता है। चोर और कसाई के त्याग करने से धन ओर बकरों की रक्षा हुई तथा व्यभिचारी के त्याग से वेश्या कुए में गिर कर मर गई।

यदि हम धन और बकरों के बचने को धर्म मानेंगे तो उस स्त्री की मृत्यु का पाप व्यभिचार छोड़नेवाले को लगेगा, यह भी मानना होगा। किंतु यह तथ्य किसी को भी मान्य नही। अत हमें स्वीकारना होगा कि जीवदया आत्मदया का प्रासगिक फल है। हमारा मूल लक्ष्य जीवदया नही, किंतु आत्म-दया है।

साध्वीजी—साधुओं के उपदेश से इतना बड़ा काम हुआ, यह अच्छी बात है। पर श्रावक इस प्रकार उपदेश देकर काम नही कर सकते। वे यदि पैसा देकर किसी को पाप से बचाए तो आप क्या मानते हैं?

आचार्यश्री—पैसा देना सावद्य योग है या निरवद्य योग?

साध्वीजी—श्रावक को सावद्य योग का त्याग नही है।

आचार्यश्री—श्रावक सामायिक में पैसा दे तो उसे क्या होता हे?

साध्वीजी—सामायिक व्रत है, सामायिक में श्रावक पैसा दे नही सकता।

आचार्यश्री—जो प्रवृत्ति सावद्य हे, जिसे साधु नही कर सकता और सामायिक मे गृहस्थ भी नही कर सकता, उसमें धर्म कैसे होगा? धर्म हमारा अध्यात्म पक्ष हे। पैसा लेना-देना व्यवहार है। पैसा देकर किसी जीव को बचाना अथवा पैसे द्वारा और कोई काम करना सामाजिक कार्य हे। लोकिक पुण्य और लौकिक अनुकपा है पर इसे हम आत्म-धर्म नही मानते।

मैं जहा तक सोचता हू, हमारे सिद्धातों में तत्वत भेद नही है। भेद है व्यवहार पक्ष में। तेरापथी श्रावक भी कुआ, हॉस्पिटल, कॉलेज आदि बनवाते हैं, सामाजिक कार्यों मे भी भाग लेते हैं। पर वे उन्हें आत्म-धर्म नहीं मानते।

साध्वीजी—तो फिर हमारे सिद्धातों में भेद क्या है?

आचार्यश्री—अतर इतना ही है कि हमारी दृष्टि से ये काम सामाजिक कर्तव्य है, गृहस्थ धर्म है, व्यवहार धर्म है और मानवता की दृष्टि से किए जाते हैं।

मैं निश्चय का पक्षपाती हू, पर व्यवहार को भी नकारता नही हू। निश्चय और व्यवहार में समझौता हो जाए तो कोई भी सिद्धात उलझन नही बन सकता।

साध्वीजी—क्या यह सही है कि माघ महीने में आपके जो मर्यादामहोत्सव होता है, उसमें आपके पट्ट के नीचे दीया रखा जाता है। दीया भूत की उपासना के लिये आप ऐसा करते हैं?

आचार्यश्री—क्या दीपक जलाना साधु को कल्पता है?

साध्वीजी—कोई गृहस्थ रख देते होंगे?

आचार्यश्री—साध्वीजी। यह धारणा बिल्कुल निर्मूल है। न कोई दी भूत है और न उसकी उपासना। पर तेरापथ का विरोध करने वालों ने ऐसी अनेक मनगढ़न्त बातो का प्रचार करके लोगों की भ्रान्ति बढ़ाने की कोशिश की है।

साध्वीजी—फिर यह महोत्सव क्या होता है?

आचार्यश्री—यह महोत्सव तो मर्यादाओ का है। पूज्य भिक्षु स्वामी ने अपने नवनिर्मित सघ की सुव्यवस्था के लिए माघ शुक्ला सप्तमी के दिन विशेष मर्यादाए बनाई हैं। जैसे—

- समूचे सघ का नेतृत्व एक आचार्य करें।
- कोई भी साधु अपने-अपने शिष्य न बनाए।
- दीक्षा देने का एकमात्र अधिकार आचार्य के हाथ में रहे आदि।

सप्तमी के दिन उस मर्यादा-पत्र का वाचन होता है। चातुर्मास पूरा होते ही प्राय साधु-साध्विया आचार्य के पास पहुच जाती हैं और सघीय मर्यादाओं के प्रति अपनी निष्ठा व्यक्त करती हैं। उस समय एक विशेष काम होता है—चातुर्मासों की नियुक्ति। हजारों श्रावक उस समय चातुर्मास की प्रार्थना करने आते हैं। अत सहज ही एक मेला-सा लग जाता है।

साध्वीजी—आप जो बात बताते हैं, उसमें तो नकारने जैसी कोई चीज नहीं है। फिर आपमें और हमारे में मतभेद क्या है?

आचार्यश्री—मतभेद बहुत कम हैं, मनभेद ज्यादा हैं।

साध्वीजी—इस मनभेद को मिटा क्यों नहीं देते ?

आचार्यश्री—वार्तमानिक प्रवृत्तियों को देखते हुए लगता है कि यह भी मिट जाएगा।

साध्वीजी—जब हममें और आप में इतनी अभिन्नता है तो शक्तिशाली आचार्य मिलकर एकत्व क्यों नहीं कर लेते ?

आचार्यश्री—हम लोग इस दिशा में तीन वर्षों से प्रयत्नशील हैं। इसलिए भिन्न-भिन्न आचार्यों, साधुओं और साध्वियों से मिलकर सोचते रहे हैं। हमारी हाल की पालीताणा यात्रा भी इस उद्देश्य की पूर्ति में एक कड़ी बनकर जुड़ी है। मैंने एक बार कहा था—'जैन एकता के लिए मुझे कोई उचित त्याग भी करना पड़े तो मैं तैयार हू।' स्वय का बलिदान किए बिना हम दूसरों से कुछ पाना चाहे, यह कभी सभव हो नहीं सकता। अत हमको जैन एकता के लिए सक्रिय प्रयास करना चाहिए।

आपके मन मे किसी भी विषय में कोई सदेह हो तो आप सकोच मत करिए। प्रत्यक्ष बातचीत से ही जिज्ञासा को समाधान मिलता है।

साध्वीजी—इतने बड़े पद पर होकर आपने जिस सरसता और सहजता का भाव दिखाया, इससे हम बहुत प्रभावित हुई हैं।

[बातचीत के समय वातावरण बहुत सरस रहा। साध्वीजी को तेरापथ सघ की आतरिक व्यवस्था, निकाय-व्यवस्था और आगम सशोधन कार्य की जानकारी भी दी गई। बीच-बीच में दूसरे प्रश्न भी सामने आए जिनका आचार्यश्री ने समुचित समाधान दिया तथा साध्वियों के जिज्ञासा-भाव को प्रोत्साहन दिया।]

७ जुलाई १९६७
सुरेन्द्रनगर

आचार्य तुलसी : आचार्य विजयओंकारसूरि

[प्रात. काल के समय जैन स्कूल में आचार्यश्री एव आचार्य विजय ओंकारसूरिजी का मधुरमिलन व वार्तालाप हुआ। उसमें साधुओ के अतिरिक्त कोई भी श्रावक नही था। वार्तालाप का सम्बन्ध जैनशासन और जैनसमाज से रहा। उसका प्रमुख अश यहा प्रस्तुत है।]

आचार्यश्री—सब जैनों का सवत्सरी-पर्व एक हो। भगवान् महावीर की २५वीं सदी सब जैन मिलकर मनाए। समग्र जैन समाज का एक सगठन तैयार हो। मतभेद हो सकता है पर किसी के प्रति मौखिक या लिखित आक्षेप न हो। जैनशासन के सार्वभौम हित के लिए सब जैन एक हों।

सूरिजी—साम्यवादी और काग्रेसी भी मिलकर चिन्तन कर सकते हैं तब हम क्यों नहीं कर सकते। जब तक समाज की आवाज एक नही होगी, तब तक काम नही हो सकता।

आचार्यश्री—अणुव्रत के माध्यम से राजनीतिज्ञों से भी सम्पर्क हुआ है। इतना सम्पर्क पहले शायद शताब्दियों में भी नही हुआ। इससे जैनत्व के प्रसार को भी बल मिला है। ऐसी स्थिति में जैन लोग आपस में लड़ें, यह शर्म की बात होगी।

सूरिजी—पाच तत्त्व तो सबके हैं। किसी ने उन्हें यम कहा है, किसी ने शील और किसी ने व्रत। इस तथ्य को तोड़ने की सामर्थ्य किसी में नहीं है।

मुनि नथमलजी—अणुव्रत का प्रसार मानवता का प्रसार है। प्रत्येक सम्प्रदाय का इसके प्रसार में योग होना चाहिए।

सूरिजी—आज का वातावरण सकुचित हो गया है। किसी फकीर से मिल सकते हैं पर जैन-साधु से मिलने मे सकोच होता है। दूसरों से बात करते हैं, पर जैनों से नही। यह ठीक नही है। परस्पर विचार-विनिमय से यह दूरी पट सकती है।

मुनि नथमलजी—यहा आपके सम्बन्ध में जो कुछ सुना, उससे प्रसन्नता हुई।

सूरिजी—यहा का वातावरण भिन्न है। मूल भूमिका ही ठीक नहीं है। जैन-जैन

'स्पर लड़ें एक-दूसरे के प्रति जहर उगले, यह अच्छी वात नहीं है। अब समय दला है। परस्पर घृणा की दृष्टि से देखने व बोलने में कुछ कमी आई है।

आचार्यश्री—मैं सोचता हू कि एक सम्मेलन ऐसा हो, जिसमें इस विषय का न्तन किया जा सके। इससे सकुचितता कम होगी, निकटता बढ़ेगी।

सूरिजी—परस्पर विग्रह एकाएक मिट जाए, यह कठिन है। किन्तु सार्वभौम ष्टि से सब मिलकर काम करें तो क्रमश भेदभाव कम हो सकता है।

मुनि नथमलजी—सैद्धातिक मतभेद अधिक गहरा नही होता। कट्टरता से वह गहरा हो जाता है।

आचार्यश्री —विचारों की भिन्नता होते हुए भी सब अपनी सीमा में रहे तो ठिनाई नहीं होती।

सूरिजी—समन्वय का काम भी सब मिलकर करें तो अच्छा होगा। आज के नेक जैन भी वास्तविक जैन कहा रह गए हैं ?

आचार्यश्री—जैना म कन्दमूल के निषेध पर तो अधिक बल दिया गया है। कन्तु उन्हीं के परिवार वाले शराब और अण्डों का सेवन करने लगे हैं। यह स्थिति चिन्तनीय है।

सूरिजी—होटलों मे जाने वाले काफी व्यक्ति ऐसा करने लगे हैं। यह सत्य भी कि एक स्थान से गिरनेवाला अन्य स्थानों से भी गिर जाता है। विचार तो तब होता है जब अण्डों को भी अहिंसक मानकर खाते हैं।

आचार्यश्री—जैन समाज को जीवित रखना है तो इन पहलुओ पर ध्यान देना ही होगा।

सूरिजी—ऐसे कौन-से कार्य हो सकते हैं, जिन्हें जैन समाज को मिलकर करना चाहिए ?

आचार्यश्री—मानवता के उत्थान का कार्य सभी मिलकर कर सकते हैं।

सूरिजी—यह आवश्यक है। इसमे अणुव्रत और महाव्रत का पालन करने वाले सब आ सकते है।

आचार्यश्री—आज के बौद्धिक लोग जैनो पर यह आक्षेप लगा रहे है कि उन्होने दया पर बल दिया किंतु सत्य पर नही।

सूरिजी—जीव हिंसा का जितना निषेध हुआ हे, उतना मानव के प्रति होने वाले शोषण और घृणा का नही हुआ। यह हुआ तो इसलिए था कि छोटी हिंसा का

निषेध करने से बड़ी हिंसा स्वत रुक जाएगी। किन्तु लोग इसे भूल गए। मैं कहता हू कि यदि धर्म केवल मदिर और उपाश्रय तक ही सीमित होगा, उसका व्यवहार मे प्रयोग नही होगा तो जैनशासन का प्रभाव नही बढ़ेगा।

आचार्यश्री—आपने मेरे मन की बात कह दी। इस सम्बन्ध में मेरे और आपके विचार बिल्कुल मिलते हैं।

[लगभग ५२ मिनट का यह वार्तालाप अत्यन्त सौहार्दपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ।]

३०, अप्रैल १९६७
बाव

आचार्य तुलसी : साध्वी चन्दना

[उपाध्याय अमर मुनि की शिष्या साध्वी श्री चन्दनाजी ने जयपुर के वरिष्ठ श्रावक श्री मन्नालालजी सुराना के साथ छापर एव पडिहारा के मध्य कुहाडिया नामक ग्राम मे आचार्य तुलसी के दर्शन किए। उस समय जो वार्तालाप हुआ, वह यहा प्रस्तुत है।]

साध्वी चन्दनाजी—आपका जोधपुर चातुर्मास था। उस समय हम वहा थे, पर आपसे साक्षात्कार नही हो सका।

आचार्यवर—उस समय आचार्यजी, उपाध्यायजी आदि सभी थे, किंतु कोई प्रसग नही बना। अमर मुनि से सबसे पहले हम आगरा में मिले थे। उस समय की स्मृतिया आज भी जीवत हैं।

जयपुर से कानपुर, कलकत्ता जाते समय हम आगरा गए थे। वहा प्रथम दिन ही हम स्कूल मे प्रवचन कर आवास-स्थल पर लौट रहे थे। मार्ग में सेठ अचलसिंहजी आदि प्रमुख श्रावक खड़े थे। उन्होने हमारा रास्ता रोककर कहा—'इधर पधारिए।' 'इधर क्यो?' हमारे पूछने पर वे बोले—'इधर पधारना जरूरी है।' हम उधर चल पड़े। स्थानक के आगे आकर वे रुक गए और कहने लगे— 'आप अदर पधारिये।' वे लोग कोई बात स्पष्ट नही बता रहे थे। इसलिए हम असमजस मे थे। शहर के सभ्रात लोग हमे किसी गलत स्थान पर नही ले जा सकते यह सोचकर उनको मना भी नही किया ओर हम स्थानक में प्रविष्ट हो गए। मकान मे पहुचने पर भी हमे कोई दृष्टिगत नही हुआ, तब हमने पूछा—'आप हमे यहा क्यो लाए हे?' सेठ अचलसिंहजी ने हमारे प्रश्न के उत्तर म कहा—'यहा अमर मुनिजी हैं।' हमने चारों तरफ देखा कहीं कोई मुनि या भाई नहीं था। फिर भी वे हमे आगे ले जा रहे थे। हमने उस मकान का दालान पार कर चोक को भी पार कर दिया। तब सामने से उपाध्याय अमर मुनि आते हुए दिखाई दिए। उन्हाने मिलते ही सबसे पहले ये बोल कहे—'आचार्यजी! आपने हम सबको पीछे छोड़ दिया। आप यहा तक आ गए और हम यहा तक भी नही आ सके।' उनके ये बोल इतने मार्मिक और आत्मीयतापूर्ण

थे कि हमारी यात्रा की सारी थकान दूर हो गई। कुछ क्षणों के मिलन के बाद हमने वहा से जाना चाहा तो अमर मुनि बोले—'अब यहा से जाना आपके हाथ की बात नही है।' हमने कहा—'ठहरने के लिए व्यवस्था अन्यत्र हुई है। सतों के कधों पर बोझ है। जाना तो पड़ेगा ही।' वे बोले—'सारा स्थान आपका है। जहा इच्छा हो वहा ठहरें। अब रही गोचरी की बात। उसकी भी कोई कमी नही है।'

अमर मुनि के आत्मीयतापूर्ण आग्रह ने हमको वहा रोक लिया। घटा-भर उस समय बातचीत हुई। उसके बाद मध्याह्न में फिर चर्चा हुई। प्रथम परिचय में इतनी निकटता का माहौल सबको ही रोमाचित करने वाला था। बातचीत के मध्य महाप्रज्ञ ने वहा रखी हुई एक पुस्तक सभवत 'अहिंसा-दर्शन' हाथ में ली। उन्होंने उसे उलट- पलट कर देखा, पर उद्देश्य फलीभूत नही हुआ। उस पुस्तक के कुछ पृष्ठों पर तेरापथ के विरोध में लिखा हुआ था। वे पृष्ठ उनके पास नोट थे। उन सब पृष्ठों को टटोला, पर कुछ भी नही मिला। अमर मुनिजी मुस्कराते हुए बोले—'आप जो देखना चाहते हैं, इसमें नही मिलेगा। यह पुस्तक का दूसरा सस्करण है। उसमें से हमने वे सब अश निकाल दिए हें, जो आपके सबध मे थे।' यह सुनकर हमें सुखद आश्चर्य हुआ। हमारे कुछ कहे बिना ही अपनी इच्छा से अपनी पुस्तक के उन अशो को निकालना उनकी उदारता और सद्भावना का प्रतीक था। यह प्रसग सन् १९५८ का होगा। आज २६ वर्षों के बाद भी वह दृश्य हमारी आखो के सामने है। आपके आने की बात हमने छापर में सुन ली थी। कल तक हम लोग छापर थे। आज वहा से चलकर यहा आए है। गाव का प्राकृतिक वातावरण इस प्रसग को सहजता देने वाला है। अभी कुछ समय पहले ही हमने प्रवचन किया था।

साध्वी चन्दनाजी—हमारे यहा पहुचने मे कुछ विलम्ब हो गया।

एक भाई—इस विलम्ब की क्षतिपूर्ति हम कल चाहेगे। आचार्यवर कल पडिहारा पधार रहे है। उस समय आप भी वहा पधारें।

साध्वी चन्दनाजी—अभी तो हम आचार्यश्री के सामने बैठे है। हमें तो आपका आदेश मानना है।

आचार्यश्री—पडिहारा के श्रावक समाज को यह अवसर मिलना ही चाहिए।

साध्वी चन्दनाजी—आपका निर्देश हे तो हम कल ९ बजे तक वहा पहुच जाएगी।

आचार्यश्री—वीरायतन मे आपका काम प्रगति पर है?

साध्वी चन्दनाजी—बिहार भगवान महावीर की भूमि है। वहा की जनता के

साथ हमारा सीधा सपर्क न रहने के कारण वे क्षेत्र उजड़ गए हैं। विचारों मे बिखराव हो गया। सन् १९६२ में वैभारगिरी की सप्तपर्णी गुफा के पास हमने कुछ काम शुरू किया। हमने अनुभव किया कि वहा की गरीब जनता के लिए आचाराग और भगवती की चर्चा व्यर्थ हे। जनता के लिए सबसे बड़ा शास्त्र है—जीवन की समस्या। हमने उनकी समस्याओं को समझने की कोशिश की। उनके साथ निकटता बढ़ाई और जाति एव धर्म-परिवर्तन की बात किए बिना उनको अच्छा इसान बनने की प्रेरणा दी।

एक समय था जब वैभारगिरी की घाटियों में अहिंसा की गूज थी। अभय के सस्कार थे। कालान्तर में वहा हिंसा, आतक, शराब और शिकार का बोलबाला हो गया। महाराजश्री (अमर मुनि) ने उनको शिकार और शराब छोड़ने की विशेष प्रेरणा दी। उनके प्रयत्न से आज वहा शराब और शिकार बिल्कुल बद है।

आचार्यश्री—यह बहुत शुभ सूचना है। हम पिछले पैतीस वर्षों से अणुव्रत के द्वारा यही काम कर रहे हैं। वर्ण, वर्ग, जाति, धर्म आदि भेदों मे उलझे बिना मनुष्यमात्र को सही दिशा देना अणुव्रत का लक्ष्य है। इस सदर्भ में मैं कई बार कहता हू—'हमे जैन नहीं' अच्छे मैन चाहिए। हम अजेना को जैन बनाए, उससे पहले जैनों को सच्चे जेन बनाए।' हम राक्षसो को आदमी बनाने का प्रयत्न करे। उससे पहले आदमी को आदमी बनाए।' इन विचारो से जनता में उथल-पुथल ही नही मची तटस्थ दृष्टि से तत्व को सोचने-समझने का मोका भी मिला। इसी कारण आज अणुव्रत के कार्यक्रमो से सबके मन में आकर्षण बढ़ रहा है।

[साध्वी चन्दनाजी का गृहस्थ जीवन का पारिवारिक सबध पूना से है। पर वे मूलत देवगढ़ की हैं। आचार्यश्री को इस सबध मे बताया गया तो आप बोले—'वह तो हमारी भूमि है।']

साध्वी चन्दनाजी—भूमि आपकी हे तो हम भी आपके ही हैं।

आचार्यश्री—तेरापथ का उद्गम-स्थल मेवाड़ हे। राजसमद के निकट केलवा गाव मे आचार्य भिक्षु ने तेरापथ की स्थापना की थी। अभी हम बीदासर में अपने धर्मसघ का मर्यादा महोत्सव सपन्न कर इधर आ रहे है। उस समय पौने पाच सौ साधु-साध्वियो की वहा उपस्थिति रही। लगभग चालीस हजार लोगो ने एकसाथ महोत्सव के उस भव्य दृश्य को देखा था। आपका आना उस समय होता तो अधिक अच्छा होता। अब हम अधिकाश साधु-साध्विया को विदा कर इधर के क्षेत्रो की यात्रा पर जा रहे है।

साध्वी चन्दनाजी—नानक ने कभी कहा था कि अच्छे लोगों का उजड़ जाना—फैल जाना ही अच्छा है। आप सब साधु-साध्वियों को विदा कर आए हैं। व नए-नए क्षेत्रों में जाकर अच्छा काम कर सकेंगे। जैन विश्वभारती का नाम भी सुना है। उसे भी देखने का विचार है।

आचार्यश्री—यह भी एक सयोग है। हमने अब तक वीरायतन नहीं देखा, आपने जैन विश्वभारती नही देखी।

साध्वी चन्दनाजी—वीरायतन के लिए आपको हमारा निमत्रण है। आप बिहार की यात्रा करें और वीरायतन भी देखें।

आचार्यश्री—जैन विश्वभारती आपकी है, और वीरायतन हमारा है। हम इसके सबध में बराबर चर्चा करते रहते हैं।

साध्वी चन्दनाजी—राजगृह के प्रति लोगों के मन में आकर्षण है। वहा प्राय प्रतिदिन चार सौ यात्री आ जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र होने के कारण भी उसका महत्व है। आपके आने से उसका महत्त्व और बढ़ जाएगा।

आचार्यश्री—हम लोग अभी मेवाड़, मारवाड़ और गुजरात की यात्रा करके आए हैं। इस इलाके में घूमने के बाद जोधपुर जाना है। इस वर्ष का चातुर्मास वहा हैं।

साध्वी चन्दनाजी—काफी लबी यात्रा है। विहार में कोई असुविधा तो नहीं होती। आज भी छापर से सीधे यहा पधारे हैं। बहुत चलना पड़ता है।

आचार्यश्री—चलना तो अपना जीवन-व्रत है। वास्तव में तो साधु साध्वियों का बल ऊचा है।

युवाचार्यश्री—आचार्यश्री का आत्मबल इतना प्रबल है कि आप आयुष्य से अभिभूत नही होते अवस्था को अभिभूत कर देते हैं।

साध्वी चन्दनाजी—यह सही है। शरीर में परिवर्तन होता ही रहता है। मन कमजोर नही होना चाहिए। उपाध्यायश्री का भी मनोबल बहुत ऊचा है। उनके सान्निध्य मे कुछ दिन पूर्व आचाराग पर एक गोष्ठी थी। काफी अच्छी चर्चा चली थी।

आचार्यश्री—आचाराग जैन साधना का प्रतिनिधि शास्त्र है। उसमें अपूर्व सत्य का दर्शन होता है। यहा 'आयारो' पर भाष्य लिखा जा रहा है। इन शताब्दियों में आगम साहित्य पर यह एक नया प्रयोग है।

साध्वी चन्दनाजी—डॉ॰ कमलचन्द सोगानी ने आचार-चयनिका प्रकाशित का

। उसे व्यवस्थित करने का भी प्रयत्न किया जा रहा है।

युवाचार्यश्री—वह चयनिका व्याकरण आदि की दृष्टि से ठीक है, पर उसमे गाधना की दृष्टि से विशेष ध्यान नही दिया गया है। 'आयारो' मे साधना के सूत्र से ही है जसे विज्ञान के अज्ञात रहस्य। चूर्णि म उनके सबध म कुछ सकत अवश्य पर टीका म कोई स्पष्टता नही है। समग्रता से तो विवेचन है ही नही। हर्मन याकोवी ने इस पर जरूर कुछ काम किया था। पर परपरागत रहस्यों के बीज हाथ न लगन के कारण उसम पूर्णता नही आ सकी। आचाराग के टीकाकार विद्वान थे। किंतु साधना की भूमिका प्रशस्त न होने के कारण सारी व्याख्या तत्त्ववाद तक सीमित रह गई। चूर्णिकार के सामने भी यही समस्या रही।

आचार्यश्री—वर्तमान की समस्या भी यही है। आज आगमा पर काम हो रहा है पडितों द्वारा। उस काम मे पाडित्य तो आ जाएगा, पर साधना का निखार नही हो सकेगा। जेन साधना के रहस्यो को समझने के लिए केवल पाडित्य की नही साधना की भी अपेक्षा है।

साध्वी चन्दनाजी—साधना और सगठन दोनों बात जरूरी है। आज जैना का सगठन भी इतना मजबूत कहा है। जैनत्व के प्रति हमारी आस्था इतनी प्रगाढ हो, जिसमे हम कह सक कि हर साधु हमारा है, हर मदिर हमारा है आर हर शास्त्र हमारा है। इससे एक स्थिति बनती है। हमारे देश में जितने जैन है उतने ही सिख है। उन पर कोई भी आक्रमण हाता है तो एक आवाज़ उठती है। जैनो पर कुछ भी हो जाए, कही कोई चर्चा नही। जिस समय मनवाड़ में आचार्य आनदऋषिजी महाराज के कार्यक्रम मे एक घटना घटी, उसे लेकर न कही से कोई स्वर उठा और न सरकार की ओर से ही मदद मिली। उन्ही दिनों बिहारशरीफ में मुसलमानो में एक दगा हुआ, उसे लेकर कितनी दौड़-धूप हुई थी।

आचार्यश्री—साध्वीजी ! कारण स्पष्ट है। पूजा व्यक्ति की नही शक्ति की होती है। जैना में शक्ति नही है यह बात नही है। उसका सम्यक् नियोजन नही हो पा रहा है। जैन लोग स्वय अपने मदिरों और तीर्थों के झगड़ो में उलझे हुए हैं। जैनत्व की दृष्टि से यह बात शोभास्पद नही है। एक बार कुछ भाई मदिरो के झगड़ों को लेकर विनोबाजी के पास गए थे। उन्हाने स्पष्ट कहा—'आप लोग हमारे पास क्या आए है ? ऐसे जैन आचार्यो के पास जाइए जो न श्वेताबर है न दिगम्बर।' किंतु इस दिशा में कोई प्रयत्न नही हुआ।

युवाचार्यश्री—सही बात तो यह है कि ये झगड़े धर्म के नही, अपने-अपने अह

के हैं। विचार-भेद कोई बुरी बात नही है। तटस्थ व्यक्ति कभी उसमें उलझ
नही सकता। वर्षों पहले की बात है—'भिक्खु दृष्टांत' को लेकर स्थानकवासी समाज
मे काफी ऊहापोह था। पत्रों में चर्चा हो रही थी। उस समय आचार्यश्री ने कहा—'आप
लोग चाहते क्या हैं? आपको इस पुस्तक पर आपत्ति है तो आप इसे अमरमुनि
को सौंप दीजिए। वे जो भी कहेंगे, हम उस पर विचार करेंगे। अमरमुनिजी ने
प्रसग को इतने अच्छे ढग से टेकल किया कि सारा विवाद वहीं समाप्त हो गया।
हम भी वे पहले व्यक्ति मिले जो इतने सौहार्द से सामजस्यपूर्ण बात करने वाले थे।

साध्वी चन्दनाजी—उपाध्यायश्री का विश्वास जोड़ने में है। वे कभी तोड़ने-
मूलक नीति मे सक्रिय नही हुए।

युवाचार्यश्री—यही बात आचार्यश्री के लिए है। अमर मुनि भी आचार्यश्री के
समन्वय-प्रधान विचारों के सम्पर्क में बराबर रहे हैं। बम्बई चातुर्मास (वि.स. २०११)
में आपने साम्प्रदायिक सद्भावना की दृष्टि से पचसूत्री कार्यक्रम दिया था। उसकी
प्रतिक्रिया काफी अच्छी हुई। विजयवल्लभसूरिजी उस समय वहीं थे। उनके साथ
बहुत निकटता बढ़ गई थी। निर्वाण शताब्दी के अवसर पर आचार्यवर ने जो नेतृत्व
दिया, वह कभी विस्मृत नही हो सकेगा। उसके बिना इतना सगठित ढग से का
होना कठिन था। जैन सम्प्रदायों के ढाई-तीन सौ साधु-साध्विया की एक मंच पर
उपस्थिति होती थी। लगातार कई दिनों तक सामूहिक कार्यक्रम चलें। दर्शकों के
श्रोताओं के मन पर जैनत्व की अच्छी छवि अंकित हुई।

आचार्यश्री—उस समय अमरमुनिजी नही थे। उनकी अनुपस्थिति अखरने
जैसी थी। उनके चिन्तन और वर्चस्व का भी जैन समाज मे अच्छा उपयोग हो सकता
था। हम उनके व्यक्तित्व को मानते और जानते हैं। लेकिन वैसा हो नहीं पाया।

साध्वी चन्दनाजी—आप एकात्मकता की दृष्टि से जो काम कर रहे हैं वह
महत्त्वपूर्ण है। हमारी भावना है कि आप सघ के साथ वीरायतन पधारें। हमें सेवा
का मौका दें। इससे बहुत सुन्दर वातावरण बनेगा।

आचार्यश्री—इच्छा तो हमारी भी है। देखते हैं कब मौका मिलता है।

साध्वी चन्दनाजी—हमारी परपरा में जो अहिंसात्मक आदर्श है, वह आदर्श
ही है। वास्तविकता नहीं है। जहा तक एकेन्द्रिय जीवों का प्रश्न है, किसी न किसी
रूप में उनकी हिंसा होती ही है। साध्वाचार को नियमों के जाल में जटिल बना देने
से द्वन्द्व पैदा होता है। इस सबध में आपके क्या विचार हैं?

आचार्यश्री—एक दृष्टि से आपका चिन्तन ठीक है। जीवन की अपरिहार्यता

या अनिवार्यताओं को अस्वीकार नही किया जा सकता। हमारे आचार की जो सीमाए बनी हैं, वे उन्हें ध्यान में रखकर ही बनी हैं। द्वन्द्व का जहा तक सवाल है वह तभी पैदा होता है, जब हिंसा को मात्र जीव हिंसा के साथ जोड़ा जाता है। यदि इसे यतना के साथ जोड़ दिया जाए, जैसा कि भगवान ने कहा है—'जय चरे, जय चिट्ठे, जयमासे जय सए—इस क्रम से सारा द्वन्द्व समाप्त हो सकता है।

वैसे आचार-संहिता के निर्धारण मे कुछ सीमा-रेखाए खीचनी भी जरूरी हैं। केवल अपरिहार्यता को स्वीकार कर चला जाए तो सीमा का इतना विस्तार हो जाता है कि कही पैर टिकने का भी अवकाश नही रहता। युग-सदर्भ में कुछ नए प्रश्न हमारे सामने आ सकते हैं। इस विषय मे हमारा चिन्तन यह है कि जैन मुनियों की आचार-संहिता मे कही कोई परिवर्तन करना हो तो उसके लिए जैन आचार्यों और बहुश्रुत मुनियों की एक समिति गठित हो। उस समिति की समूह-चर्चा से निकलने वाले निष्कर्ष को आधार मानकर सीमा का निर्धारण किया जा सकता है।

व्यक्तिगत स्तर पर जीनेवाले व्यक्ति कुछ भी कर सकते है। क्योकि उन पर कोई प्रतिबध नही होता। किंतु जहा समूचे जैन समाज का प्रश्न है, वहा व्यक्तिगत चिन्तन के आधार पर कोई निर्णय नही लिया जा सकता। मैं आपकी इस बात से सहमत हू कि साध्वाचार की कुछ बातें चिन्तनीय हैं। क्योकि हम रूढ नही हैं। चिन्तन के क्षेत्र में हम अग्रणी रहे है। किंतु मिलजुल कर कोई समाधान खोजा जाए तभी सुन्दर रास्ता बन सकता है। इसके लिये सन् १९८१ में जयाचार्य निर्वाण शताब्दी के अवसर पर दो बातें ध्यान मे आई थी—

- जैनशासन का एक सर्वमान्य मच हो। वहा से विशुद्ध रूप में जैनशासन के हितो का चिन्तन हो और जैनत्व के स्वर को तीव्रता से उठाया जाए।
- जैनधर्म के प्रबुद्ध व बहुश्रुत मुनियों और आचार्यों की एक समिति गठित हो, जो आज के सदर्भ में विचारणीय पहलुओं पर चिन्तन कर तटस्थ रूप मे निर्णय देती रहे।

साध्वी चन्दनाजी—विचारो का जहा तक सवाल है सामूहिक चिन्तन और निर्णय किया जा सकता है। पर आचार को लेकर जो जटिलता है, उसका समाधान होना मुश्किल है। (साध्वीश्रीजी ने पूरी विनम्रता के साथ अपनी बात के समर्थन मे दो-तीन प्रसगो की सक्षिप्त सूचना देते हुए कहा—आचायजी! जैनशासन के हितों के सन्दर्भ में आपका कथन ठीक है। पर हम पिछले बीस-पचीस वर्षों से सवत्सरी

की एकता के लिए चिन्तन कर रहे हैं। इसमें कोई बाधा भी नहीं है, फिर भी हम नही कर सके।

अमोलक ऋषिजी ने जिस समय प्रकाशन को मान्य किया आचार्य आनन्दऋषिजी ने उनके साधुत्व के आगे प्रश्न-चिह्न उपस्थित कर दिया।

इसी प्रकार उपाध्यायजी ने लाउड-स्पीकर के प्रश्न को सुलझाने में बीस वर्ष लगा दिए। अहमदाबाद और जैसलमेर मे बैठकर भी काम किया। पर एकरूपता नहीं आ सकी। ऐसी स्थिति मे क्या जैनसघों के चिन्तनीय प्रश्न सबको एक रूप में मान्य हो सकते हैं ?

आचार्यश्री—हमारा अनुभव कहता है कि इस दिशा मे कोई ठोस प्रयत्न हुआ नही। इसलिए सफलता नही मिली। जैन समाज के पाच-सात प्रमुख व्यक्ति बैठकर कोई निर्णय ले ले तो काम हो सकता है।

युवाचार्यश्री—हमारे सघ मे ऐसे प्रसग आते ही रहते है। जो भी विचारणीय बिन्दु होते हैं, उन पर मर्यादा-महोत्सव के समय खुलकर चर्चा होती है। माइक, वस्त्र-प्रक्षालन आदि बीसो प्रसग ऐसे आए हैं, जिसमे साधु-साध्वियो ने बैठकर मुक्त चर्चा की। पक्ष-प्रतिपक्ष प्रस्तुत किए। उन सब प्रसगो मे अतिम निर्णय आचार्य का मान्य हुआ। इस प्रक्रिया मे दो बातें फलित होती है—

१ चिन्तन की स्वतत्रता।

२ निर्णय का अधिकार आचार्य का।

इस क्रम से काम करने मे काफी सरलता का अनुभव होता है।

साध्वी चन्दनाजी—तब हम अवसर की प्रतीक्षा करे। युवाचार्यजी ने अपने प्रवचन में जैसी सगोष्ठी करने का प्रस्ताव रखा है, वह हो जाए तो सब विषयों पर अच्छी चर्चा हो सकती है।

आचार्यश्री—मेरा यह दृढ विश्वास है कि पाच-सात प्रबुद्ध, तटस्थ और चिन्तनशील आचार्यों और मुनियो की समिति बड़ा काम कर सकती है। कुछ साधु उसमें अपनी असहमति भी प्रकट कर सकते हैं। पर श्रावक समाज उसे पूरी मान्यता देगा। वह आज साधुओं की पारस्परिक खीचातानी से बैचेन है। समय रहते हमने कोई निर्णय नहीं लिया तो सभव है समाज की युवापीढ़ी बगावत कर देगी। वह किसी सप्रदाय में उलझना नही चाहती तत्त्व पाना चाहती है। पिछले वर्ष इन दिनों हम अहमदाबाद में थे। वहा सभी सप्रदायो के जैन बधु सपर्क में आते थे। विरोध के बावजूद आते थे। क्योंकि उन्हें प्रायोगिक धर्म में रस था। वे प्रेक्षाध्यान का प्रयोग करते और कृतार्थता का अनुभव करते थे।

साध्वी चन्दनाजी—आपका चिन्तन ठीक है। इसके लिए सामूहिक प्रयास सफल हो सकेगा। पर पहले यह तो तय हो कि समिति किन बिन्दुओ पर चर्चा करेगी ?

युवाचार्यश्री—पहले बिन्दुओ का निर्धारण करने की जरूरत नही है। जो-जो अपेक्षाए सामने आएगी, बिन्दु स्वय उभरते जाएगे। भगवान महावीर की निर्वाण शताब्दी के सदर्भ में साहू शातिप्रसादजी आचार्य श्री से मिले और बोले—समय बहुत कम रहा है किन्तु काम कुछ भी नही हो पा रहा है। पडित मिलते हैं और किसी निर्णायक बिन्दु पर पहुचे बिना ही उठ जाते हैं। ऐसी स्थिति मे क्या करना चाहिए। गभीर चिन्तन के बाद यह निर्णय हुआ कि काम पडितों से नही, साधुओ मे करवाना चाहिए। चार नाम सामने आए—मुनि विद्यानदजी, मुनि जनकविजयजी मुनि सुशीलकुमारजी और एक मैं (मुनि नथमल)। हम चारों मुनि बैठे। महीनों से जो काम उलझा हुआ था थोड़े समय मे हो गया। चारों मुनियों में परस्पर इतना सामजस्य था कि सबने एक दूसरे से कहा— 'आप जैसा चाहे करें। वह हम मान्य है' उस समय हम लोग पाच दिन साथ-साथ रहे।

साध्वी चन्दनाजी—उपाध्यायजी ने साध्वियों को विहार के लिए वाहन प्रयोग की स्वीकृति दी है।

आचार्यश्री—जैन साध्विया सब जगह यान-वाहन से यात्रा करेंगी। क्या इससे पद-यात्रा छूट नही जाएगी ? और जैनशासन की गरिमा में कोई अन्तर नही आएगा ? कल छोटे से गाव में वहा के देहाती लोगों ने आपको कार में देखा। वे सदिग्ध मन से मेरे पास आकर बोले—'गुरुजी ! आपकी साध्विया तो मोटर में नही बैठती थीं। अब आपने उनको इजाजत दे दी है क्या ?' इस प्रकार स्थान-स्थान से प्रश्न उठेगे और स्थायी मूल्यो के आगे भी प्रश्नचिन्ह लग जाएगा। विशेष अपवाद की बात दूसरी है। सामान्यत जैन साधु-साध्विया के लिए वाहन-प्रयोग सर्वथा खुला करना हमें जचा नही ।

साध्वी चन्दनाजी—साध्वियों की पदयात्रा को लेकर भी कुछ समस्याए हैं। उन्ही को ध्यान मे रखकर यह निर्णय लिया गया है। वैसे हर नई बात के साथ ऊहापोह और उलझनें तो खड़ी होती हैं। इनके सबध में आप सब मिलें तभी विचार किया जाए।

आचार्यश्री—हम विकास के पक्षपाती हैं। किन्तु जैन मुनियों के आचार की छवि को धूमिल बनाने वाली कोई भी बात हमें पसन्द नही है। इसलिए हम चाहते

है कि जैन मुनि की एक सामान्य किन्तु सर्वमान्य आचार संहिता का निर्माण हो ताकि इस क्षेत्र में किसी प्रकार की विसंगति पैदा न हो।

साध्वी चन्दनाजी—उपाध्यायश्री का भी यही चिन्तन है कि हम अपने ... को रचनात्मक काम में लगाए। उन पर अनेक लोगों का दबाव आया कि वे ... की स्थापना करें। किंतु उन्होंने उस निवेदन को अस्वीकार करते हुए कहा—मुझे साधु की तरह अमरमुनि की तरह रहने दीजिए और मुझे कुछ भी नहीं चाहिए।

आचार्यश्री—अमरमुनि संघ से निरपेक्ष होकर काम में लग गए। न उन्होंने समाज को तोड़ने का प्रयत्न किया और न ही कोई ऐसा काम किया जो ... निर्लेपता पर प्रश्नचिह्न लगा सके। उनकी यह वृत्ति अच्छी है। फिर भी उन्हें ... के सामूहिक हितों को ध्यान में रखते हुए एक सामूहिक प्रयत्न करना चाहिए।

साध्वी चन्दनाजी—भगवान महावीर की जन्मभूमि और विहार भूमि के ... में आप क्या सोच रहे हैं?

आचार्यश्री—बिहार में हमारे साधु-साध्विया जाती हैं? उनसे हमने कहा है—तुम लोग मारवाड़ी श्रावक-श्राविकाओं की संभाल लेते हो वह एक जरूरी काम है। उसके साथ-साथ वहां रहने वाले बिहारी आदिवासी लोगों में भी काम करो। उन्हें भगवान महावीर का संदेश सुनाओ और धार्मिक बनाओ तो एक उत्क्रांति घटित हो सकती है। उत्तरी बिहार के कुछ हिस्सों में काम किया गया। इस आधार पर हजारों बिहारी लोग संपर्क में आए और सैकड़ों जैन बने। उन्हें इस बात का गौरव अनुभव हो रहा है कि भगवान महावीर उनकी भूमि पर जन्मे और बड़े हुए। अभी कुछ व्यक्ति वहां से आए थे। उनके मन पर जैनत्व का प्रभाव है। वहां के कुछ कुख्यात डाकू भी साध्वियों के संपर्क में आकर सुधरे हैं। अब उन्होंने डकैती का धंधा छोड़कर सामान्य जीवन जीना शुरू कर दिया है।

कुहाड़िया और पड़िहारा में दो किश्तों में हुए इस वार्तालाप में अनेक साधु-साध्विया और श्रावक-श्राविकाओं की भी प्रायः मौनसाक्षी रही थी। कुछ समय के लिए आचार्यश्री और युवाचार्य श्री के साथ साध्वी चन्दनाजी का वैयक्तिक वार्तालाप भी हुआ। उसमें आचार्यश्री ने साध्वाचार में आ रहे स्वैच्छिक परिवर्तन की ओर साध्वीजी का ध्यान आकृष्ट किया

२ मार्च १९८५
कुहाड़िया

आचार्य तुलसी : साध्वी बसन्तप्रभा

[देरावासी सम्प्रदाय की साध्वी वसन्तप्रभाश्रीजी जैनतत्त्वो के सम्बन्ध मे जिज्ञासा लेकर आचार्यश्री तुलसी के पास मुलुड आई। उनके साथ उनकी अनुयायिनी कतिपय बहिने भी थी। उस समय जो वार्तालाप हुआ उसका सक्षिप्त सार निम्नलिखित है।]

वसन्तप्रभाश्री—राग और द्वेष की क्या परिभाषा है ?

आचार्यश्री—सयमहीन—भौतिक सुख के अभिप्राय को 'राग' कहते हैं। दु ख के अभिप्राय को 'द्वेष' कहते हैं। राग-द्वेष से परे की अवस्था माध्यस्थ अवस्था है।

वसन्तप्रभाश्री—क्या दया मे आप राग का समावेश मानते हैं ?

आचार्यश्री—आध्यात्मिक दया राग और द्वेष से परे है। उसका स्वरूप है—पापात्मक आचरण से आत्मा को बचाना। हिंसा असत्य आदि पापपूर्ण प्रवृत्तियों से आत्मा को दूर रखना। यह मोक्ष का मार्ग है। अब सवाल रहा लौकिक दया का। लौकिक या सामाजिक व्यक्ति लोकदृष्टि अथवा सामाजिक कर्त्तव्य की भावना से उसे करते ही हैं।उसके साथ मोक्षधर्म का कोई सम्बन्ध नही है।

वसन्तप्रभाश्री—लौकिक दया, लोक-व्यवहार या समाज-व्यवस्था की वस्तु है। वह श्रमण-धर्म या मोक्ष-धर्म नही है। पर साथ ही साथ शास्त्रो मे कुछ ऐसे उदाहरण भी पाये जाते हैं, जिनसे लौकिक दया को समर्थन मिलता है, जैसे—मेघकुमार ने हाथी के भव में शशक की दया कर उसे बचाया। मेघरथ राजा ने कबूतर की रक्षा के लिये अपने शरीर का मास काट-काटकर बाज को डाला। वहा आपका क्या विचार है ?

आचार्यश्री—मेघकुमार की घटना पर सूक्ष्मता से विचार करना अपेक्षित है। मेघकुमार ने हाथी के भव मे शरीर खुजलाने के लिए पैर ऊपर उठाया था। उसे नीचे टिकाने से पहले उसने देखा तो वहा एक शशक आकर बैठ गया था। हाथी ने सोचा कि पैर नीचे टिकाने से शशक कुचल जायेगा। इस पापवृत्ति से बचने के लिये उसने अपने पैर को ऊचा रखा। प्राणान्त-कष्ट की उसने परवाह नही की।

उसकी यह क्रिया अपनी आत्मा को हिंसा के पाप से बचाने के लिये था। शशक का बचना एक प्रासंगिक कार्य है। यदि शशक को बचाना ही उसका उद्देश्य होता तो पैर को ऊचा रखकर अपना बलिदान करने के बजाय वह सूड स उसे उठाकर अपने ऊपर बिठा सकता था। किन्तु वस्तुत वहा हाथी की दृष्टि अपने आपको पाप से बचाने की थी।

मेघरथ राजा द्वारा मास काट-काटकर दिए जाने का जो उल्लेख ग्रन्थों में मिलता है, वह प्रामाणिक नही है। 'शान्तिनाथचरित्र महाकाव्य' में प्रसगोपात्त मेघरथ राजा के वर्णन में श्री मुनिभद्रसूरि ने लिखा है—'अथ स मेघरथ श्रितपौषध'— उस समय मेघरथ पौषध-व्रत मे था। पौषध-व्रत मे बैठा वह मास कैसे काटता? इससे इस उदाहरण की प्रामाणिकता घटित नही होती।

वसन्तप्रभाश्री—मोक्ष-धर्म पाप-निवृत्ति में ही है। इस बात से मैं सहमत हू। इन उदाहरणो के विषय में मैं विचार व अनुशीलन करूगी। आध्यात्मिकता मे आपका क्या अभिप्राय है?

आचार्यश्री—आत्मा से, आत्म-विकास से सम्बन्ध रखने वाले सभी विषय आध्यात्मिक हैं।

वसन्तप्रभाश्री—आत्म-विकास का मार्ग क्या है?

आचार्यश्री—सम्यक् ज्ञान सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र की आराधना मोक्ष का मार्ग है। सही ज्ञान, श्रद्धान की शुद्धता और तदनुकूल शुद्ध क्रिया की परिणति से आत्मा विकसित होती है कर्म के आवरण हटते हैं, आत्मा का विशुद्ध स्वरूप प्रगट होता है।

वसन्तप्रभाश्री—साधु सम्यक् ज्ञान सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र का परिपालक होता है, क्या उसने आत्म-विकास की सिद्धि पाली?

आचार्यश्री—साधु सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र रूप मोक्ष मार्ग का पथिक है। वह साधना के पथ पर चलता है। उत्तरोत्तर विकास करता हुआ ज्योही साधना के उच्चतम शिखर पर पहुच जाएगा, आत्म-सिद्धि पा लेगा। सिद्ध प्राप्त दशा का ही दूसरा नाम आत्म-विकास है। साधु आत्म-विकास के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहता है।

वसन्तप्रभाश्री—प्रत्याख्यान के उच्चारण मात्र को (जैसे— कोई कहे, मैं सामायिक का प्रत्याख्यान करता हू) क्या आप धर्म मानते हैं?

आचार्यश्री—धर्म मन, वचन और शरीर की शुद्ध प्रवृत्ति में निहित है। यदि प्रवृत्ति में अन्तःशुद्धि नहीं है तो उच्चारण मात्र से धर्म कैसे होगा? धर्म तो दूर, सामायिक के पाठ का उच्चारण अयत्ना से होगा तो अधर्म हो जाएगा।

वसन्तप्रभाश्री—धर्म-अधर्म का सम्बन्ध तो भाव या आत्म परिणति से है, वचन और काया की प्रवृत्ति का सम्बन्ध उससे किस प्रकार रहेगा?

आचार्यश्री—मानसिक, वाचिक एवं कायिक प्रवृत्ति आत्म-परिणति का ही विभाजन या वर्गीकरण है। आत्म परिणमन की अभिव्यक्ति मानसिक चिन्तन वाचिक कथन तथा कायिक क्रिया के रूप में बाहर आती है। जहां ये परिणतियां विशुद्धिपूर्ण हैं, वहां धर्म है। जहां विशुद्ध नहीं है वहां धर्म भी नहीं।

आचार्य तुलसी : डॉ॰ मीनाक्षी सुन्दरम्

[मदुरै विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ मीनाक्षी सुन्दरम् आचार्यश्री से मिलने आए। राष्ट्रीय चरित्र, शिक्षा आदि विषयो पर उनके साथ वार्तालाप हुआ।]

सुन्दरम्—गत फरवरी माह मे मैं जयपुर में था। वहा विद्यार्थी-चरित्र-निर्माण सप्ताह मनाया गया था। उसमे मुझे अणुव्रत की एक पुस्तक मिली। उसे पढ़कर अत्यत प्रसन्नता हुई कि राष्ट्र मे एक सतपुरुष द्वारा जीवन निर्माणार्थ नैतिक आदोलन चलाया जा रहा है।

आचार्यश्री—चरित्रनिष्ठ सभी व्यक्तियो की पवित्र प्रेरणा से यह सब हो रहा है।

सुन्दरम्—मदुरै आने के लिये मै आपसे निवेदन करता हू। क्या मैं आशा करू कि आप मदुरै आएगे ?

आचार्यश्री—चातुर्मास पूर्ण होने पर उस ओर यात्रा की योजना बन रहा है। सभवत कुछ समय पश्चात् आयोजकगण आपसे मिलकर निश्चय कर लेगे।

सुन्दरम्—ऐसे आयोजनों से नैतिक शक्ति को बल मिलता है।

आचार्यश्री—यदि राष्ट्र का चारित्रिक विकास कर लिया जाए तो अन्य समस्याए स्वय समाहित हो सकती हैं। नैतिक निर्माण के कार्यों में शैक्षणिक जगत का सहयोग अत्यत आवश्यक है।

सुन्दरम्—हम सब यही चाहते हैं कि राष्ट्र का चारित्रिक विकास हो।

आचार्यश्री—अध्यापक वर्ग राष्ट्र के नैतिक निर्माण के लिये सकल्पबद्ध हो जाए तो स्वल्प समय में ही सारे राष्ट्र में परिवर्तन आ जाए।

सुन्दरम्—'यथा राजा तथा प्रजा'— यह उक्ति यथार्थ है। अध्यापक वर्ग ही छात्रों मे प्रतिबिम्बित होता है।

आचार्यश्री—अणुव्रती बनने के लिये पहले स्वय अध्यापक वर्ग को बुराइयों का परित्याग करना होगा है।

सुन्दरम्—मदुरै म विद्यार्थियो का एक शिविर लगा था। उससे प्रभावित होकर विद्यार्थियो ने नशीले पदार्थों के सेवन का परित्याग किया। विद्यार्थी का मानस

कोमल और शीघ्रग्राही होता है। परिपार्श्व में जिस प्रकार का वातावरण देखता है, वह उसे एक बार में ही ग्रहण कर लेता है। यह बात दूसरी है कि घर जाकर वह कितना स्थिर रहता है।

आचार्यश्री—भारतीय सस्कृति में सकल्प का बड़ा महत्त्व है। सामान्य-जन भी सकल्प को सोच समझ कर लेता है। सकल्प स्वीकार कर लेने पर उसे जैसे-तैसे निभाने का प्रयत्न करता है।

सुन्दरम्—अधिक बुराइया सग-दोष से आती हैं। प्राचीन-युग में विद्यार्थी का जीवन-निर्माण एक स्वच्छ गुरुकुल-परपरा म होता था। आज शिक्षा की पद्धति इतनी स्वतत्र नहीं रही है।

आचार्यश्री—फिर भी यदि हमारा ध्यान विद्यार्थियों के जीवन-निर्माण की ओर रहेगा तो उसका असर होगा ही, अपेक्षा यह है कि अधिकारी वर्ग अपने कर्त्तव्य के प्रति स्वय सजग रहे।

सुन्दरम्—आज का वातावरण ऐसा बनता जा रहा है कि जिसमें कर्त्तव्य के स्थान पर अधिकार और राजनीति घुस रही है।

आचार्यश्री—यह सारा वातावरण मनुष्य द्वारा ही बनाया गया है। वह चाहे तो उसे बदल सकता है।

सुन्दरम्—आज शक्ति और पैसे की प्रतिष्ठा इतनी बढ़ गई है कि व्यक्ति उसी के लिए दौड़ रहा है।

आचार्यश्री—परिस्थितियों के बावजूद हमें हमारा कर्त्तव्य तो पूरा करना ही चाहिए। वातावरण बदलने का पुरुषार्थ करना चाहिए। उसका कुछ तो फलित होगा ही।

सुन्दरम्—जन-जागरण होने से ही बुराइयों का अत आ सकता है। अभी चुनाव आ रहे हैं। क्या आप विश्वास करते हैं कि नेतागण अणुव्रत को मानेगे ?

आचार्यश्री—जो अणुव्रत का सकल्प स्वीकार करेगा वह तो मानेगा ही। हम लोगा को अणुव्रत के सकल्प की ओर प्रेरित करते हैं, विवश नहीं करते।

सुन्दरम्—अणुव्रत के माध्यम से आप जो भी सद्प्रयास करते हैं, हम सब उसके साथ हैं। अपने क्षेत्र में भी हम प्रयास करेगे।हमारे प्रयारा को सफल बनाने के लिए आपका एक बार मदुरै अवश्य आना चाहिए।

१३ अक्टूबर १९६८

मद्रास

—

आचार्य तुलसी : डॉ॰ सच्चिदानंद शाह

[पटना विश्वविद्यालय मे अपराह्न के समय प्राच्यविद्या के प्राध्यापक डा॰ सच्चिदानद शाह आचार्यश्री तुलसी के दर्शनार्थ आए। उनके साथ हुए वार्तालाप का सार म यहा प्रस्तुत है।]

शाह—आपका नाम तो बहुत सुना है, पर प्रत्यक्ष देखन का अवसर आज ही मिला ह। वैसे मैं पूर्वीय देशों म भारतीय प्रभाव पर काम करता रहा हू। भारतीय लोगो ने क्षेत्रीय विस्तार के लिये कभी हथियार नहीं उठाया। भारत अपने साम्राज्य का विस्तार नही कर सका। पर जितना सास्कृतिक प्रभाव भारत का रहा है, उतना किसी का नही रहा। यद्यपि आज भारत अपने सास्कृतिक मूल्यों के प्रति अधिक जागरूक नही है। बल्कि आज भारतीयता का बहुत ह्रास हो रहा है। बृहतर भारत भी आज काफी कटा-कटा हो गया है। विदेशी सस्कृति भारत में अपना अड्डा जमा रही है। कोई धन-बल काम में ले रहा है, कोई शस्त्र-बल काम में ले रहा है। दुख इस बात का है कि भारत का अध्यात्म आज कमजोर हो रहा है। पूर्वी एशिया में मैंने देखा कि मुसलमान तक रामायण म रुचि लेते हैं। बौद्ध धर्म तो पूरे पूर्वी एशिया मे फैला हुआ है ही।

आचार्यश्री—प्राचीन जमाने में भारत ने दूर-दूर तक अपना सास्कृतिक प्रभाव जमाया था। विश्वभरनाथ पाडे बताते थे कि मध्य पश्चिम एशिया मे जैनधर्म का बहुत बड़ा प्रभाव रहा है। जैसे पूर्व एशिया में बौद्ध धर्म फैला, उसी तरह पश्चिम एशिया में जैनधर्म का बहुत बड़ा प्रभाव रहा है। पूर्व एशिया में भी जैनधर्म के एक प्रभावक आचार्य कालक सुवर्णद्वीप गए थे। 'निशीथ-चूर्णि' में इसकी विस्तार से चर्चा है। आचार्य कालक का शिष्य सागर भी अपने गुरु की खोज मे सुवर्णद्वीप गया था। पर खेद इस बात का है कि आज भारतीयता का विलोप होता जा रहा है।

शाह—यह सही बात ह। आज शिक्षा मे भी भारतीयता लुप्त होती जा रही है। मैंने आपका कुछ साहित्य पढ़ा है। मैं तो चाहता हू कि जैन विश्वभारती में बैठकर

काम करू। मेरे सारे बच्चे अपनी-अपनी जगह जमे हुए हैं। सरकार मुझे पेशन देगी ।अब मैं किसी परमार्थ के काम में लगना चाहता हू।

आचार्यश्री—'जैन विश्वभारती मान्य विश्वविद्यालय' का उद्देश्य जैन भारतीय विद्याओं के विकास का है। सस्कृत और प्राकृत भाषाओ मे भारतीय विद्याओं की कुजी निहित है। सस्कृत पर थोड़ा काम हुआ है। हालाकि अभी उसमें भी बहुत काम की गुजाइश है। पर प्राकृत भाषा तो एक प्रकार से अछूती-सी पड़ी है। दक्षिण भारत की पूरी सस्कृति प्राकृत या प्राकृत परिवार से जुड़ी हुई भाषाओं की सस्कृति है। उस पर अभी बहुत कार्य होना बाकी है। हम भारत को ही ले। ज्यादातर लोग दुष्यत-पुत्र भरत के नाम से ही भारत को जोड़ते हैं। यह सस्कृत की देन है। यदि हम प्राकृत ग्रन्थों के आधार पर शोध करें तो पता लगेगा कि यह दुष्यत-पुत्र भरत नही था, ऋषभ-पुत्र भरत था। उसके नाम से हमारे देश का नाम भारत पड़ा। हमारी सस्कृति में ऐसे अनेक तथ्य हैं, जो प्राकृत से जुड़े हुए हैं और हम उनका सही अर्थ खोज नही पा रहे हैं। प्राकृत भारत की पुरातन भाषा है। एक मान्यता के अनुसार सस्कृत भाषा का आविर्भाव प्राकृत भाषा से हुआ है। पर आज तो उल्टा हो रहा है। प्राकृत को भी सस्कृत से पढ़ाया जा रहा है। बल्कि प्राकृत को अग्रेजी से पढ़ाया जा रहा है। क्या अग्रेजी भारतीय आत्मा का स्पर्श कर पाएगी ? पर आज इस बात का कोन बताए ? विद्वान लोगो की भाषा भी अग्रेजी हो गई है। सस्कृत के सेमीनार भी अग्रेजी मं हो रहे हैं। हमारा भाषा को लेकर कोई आग्रह नही है पर हम यदि भारतीयता का विकास करना चाहते हैं, अध्यात्म का विकास करना चाहते हैं तो हमें सस्कृत और प्राकृत पर जोर देना ही पड़ेगा। चूकि प्राकृत विशेष रूप से उपेक्षित रही है। अत जैन विश्वभारती में प्राकृत के अध्ययन की विशेष व्यवस्था है।

शाह—मैंने जैन विश्वभारती के बारे में बहुत सुना है। इसीलिए जैसा कि मैंने पहले कहा था मैं लाडनू रहकर विशेष अध्ययन करना चाहता हू।

आचार्यश्री—यह तो जैन विश्वभारती का सौभाग्य है कि अनेक विद्वान उसके साथ जुड़ना चाहते है। हम भी यही चाहते है कि भारत के चोटी के विद्वानों को जैन विश्वभारती से जोड़ा जाए। जैन विश्वभारती अपना घर है। आवश्यक सुविधाओं की वहा कमी नही है। भीड़-भाड से दूर वह एक प्रदूषण-मुक्त स्थान है।

मै तो अक्सर कहता हू साठ वर्ष के बाद आदमी को अपने परिवार का विस्तार कर लेना चाहिए। एक अवस्था तक आदमी को अपना पारिवारिक दायित्व निभाना

पड़ता है। पर क्या सारा जीवन यों ही विता देना चाहिए। एक अवस्था के बाद मनुष्य को अपने जीवन को सयम की ओर मोड़ना ही चाहिए।

[श्री शाह से और भी अनेक वातें हुईं। आचार्यश्री ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा—'ऐसे लोगो को अवश्य जोड़ना चाहिए।']

आचार्य तुलसी : साहू श्रेयांसप्रसाद तथा कुसुम बहन

[बम्बई के उद्योगपति साहू श्रेयासप्रसादजी जैन तथा कुसुम बहन ने आचार्यश्री तुलसी के दर्शन किए। उस समय वार्ता-प्रसग मे उन्होने अपनी जिज्ञासाए रखकर समाधान प्राप्त किया।]

कुसुम बहन—क्या कारण है कि लोग मदिर में जाते हैं माला फेरते है, क्रियाकाण्ड भी करते हैं और साधु-सतों का उपदेश भी सुनते है। पर उनके जीवन पर कुछ असर नही होता।

आचार्यश्री—हम एक ऐसे सक्रमणकाल मे जी रहे हैं, जिसमें जीवन की पुरानी पद्धतिया ढह रही हैं। नई पद्धतियों का निर्माण नही हो रहा है। पुराने सामाजिक मूल्या का ह्रास हो रहा है। नए सामाजिक मूल्य बन नही पा रहे हैं। इन दोनो के बीच आज का युग चल रहा है। लोगों में एक तरफ पुराने मापदडों की पकड़ और दूसरी तरफ नए मूल्यो का आकर्षण है। इसलिए आज ऐसी स्थिति पैदा हुई है। इस समय वहुत सभलकर चलने की आवश्यकता है। आज नई पीढ़ी को सभालने और उन्हे वैज्ञानिक पद्धति से नए विचार देने की आवश्यकता है। इस विषय में आजकल प्रयत्न बहुत ही कम हो रहा है। जो प्रयत्न होता है उसमे भी अधिकाश अपने पुराने रूढ़ विचारों की सुरक्षा के लिए ही हो रहा है। इसलिए लोगो को खुराक कम मिल रही है। खुराक कम मिलने से लोगों में आस्था का अभाव होता जा रहा है। आस्था के अभाव मे मदिर, मस्जिद, माला और उपदेश का भी विशेष असर नही होता।

श्रेयासजी—आज विद्यार्थी वर्ग बहुत उच्छृखल बनता जा रहा है। आए दिन स्थान-स्थान पर हिंसा और तोड़-फोड़ मूलक उपद्रव हो रहे है। इसका क्या कारण है?

आचार्यश्री—विद्यार्थीयों में स्वय का मौलिक चिन्तन बहुत कम है। उनका

दिमाग कच्चा होता है। उन्हें उत्तेजित करने से व बहुत थोड़े में ही उत्तेजित हो जाते है। राजनीतिक दल उनको अपना हथियार बनाकर अपने स्वार्थों की सिद्धि कर रहे है।

श्रेयासजी—हा, यह तो प्रमुख कारण है। लेकिन आज कोई भी वर्ग बुराई से अछूता नही है।

आचार्यश्री—आज सबसे बुरी बात यह हुई है कि बुराई का प्रतिकार नहीं हो रहा है। स्पष्ट बात कहने में लोग सकुचाते हैं। साधु वर्ग एक ऐसा वर्ग है जो लोगों को स्पष्ट और खरी बात सुना सकता है। लेकिन साधु वर्ग के प्रति लोगों में जैसी श्रद्धा और निष्ठा होनी चाहिए, वह आज नही है। इसका कारण भी स्पष्ट है। साधुओं ने स्वय ही लोगों की अगाध श्रद्धा को खोया है। साधु-वर्ग अपनी जिम्मेवारी को शायद ठीक तरह से निभा नही रहा है। अपने कर्त्तव्य को छोड़कर वह अन्य प्रलोभनों में फसता जा रहा है। साधुओं को अपने मदिर, मठ, सम्पत्ति और चेलों का मूह सता रही है। इस स्थिति में लोगो की श्रद्धा कम हो, यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। जब वे स्वय ही बुराइयों से घिरे हैं तब दूसरों को बुराइयों से बचा सकें, यह कम सभव लगता है। समाज के लोग वैसे ही मौन हैं। ऐसी स्थिति में बुराइया सभी वर्गों में छा रही हैं।

श्रेयासजी—आज ससार में दो विचारधाराए चल रही हैं—

१ आवश्यकताओं को सीमित कर दो, जिससे समाज मे असत्य, हिंसा और भय अपने आप कम हो जाएगे।

२ आवश्यकताओं को बढ़ाओ। आवश्यकताओ की वृद्धि से उत्पादन बढ़ेगा। कल-कारखाने बैठेगे। लोगों को अधिक कार्य मिलेगा। जब मनुष्य के पास अधिक कार्य होगा तो उसकी आय भी बढ़ जाएगी। वह सुख-आराम से जीवन गुजारेगा तब समस्याए भी हल हो जाएगी।

उपर्युक्त दोनो विचारधाराओं में कौन-सी उपयोगी है ?

आचार्यश्री—आवश्यकताओ के अल्पीकरण का मार्ग सब तरह से प्रशस्त है। किन्तु आवश्यकताओं को कम कर दो, इतना कह देने मात्र से समस्या का समाधान नही होगा। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की जो आवश्यकताए हैं, उनकी एक सीमा तक पूर्ति की जा सकती है। ध्यान देने की बात यह हे कि आवश्यकता-पूर्ति के साधन शुद्ध रहें। अनैतिक तरीकों से आवश्यकताओं की पूर्ति नही होनी चाहिए।

दूसरी बात— धन के प्रति मनुष्य की आसक्ति में कमी आए। किसी के पास कितनी ही सपत्ति क्यों न हो, उसके प्रति मूर्छा कम होगी और अर्थार्जन के लिए अशुद्ध साधनों का उपयोग नही होगा तो समस्या उलझेगी नही। कुछ लोगों का अभिमत है कि हृदय-परिवर्तन से सुधार हो सकता है। कुछ लोगों का यह भी विचार है कि सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन से ही सुधार सभव है। मेरे विचार में दोनों ही मान्यताए अधूरी हैं। न तो केवल हृदय-परिवर्तन से कार्य होगा और न केवल व्यवस्था-परिवर्तन से। सुधार तभी सभव है जब दोनों तरफ से प्रयास हो। एक तरफ व्यक्ति के मन में नैतिकता के प्रति निष्ठा जागृत की जाए। दूसरी तरफ व्यवस्थाए भी ऐसी बनाई जाए, जिनसे नैतिक जीवन जीने में कोई बाधा न आए। यदि हमें सुधार करना है तो इन दोनों बातों की तरफ अवश्य ध्यान देना होगा।

श्रेयासजी—आपके साधु-साध्वियों की सख्या कितनी है?

आचार्यश्री—हमारे सघ मे लगभग ६५० साधु-साध्विया वर्तमान मे हैं। वे लगभग १२५ दलों में सारे भारतवर्ष में भ्रमण करते हैं।

श्रेयासजी—क्या कारण है कि आपके साधु-साध्वियों में अनुशासन के प्रति इतना आकर्षण है?

आचार्यश्री—हमारे धर्मसघ के प्रथम आचार्य श्री भिक्षु स्वामी बहुत अनुशासन-प्रिय थे। उन्होने साधु-साध्वियों पर अनुशासन थोपा नही, साधु-साध्वियो ने उसे आत्महित के लिये स्वीकार किया। उस समय धर्मसघ के लिये विभिन्न प्रकार की मर्यादाए बनाईं, जो सघ के लिए तालाब की पाल की तरह उपयोगी बन गईं।

साधु-सघ उन मर्यादाओं से बहुत लाभान्वित हुआ। उन मर्यादाओं का पालन करने से जो प्रतिफल सामने आया, उसको देखकर हमारा हृदय बहुत प्रसन्न होता है। उदाहरणार्थ आप देखते हैं कि आज प्राय साधु-सस्थाओं मे मदिर, तीर्थ, मठ, सम्पत्ति शिष्यो आदि के लिए आए दिन मन-मुटाव होते रहते हैं। नही होने के काम भी होते हैं। लेकिन तेरापथ धर्मसघ मर्यादाओ के कारण सहज ही इन बुराइयों से बचा हुआ है।

आज स्थिति ऐसी है कि पचास चेलो वाले आचार्य को भी रुग्ण और वृद्ध अवस्था में सेवा नही मिल पाती। यहा एक छोटा-सा साधु भी आवश्यकता होने पर अच्छी से अच्छी सेवा प्राप्त करता है। आचार्य स्वय उसकी सेवा का ध्यान रखते हैं। कभी मन मे यह चिन्ता नही होती कि वृद्धावस्था में मेरी सेवा कौन करेगा।

जिस दिन से वह दीक्षित होता है उसकी सारी जिम्मेवारी आचार्य पर आ जाती है। पूरा साधु-संघ आचार्य के चरणों में समर्पित रहकर अपने आपको निश्चिन्त मानता है। इस प्रकार साधु-साध्वियों का यह संस्कार हो गया है कि वे सदा शिष्य बने रहना चाहते हैं, अपने शिष्य बनाना नहीं चाहते।

साधु-साध्वियों में यह धारणा हो गई है कि आचार्य जो आदेश देते हैं, उनके पालन में ही उनका लाभ है। आज्ञा के विरुद्ध कोई भी काम करने से हम लाभान्वित नहीं हो सकते।

इस प्रकार साधु-संघ सहज ही अनुशासित है और मन से अनुशासन में रहना चाहता है।

१३ जनवरी १९६८
बम्बई

आचार्य तुलसी : महालिंगम्

[तमिलनाडु के प्रसिद्ध उद्योगपति एव प्रबुद्ध विचारक श्री महालिंगम् अत्यत श्रद्धालु एव धर्मपरायण व्यक्ति थे। वे आचार्य श्री तुलसी के सान्निध्य मे उपस्थित हुए।]

आचार्यश्री—जैन साधुओं से कभी मिलन हुआ ?

महालिंगम्—यह प्रथम दर्शन का ही सौभाग्य है। आचार्यजी ! दो हजार वर्ष पूर्व जैनधर्म का यहा प्रचुर प्रसार था। फिर एकदम ही क्षीण कैसे हो गया ?

आचार्यश्री—साम्प्रदायिक कारणों से ऐसा हुआ। मध्य काल में शैव धर्मानुयायी राजाओ की कट्टरता के शिकार जैन लोग हो गए।

महालिंगम्—किसी भी सप्रदाय को जीवित रहना और रखना है तो उसकी सुरक्षा के लिये कुछ आयोजन होना ही चाहिए। जैनधर्म की सुरक्षा के लिये आप क्या सोचते ह ?

आचार्यश्री—कोई भी सप्रदाय अपनी क्षमता और सच्चाई के बल पर ही जीवित रह सकता ह। उसको मिथ्या आवरण के द्वारा एक बार आच्छादित किया जा सकता ह। परन्तु समय आते ही वह निरावरण हो जाएगा। किसी भी विचारधारा को सुरक्षित रखने के लिये साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। जैनधर्म का प्राचीन साहित्य प्रचुर मात्रा मं हे। तमिल और कन्नड म जो जैन साहित्य उपलब्ध है वह अलौकिक ह। उसके रहते वह कभी क्षीण नही सकता। जैनधर्म सख्या बल की दृष्टि से भले ही सीमित हो, तात्विक दृष्टि से उसका विकास हुआ है। सारे विश्व में आज सह-अस्तित्व अहिंसा, स्याद्वाद आदि तत्त्वों को जिस विशद रूप से स्वीकृत किया गया हे वह अपने आप म जेनधर्म के तत्त्वों के विकास का ही एक रूप हे। यह सब जेनधर्म के नाम से हो या नही, इससे जेनत्व की भावना निश्चित ही व्यापक बनी है। जेनधर्म न व्यक्ति-स्वतत्रता पर अत्यधिक बल दिया हे। आज विश्व मे जनतत्र व्यक्ति-स्वातत्र्य का ही एक रूप है।

महालिंगम्—व्यक्ति-स्वातत्र्य का तात्पर्य मैं नही समझा।

आचार्यश्री—व्यक्ति-स्वातंत्र्य का तात्पर्य है अपने निर्माण की स्वतंत्रता। व्यक्ति अपनी समस्त प्रवृत्तियों का निर्माता है। अपने सुख-दुख का निर्माता भी वह स्वयं है। अन्य किसी भी शक्ति का इसमें हस्तक्षेप नहीं होता।

महालिंगम्—दक्षिण में जैनधर्म के अनुयायी काफी हैं। वे अधिकतर सूद का कार्य करते हैं। वे मास और अन्य व्यसनों का सेवन नहीं करते, किंतु गरीबों की सामान्य वस्तुए भी गिरवी रख लेते हैं। गिरवी वही रखता है, जिसको धन की अत्यत अपेक्षा होती है। किसी की ऐसी दुर्बलता का फायदा उठाना क्या जैनधर्म के अनुकूल है? क्या इससे अहित नहीं होता?

आचार्यश्री—जैनधर्म का तत्त्वत प्रचार तो हुआ किंतु उसका व्यवहार में आचरण कम हुआ। जैनधर्म में जातिवाद को कोई स्थान नहीं है। किंतु जैन लोगों में अन्य समाजो की तरह ही जातिवाद है। अपरिग्रह या परिग्रह के अल्पीकरण की बात भी जैनधर्म की विशेष देन है। एक समय जैनधर्म जागृत धर्म था। जैनधर्म मे गुणों का वैशिष्ट्य था। जैन लोग गुणो की आराधना करते थे। किंतु आज उसके स्थान पर कुछ और ही हो रहा है। कुछ बद्धमूल धारणाओं के कारण जैन लोग ऐसे कामों में लगे रहे जो युगानुकूल नहीं हैं। इसलिए वें आदर्श और व्यवहार की खाई को पाट नहीं सके। इन सब कारणो से जैनधर्म का ह्रास हुआ है। कुछ कारणों से बडे-बडे राजाओ ने धर्म-परिवर्तन कर लिया। कर्नाटक का प्राचीन इतिहास इस बात का साक्षी है। बशेश्वर एक मत्री थे।उन्होने योक्ति ढग से शैव मत का प्रचार किया जो यहा लिंगायत के रूप मे प्रसिद्ध है। उसके आधार पर मे जैन-सस्कार आज भी जीवित है।

महालिंगम्—जैनधर्म एक है फिर इसके अलग-अलग भेद क्यो हुए?

आचार्यश्री—विचार-स्वतंत्रता मे विश्वास रखनेवालों के लिये सम्प्रदायों का विस्तार इतना बुरा नहीं होता। लेकिन विचार-भेद जब मनभेद का रूप ले लेता है तब वह बुरा हो जाता है। जिस प्रकार एक ही बाजार मे एक ही प्रकार का वस्त्र अलग-अलग दुकानो मे बिकता है, किन्तु आपस में तकरार नहीं होती। उसी प्रकार अपने विचारों को हर कोई सप्रदाय स्वतत्रतापूर्वक रख सकता है।

महालिंगम्—छोटे-छोटे सप्रदायो मे एकता का कुछ विकास हुआ है। किंतु नास्तिकता बड़े जोरो से पनप रही है। आज आम जनता मदिर म पूजा करके अथवा गुरु के सन्निकट दो क्षण अष्टाग वदन कर अपने समस्त पापो को धो लेने का विश्वास रखती है।

आचार्यश्री—तब ही तो मैं कहता हू कि अधार्मिकों और नास्तिको की तुलनायें तथाकथित धार्मिकों से धर्म और भगवान का अहित ज्यादा हुआ है। आज नास्तिकों को आस्तिक बनाने से पहले आस्तिको को सच्चा आस्तिक बनाना है।

महालिंगम्—जैन लोग तीर्थकरो की प्रतिमाए रखते हैं। वे उनकी पूजा क्यो करते हैं ?

आचार्यश्री—प्रतिमाओ मे विश्वास रखनेवाले जैन ऐसा करते हैं, किंतु तेरापथ मे ऐसी परपरा नही ह।

महालिंगम्—आप लोग भगवान की पूजा कैसे करते हें ?

आचायश्री—उनके गुणो का स्मरण कर भगवान की भावपूजा कर लेते हे।

महालिंगम्—यह ज्ञानमार्ग है। पहुचे हुए लोगो के लिये उपयोगी है। साधारण जनता के लिये आप क्या कहते है ?

आचार्यश्री—साधारण जनता के लिये हम व्यसन-मुक्ति और सम्यग् आचरण की बात बताते हे। केवल ऊपरी पूजा से कोई महान नही बनता हे। महान वही बनता है, जो भगवान के गुणो को स्वीकार करता है। जनसाधारण को उपासना के लिए आलम्बन की अपेक्षा रहती हे। वह आलम्बन मूर्तिपूजा ही हो, यह आवश्यक नही है। मूर्तिपूजा के बिना भी करोड़ो लोग अपनी उपासना और साधना सम्यग् रूप से कर रहे है।

खैर। यह अपने विश्वास पर आधारित हे। मैं तो दक्षिण मे मानवता के विकास के लिये आया हू। अणुव्रत मानवता के विकास का उत्तम-मार्ग है।

महालिंगम्—इसमे दो मत है ही नही। समाज में चरित्र का विकास होना अत्यधिक आवश्यक है।

आचार्य तुलसी : सेठ श्री गोविन्ददास

[सेठ गोविन्ददासजी हिन्दी के प्रबल समर्थक, कुशल वक्ता, स्वतन्त्रता सेनानी, मजे हुए लेखक और उच्च घराने के प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। वे लम्बे समय तक लोकसभा और राज्यसभा के सदस्य रहे। आचार्यश्री तुलसी के कर्तृत्व से वे बहुत प्रभावित थे। उन्होंने अनेक बार आचार्यश्री से भेंट की।]

सेठ—मेरी आपके प्रति पूज्य भावना है। आपके अणुव्रत आन्दोलन ने देश में बहुत काम किया है। उस पर मेरी श्रद्धा है।

आचार्यश्री—यह प्रसन्नता है कि देश में अणुव्रत आन्दोलन कुछ कर रहा है।

सेठ—यहा आपका प्रवास कब तक रहेगा?

आचार्यश्री—अधिक नही, क्योकि छोटे-छोटे गावो मे जाना है।

सेठ—बहुत ठीक है। गावो मे आप लोगों को अवश्य जाना चाहिए। वहा की भूमि उर्वरा होती है।

सेवाभावी मुनिश्री—गावों के लोग आचार्यश्री के अणुव्रत आन्दोलन से बहुत प्रभावित है। बहुत सारे लोगो ने पूर्ण अणुव्रत एव प्रवेशक अणुव्रत के नियम भी अपनाए है।

सेठ—कितना अच्छा हो कि सारा देश अणुव्रती बन जाए। आप एक बार फिर दिल्ली आए और वहा जमकर काम करें।

आचार्यश्री—हा वह एक ऐसा केन्द्र है जहा से सहज ही सब जगह अणुव्रत के विचार फैल सकते है। दिल्ली मे अणुव्रत विहार की योजना बन रही है। उसकी क्रियान्विति में आपका क्या योग रहेगा?

सेठ—जैसा आप चाहेंगे।

आचार्यश्री—अभी हमारे यहा दो प्रवृत्तिया चालू हैं—अणुव्रत प्रचार और आगम साहित्य। आगम साहित्य का कार्य अभी राजनगर में मुनि नथमलजी के पास में हो रहा है। समय हो तो आप उसे अवश्य देखे और अपने सुझाव भी दें।

सेठ—मैं समय निकाल कर वहा अवश्य जाऊगा। आचार्यश्री ! एक बात बताइए कि इश्वर के अस्तित्व का अकाट्य प्रमाण क्या है ?

आचार्यश्री—आत्मा का अस्तित्व ही ईश्वर के अस्तित्व का अकाट्य प्रमाण है। आत्मा मे भिन्न ईश्वर के अस्तित्व का कोई प्रत्यक्ष या असदिग्ध प्रमाण प्राप्त हो तो उसके लिये मैं स्वय जिज्ञासु हू।

मुझे जो सत्य मिला है उसके अनुसार मैं इतना ही कह सकता हू कि आत्मा की विकासशील नही, किंतु विकास के चरम बिन्दु पर पहुची हुई अवस्था ही ईश्वर है। उसके अस्तित्व का प्रश्न आत्मा के अस्तित्व के प्रश्न से पृथक् नहीं है।

सेठ—आत्मा का क्या प्रमाण है ? यदि यह मान लिया जाए कि जड़-भूतों के सम्मिलन से ही चेतना की उत्पत्ति हो जाती है तो शरीर के नष्ट होने पर चेतन भी लुप्त हो जाता है। उसका कोई अस्तित्व नही रहता। इसके विरोध म क्या तर्क है ?

आचार्यश्री—आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि के लिए भी प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करना कोई सीधा कार्य नही है। क्योकि आत्मा एक अमूर्त तत्त्व है। मूर्त अस्तित्व की सिद्धि के लिये उपलब्ध प्रमाण अमूर्त को सिद्ध कर सकते हैं, यह बात एक आग्रही व्यक्ति मान सकता है। किंतु सत्य-शोधक इसे स्वीकार नही कर सकता। मैं आगम प्रमाण की बात नहीं कर रहा हू। क्योंकि वह वैयक्तिक विश्वास का क्षेत्र है। फिर भी ईश्वर के अस्तित्व की अपेक्षा हम आत्मा के अस्तित्व से अधिक सबद्ध एव निकट हैं। इसलिए आत्मप्रत्यय के प्रगाढ़ प्रकाश में जो देखता है वह इस भाषा मे बोलता है—'मैं हू' अपने होने की प्रतीति ही आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करती है। 'मै हू' इसका बाधक और मैं नही हू' इसका साधक कोई भी प्रमाण प्राप्त नही है। एक अनात्मवादी भी यह तर्क प्रस्तुत कर सकता है—'मैं हू'। ऐसा तर्क प्रस्तुत करने वाला तर्क-काल में आत्मा की सत्ता को अस्वीकृत करता हुआ भी उसी मन्तर को स्वीकृति देता है। क्योकि अचेतन या अचेतन तत्त्वां के योग से निष्पन्न कोई भी इस भाषा मे नही बाल सकता।

आपके प्रश्न मे जो तर्क प्रस्तुत है *वह किसी प्रमाण से समर्थित नहीं है। यह* उसके विरोध में मात्र तर्क ही नही, किंतु उसके मूल पर प्रहार है।

सेठ—यदि पुनर्जन्म होता है तो उसका क्या प्रमाण है ?

आचार्यश्री—आत्मा का होना ही पुनर्जन्म का प्रमाण है। इस प्रश्न का कोई स्वतत्र प्रमाण नही है। पूर्वजन्म की स्मृति सस्कार तथा क्रिया की प्रतिक्रिया—ये

पुनर्जन्म की पुष्टि के व्यावहारिक प्रमाण हैं।

सेठ—पुनर्जन्म का आधार क्या कर्म है?

आचार्यश्री—पुनर्जन्म का ही क्या, जन्म मात्र का हेतु कर्म है। जो कर्म-मुक्त होता है, वह जन्म-मरण से भी मुक्त हो जाता है।

सेठ—श्री अरविन्द घोष का कथन है कि मनुष्य योनि प्राप्त होने के बाद आत्मा अन्य योनियों में नही जाती। परन्तु हमारे प्राचीन सिद्धान्तों के अनुसार यह बात सही नही है। इस सबध में आपकी क्या राय है?

आचार्यश्री—श्री अरविन्द घोष ने कहा उसमें सच्चाई नही है, ऐसा मैं नही मानता। सम्यग्-दृष्टि प्राप्त होने के बाद मनुष्य का अपक्रमण नही होता। वह उससे निम्न योनि मे नही जाता। किंतु जिसे सम्यग्-दृष्टि प्राप्त नही होती, उसके लिए ऐसा नियम नही है। इसलिए इस कथन में मैं विभज्यवाद की मर्यादा से सच्चाई देखता हू।

सेठ—कर्म-सिद्धात क्या है?

आचार्यश्री—कर्म-सिद्धात क्रिया की प्रतिक्रिया चेतन व अचेतन के योग से रासायनिक प्रक्रिया या स्थूल प्रवृत्ति द्वारा सूक्ष्म अणुओं की सक्रियता का सिद्धात है। यह सूक्ष्म होने पर भी व्यावहारिक व बुद्धिगम्य है।

सेठ—यह सृष्टि स्वयम्भू है या किसी के द्वारा निर्मित?

आचार्यश्री—जो मूल तत्त्व है, वे स्वयभू हैं। उनके जो रूपान्तरण है, वे निर्मित भी होते है। निर्मात्री शक्ति कोई एक नही है। हर प्राणी निर्माता है। विविधता चेतन और अचेतन दोनो के योग से है। दुनिया मे जितना दृश्य है वह सारा का सारा या तो जीव-युक्त शरीर है या जीव-मुक्त शरीर। अत रूपान्तरण का कर्ता जीव है इस प्रतिपत्ति में मुझे स्वाभाविकता प्रतीत होती है।

सेठ—सत्य क्या है?

आचार्यश्री—सक्षेप में सत्य का अर्थ द्रव्य या एकत्व रूप है और विस्तार में सत्य का अर्थ पर्याय या नानात्व है। विश्व की भेदाभेदात्मकता सत्य है। यह ज्ञेय की व्याख्या है। उपादेय दृष्टि से सत्य है आत्मा की अनावृत अवस्थिति।

सेठ—सत्य को कैसे प्राप्त किया जा सकता है?

आचार्यश्री—सत्य प्राप्ति के दो साधन हे—नए सस्कारो का निरोध और सचित सस्कारों का निरसन। सत्य की उपलब्धि में बाधक मूढ़ता है। मूढ़ता की दो भूमिकाए है—

- दृष्टि की मूढता
- चरित्र की मूढता।

जैसे-जसे ऋजुभाव और अनाग्रह भाव विकसित होता है, सत्य का मार्ग प्रशस्त होता जाता ह। जैसे-जैसे मूढ़ता निरस्त होती है, वैसे-वैसे सत्य उपलब्ध होता है।

सेठ—जीवन क्या है ? जीवन का सत्य के साथ क्या सबध है ?

आचार्यश्री—शरीर-बद्ध आत्मा के प्रवहमान अस्तित्व की एक धारा जीवन है। पर्याय या परिवर्तन सत्य का एक अश है। जीवन पर्यायात्मक सत्य है। वह वर्तमान मे सत् है किंतु भावी पर्याय के उदित होने पर असत् बन जाता है।

सेठ—क्या राग-द्वेष जीवन के अभिन्न अग हैं। यदि नही तो उनकी उत्पत्ति कहा से होती है ? और ये जीवन को कैसे इतना प्रभावित करते हैं ?

आचार्यश्री—राग-द्वेष जीवन के साथ जुड़े हुए हैं। जीवन और मृत्यु का प्रवाह तब तक अविच्छिन्न रहता है, जब तक राग-द्वेष विच्छिन्न नहीं होते। ये जीवन के अतरग मे इतने गहरे पेठे हुए हैं कि इनसे जीवन प्रभावित ही नही बहुत दूर तक सचालित होता हे। इनकी आग अतरग में सदा जलती रहती है। बाह्य निमित मिलने पर वह अभिव्यक्त हो जाती हे। इसलिए हमारी यह भाषा अधिक सगत होगी कि राग-द्वेष की उत्पत्ति नही, किंतु अभिव्यक्ति होती है।

सेठ—क्या राग-द्वेष के निराकरण का प्रारभ किया जा सकता हे ? यदि हा तो किस प्रकार ?

आचार्यश्री—राग-द्वेष के निराकरण का प्रारभ किया जा सकता है। जिसका प्रारभ हो चुकता है उसकी परिसमाप्ति भी हो सकती है। इनके निराकरण का प्रारभ सम्यग्-दर्शन से होता है। जब तक राग-द्वेष को नही देखते, तब तक ये हम पर अपना आधिपत्य जमाय बैठे रहते हैं। जिस दिन हम देख लेते हैं कि ये हमारे नही है केवल हम पर अपना प्रभुत्व जमाए बैठे हैं उसी दिन से इनके निराकरण का क्रम प्रारम्भ हो जाता है। जैसे जैसे दर्शन-शक्ति विकसित होती जाती हे वेसे-वैसे चरित्र का बल बढ़ता और इनका निराकरण होता जाता है और एक दिन यह निराकरण अपनी अन्तिम स्थिति पर पहुच जाता है।

सेठ—क्या हमारे नाते-रिश्ते चिरस्थायी हैं ? क्या इनका सबध हमारे भूत या भविष्यकालीन जीवन से ह।

आचार्यश्री—किसी के साथ हमारा सबध हे, इसका अर्थ ही यह होता है कि

वह समय की अवधि से मुक्त नही है। अवधि दीर्घकालीन भी हो सकती है और अल्पकालिन भी। हार्दिक सबध का सस्कार यदि पचास-साठ वर्ष तक टिक सकता है तो ५००-६०० वर्षों तक क्यों नही टिक सकता? वैज्ञानिको व चिन्तकों का सूक्ष्म की शक्ति में विश्वास होने लगा है। अब शीघ्र ही इस रहस्य की ओर उनका ध्यान जानेवाला है कि हमारी प्रवृत्तियों का सूत्रधार स्थूल शरीर नहीं, किंतु सूक्ष्म शरीर है। उसमें सुदूर भूत और भविष्य की प्रवृत्तियो को वहन करने की क्षमता है।

सेठ—अच्छे और बुरे, पुण्य और पाप की व्याख्या और पहचान क्या है? क्या वे हमारे भावी जीवन को प्रभावित करते हैं? यदि हा तो किस प्रकार?

आचार्यश्री—अच्छे और बुरे, पुण्य और पाप की व्याख्या या पहचान निरपेक्ष दृष्टि से नही की जा सकती। हमारे जीवन की जितनी भूमिकाए हैं, उतनी ही इनकी व्याख्या के सूत्र और पहचान के चक्षु हैं। हम किसी निश्चित बिन्दु पर खड़े होकर ही जानने की चेष्टा कर सकते है कि अच्छा क्या है? और बुरा क्या है? आपका अच्छे और बुरे की व्याख्या का आशय कर्मशास्त्रीय हो तो मैं कह सकता हू कि आत्मा के साथ विजातीय तत्त्वो का इष्ट योग होता है वह अच्छा या पुण्य है। इसी प्रकार आत्मा के साथ अनिष्ट योग होता है वह बुरा या पाप है। यह अच्छे और बुरे की व्याख्या हे। वर्तमान से भविष्य प्रभावित होता है। इसलिए भविष्य पूर्व से प्रभावित हो सकता हे किंतु सर्वथा नियत्रित नही। जैसे अतीत की घटनाओं से वर्तमान की प्रवृत्ति प्रभावित होती है, वेसे ही पुण्य-पाप से हर प्रवृत्ति प्रभावित होती है। यह प्रक्रिया स्थूल जगत् से हटकर सूक्ष्म जगत् के स्तर पर होती है, इसलिए अधिक प्रभावशाली होती है।

सेठ—जीवन मे शाति किस प्रकार प्राप्त की जाए? इसके लिये क्या कोई साधना हे?

आचार्यश्री—सत्य को उपलब्ध किए बिना शाति उपलब्ध नही हो सकती। उसकी साधना भी है। एकत्व भावना का अभ्यास ओर आत्मा के मौलिक गुण ज्ञान, दर्शन एव चारित्र का परिपूर्ण विकास ही शान्ति का—मात्र साधन है।

सेठ—जीवन का उद्देश्य क्या है?

आचार्यश्री—सब व्यक्तियों के जीवन का उद्देश्य एक समान नही होता। वह पहले से ही बना-बनाया या घड़ा-घड़ाया होता है ऐसा मैं नही मानता।

यदि इस प्रश्न का आशय यह है कि जीवन का उद्देश्य क्या होना चाहिए तो मैं कह सकता हू कि उद्देश्यों की लबी सूची में सबसे प्रथम और सबसे बड़ा

सर्वाधिक अनिवार्य उद्देश्य होना चाहिए अपने आपकी उपलब्धि। जो अस्तित्व अनेक आवरणो से आवृत है, उसका अनावृतीकरण या परोक्षानुभूति की भूमिका से हटकर प्रत्यक्ष की भूमिका पर अवस्थिति।

सेठ—क्या मृत्यु का समय निश्चित रहता है? क्या समय से पहले व्यक्ति की मृत्यु नही होती?

आचार्यश्री—साधारणतया जीवन की अवधि निश्चित होती है। अवधि की समाप्ति का अर्थ है मृत्यु। किंतु आकस्मिक दुर्घटना आदि निमित्तों से उस अवधि का परिवर्तन भी हो सकता है। यह आकस्मिक मृत्यु ही अकाल मृत्यु है। जीवन की अवधि पूर्ण होने पर जो मृत्यु होती है, वह काल-मृत्यु है।

सेठ—यदि यह सत्य है कि मृत्यु समय पर ही होती है तो क्या आकस्मिक दुर्घटनाए भी इसी सत्य के निमित्त होती हैं?

आचार्यश्री—इस प्रश्न का समाधान पूर्व प्रश्न में किया जा चुका है।

सेठ—सद्‌गुरु की प्राप्ति के लिये क्या किया जाए?

आचार्यश्री—सद्‌गुरु की प्राप्ति उसी व्यक्ति को हो सकती है जो हीन-भावना से उतना ही मुक्त है, जितना कि अहकार भावना से।अथवा अहकार की भावना से उतना ही मुक्त है जितना कि हीन-भावना से सद्‌गुरु की प्राप्ति के लिये हीनता के विलयन और अहता के विसर्जन की पद्धति का आलम्बन लेना मुझे इष्ट लगता है।

सेठ—'सशयात्मा विनश्यति'— इस उक्ति के अनुसार आजकल के पढ़े लिखे लोगों का इस प्रकार के ऊहापोह के कारण क्या नाश ही होगा?

आचार्यश्री—सशय के दो अर्थ हैं—जिज्ञासा और सदेह। जिज्ञासा से विकास और सदेह से विनाश होता है। आधुनिक लोगो में जिज्ञासा नही, केवल सदेह होता है, यह क्यों माना जाए? यदि सशय उत्तरोत्तर ज्ञान की वृद्धि के लिये हो तो '**सशयात्मा विनश्यति**' के स्थान पर '**न सशयमनारुह्य, नरो भद्राणि पश्यति**' यह कहा जा सकता है।

सेठ—मोक्ष का स्वरूप क्या है? वह कैसे प्राप्त होता है?

आचार्यश्री—मोक्ष अर्थात् बधन से मुक्ति। आत्मा की दो अवस्थाए होती है—बद्ध और मुक्त। मुक्त अवस्था जिसमे सब प्रकार के बधन विच्छिन्न हो जाते हैं, वह मोक्ष है। आत्म-स्वरूप का उदय ही मोक्ष का स्वरूप है। ईश्वर, मोक्ष या आत्मा की मुक्त अवस्था—तीनो एकार्थक हैं। मोक्ष की प्राप्ति का उपाय है आत्मा के गुणों—ज्ञान आनन्द, शक्ति और पवित्रता में रमण तथा विजातीय गुणों—अज्ञान और विकृति से विरमण।

सेठ—मोक्ष के बाद की क्या स्थिति है ? क्या उसके बाद भी जन्म है ?

आचार्यश्री—आत्मा की जो स्वाभाविक स्थिति है वही मोक्ष के बाद की स्थिति है। उस स्थिति में शरीर और शरीर-निष्पन्न धर्म नहीं होते, केवल आत्म-धर्म होते हैं। मोक्ष के बाद आत्मा के साथ अनात्मा नहीं होती, जीव के साथ अजीव नहीं होता और चेतन के साथ अचेतन नहीं होता। उस स्थिति में आनन्द, ज्ञान और चैतन्य इतना प्रबुद्ध या अनावृत हो जाता है कि उसमें कोई बाधा उपस्थित नहीं होती।

सेठ—मृत्यु का समय यदि पूर्व निश्चित है तो नियति का यह नियम मात्र मनुष्य के लिए है या प्राणीमात्र और जीवमात्र के लिए भी है ?

आचार्यश्री—मृत्यु का नियम जैसे मनुष्य के लिए है, वैसे ही अन्य प्राणियों के लिए भी है। कुछ आपवादिक स्थितियों को छोड़कर सामान्यतः यह नियम सबके लिए समान है।

आचार्य तुलसी : पत्रकार-वर्ग

[प्रात. दस बजे का समय आचार्यश्री के सान्निध्य मे पत्रकार-परिषद का आयोजन। उसमे केरल के मलयालम पत्रों के अतिरिक्त इण्डियन एक्सप्रेस, हिन्दू आदि पत्रों के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे।]

आचार्यश्री—दो दिन के पश्चात् हमारी केरल-यात्रा सपन्न होने जा रही है। केरल की जनता ने हमारी पदयात्रा का हृदय से स्वागत किया है। यहा की सरकार, विद्वद्वर्ग और पत्रकारों ने यात्रासघ को बहुत आदर दिया है। यहा के पत्रो, रेडियो आदि ने अणुव्रत के विचार को बड़ी उदारता से प्रसारित किया है। आप लोगों ने इस अकिंचन का सम्मान कर अपने कर्त्तव्य का जागरूकता से निर्वहन किया है।

पत्रकार—क्या केरल में आप पहली बार आए हैं? आपकी यात्रा का उद्देश्य क्या है?

आचार्यश्री—हा मैं यहा प्रथम बार आया हू। यात्रा के उद्देश्य को मैंने अनेक बार स्पष्ट किया है। मेरी यात्रा का उद्देश्य है अच्छे मनुष्यों का निर्माण। आज राष्ट्र की सबसे बड़ी यही कठिनाई है। अच्छे मनुष्यों की कमी दिखाई दे रही है।

पत्रकार—अच्छे मनुष्य की आप क्या परिभाषा करते हैं?

आचार्यश्री—अणुव्रत का आचरण करनेवाला आदमी अच्छा होता है। अणुव्रत के ग्यारह व्रतों को पढ़ने से अच्छे आदमी की कल्पना स्पष्ट हो जाएगी।

पत्रकार—भारत मं अच्छे आदमियों की कमी के क्या कारण हैं?

आचार्यश्री—आज का भारत दुहरी स्थिति से गुजर रहा है। वह अनुकरण अमेरिका का कर रहा है और जी रहा है भारत मे। अमेरिका के समान यहा भौतिक साधन उपलब्ध नही हैं। फिर भी उनको प्राप्त करने के लिए येन केन प्रकारेण धन बटोरने में जुटा है। उसके परिणामस्वरूप हिंसा, राग-द्वेष माया, झूठ आदि प्रस्फुटित हो रहे है। भारतीय लोगा का दिमाग अमेरिका मे घूमता है और शरीर भारत में भटक रहा है। इस स्थिति से प्रजा को उबारना आवश्यक है।

पत्रकार—प्राचीन काल में क्या ऐसी स्थिति नहीं थी ? क्या बुराई अभी अधिक है ?

आचार्यश्री—मैं जहा तक जानता हू , ऐसी स्थिति पहले कभी नहीं आई थी। दो हजार वर्ष पूर्व और उत्तरवर्ती साहित्य में इस प्रकार के भ्रष्टाचार का कहीं उल्लेख नही है। इसका मुख्य कारण पदार्थ के प्रति आकर्षण और पथ-प्रदर्शक लोगों का नैतिक अध पतन है। आम आदमी बड़े लोगों का अनुकरण करता है—

यद् यदाचरति श्रेष्ठ तत् तदेवेतरो जन ।
स यत् प्रमाणीकुरुते, लोकस्तदनुवर्तते ॥

श्रेष्ठ पुरुष जो आचरण करते हैं, उनका ही सब अनुकरण करते हैं। ... कहलाने वाले जनतत्र के मूल आधार वोट का भी क्रय करते हैं। इससे ... और क्या होगा ? विधानसभा एव ससद के सदस्य भी खरीदे और बेचे जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों से क्या राष्ट्र की भलाई की आशा की जा सकती है ? भारत जैसे धर्मप्रधान देश के लिए ऐसी बात कहते मुझे सकोच हो रहा है। किंतु सच्चाई को छुपाना भी नही चाहिए। आज राष्ट्र में हिंसा, तोड़-फोड़ व अराजकता की भावना फैल रही है उसे बदलना होगा। इससे कभी भी राष्ट्र का हित नही हो सकता।

पत्रकार—पुराने युग की अनेक बुराइया—जातिवाद, अस्पृश्यता आदि आज नही है। तब बुराई अधिक कैसे हो गई ?

आचार्यश्री—पुराने युग की कुछ बुराइया कम अवश्य हुई हैं, किंतु नए प्रकार की अनेक बुराइया प्रकट हो गई हैं। क्या आप समझते हैं कि जातिवाद पूरी तरह मिट गया। कानून से उसे मिटा दिया गया। किंतु हृदय से वह कितना मिटा है यह तो आप सब जानते ही हैं।

पत्रकार—अस्पृश्यता को आप क्या समझते हैं ?

आचार्यश्री—अस्पृश्यता हिंसा है।

पत्रकार—श्री शकराचार्य ने अस्पृश्यता को शास्त्र-सम्मत बताया है। उसका श्री करपात्रीजी ने समर्थन किया है। इस सबध में आपके क्या विचार हैं ?

आचार्यश्री—अस्पृश्यता और जातिवाद को जैनधर्म सदैव अतात्त्विक बताता रहा है। किसी को अस्पृश्य मानना हिंसा है मानवता का कलक है। मेरा अस्पृश्यता में विश्वास नही है। श्री शकराचार्यजी की मान्यता का श्री करपात्रीजी ने समर्थन किया है लेकिन मुझे तो कोई अवतार भी आकर कहे तो भी मैं अस्पृश्यता का समर्थन

करने को तैयार नही हू। उन्होने क्या और कैसे कहा, मुझे पूरा मालूम नही। पत्रों में जरूर पढ़ा है। यदि वह सत्य है तो मेरी दृष्टि में किसी धर्माचार्य को ऐसा नही कहना चाहिए। क्याकि अस्पृश्यता न केवल भारतीय सविधान के खिलाफ है, बल्कि मानवता के भी ख़िलाफ़ है।

पत्रकार—वर्ण व्यवस्था को श्री मोलकर महोदय ने भी माना है। क्या उसमे भी आपका विश्वास नहीं है ?

आचार्यश्री—वर्ण व्यवस्था केवल कार्य की दृष्टि से विभाजित की हुई व्यवस्था है। कोई जन्म से ब्राह्मण, वैश्य और शुद्र नहीं हो जाता। एक ब्राह्मण कुल में जन्म लेने वाला चडाल हो सकता है। एक चडाल के कुल में जन्म लेने वाला ब्राह्मण हो सकता है। इसी प्रकार अन्य व्यवस्थाए है। वर्तमान में जो जिस कुल मे उत्पन्न हो गया, वह वैसा ही बन गया। ऐसी वर्ण-व्यवस्था में जैनधर्म का कभी भी विश्वास नही था और न अब है।

पत्रकार—क्या कहीं ऐसा उदाहरण मिलता है।

आचार्यश्री—हरिकेशबल एक चडाल कुल में उत्पन्न हुए थे। उन्होने अपनी साधना से पूज्यत्व को प्राप्त किया। वे श्रेष्ठ बन गए। जैनधर्म जातिवाद की अतात्विकता म सदैव विश्वास करता रहा है।

पत्रकार—जैनधर्म पहले विभिन्न क्षेत्रों में फैला हुआ था। उसको प्रभावहीन के लिए हिन्दुओं ने अनेक सघर्ष किए। क्या उस सबध में आप कुछ कहना चाहते है ?

आचार्यश्री—साप्रदायिकता के विष ने भारत का जितना अहित किया है, उतना विदेशी आक्रमणकारियों ने भी नही किया। आज उस सबध मे क्या कहू। इतना ही कहा जा सकता है कि उससे हम धार्मिक सहिष्णुता का पाठ पढ़े।

पत्रकार—जातिवाद एक बार दब गया था। अब वह दुबारा उभरा है। क्या वह *पुनर्जीवित* हो सकता है ?

आचार्यश्री— आज जनमत जाग्रत हो गया है। उसका ही यह सब परिणाम है कि एक साथ चारों ओर से आवाज उठ खड़ी हुई१। जनता का अब इन बेबुनियादी बातो से विश्वास उठ गया है। ऐसे युग म जातिवाद को जीवित रखना मुश्किल लगता है। उसके लिए आज प्रयत्न करने का मतलब है लाश को जिन्दा करने का प्रयत्न।

पत्रकार—प्राचीन काल में क्या ऐसी स्थिति नही थी ? क्या बुराई अभी अधिक है ?

आचार्यश्री—मैं जहा तक जानता हू , ऐसी स्थिति पहले कभी नही आई थी। दो हजार वर्ष पूर्व और उत्तरवर्ती साहित्य में इस प्रकार के भ्रष्टाचार का कही उल्लेख नही है। इसका मुख्य कारण पदार्थ के प्रति आकर्षण और पथ-प्रदर्शक लोगों का नैतिक अध पतन है। आम आदमी बड़े लोगों का अनुकरण करता है—

यद् यदाचरति श्रेष्ठ तत् तदेवेतरो जन ।
स यत् प्रमाणीकुरुते, लोकस्तदनुवर्तते ॥

श्रेष्ठ पुरुष जो आचरण करते हैं, उनका ही सब अनुकरण करते हैं। आज नेता कहलाने वाले जनतत्र के मूल आधार वोट का भी क्रय करते हैं। इससे बड़ा पतन और क्या होगा ? विधानसभा एव ससद के सदस्य भी खरीदे और बेचे जाते हैं। ऐसे व्यक्तियो से क्या राष्ट्र की भलाई की आशा की जा सकती है ? भारत जैसे धर्मप्रधान देश के लिए ऐसी बात कहते मुझे सकोच हो रहा है। किंतु सच्चाई को छुपाना भी नही चाहिए।आज राष्ट्र में हिंसा तोड़-फोड़ व अराजकता की भावना फैल रही है उसे बदलना होगा। इससे कभी भी राष्ट्र का हित नही हो सकता।

पत्रकार—पुराने युग की अनेक बुराइया—जातिवाद, अस्पृश्यता आदि आज नही है। तब बुराई अधिक कैसे हो गई ?

आचार्यश्री—पुराने युग की कुछ बुराइया कम अवश्य हुई हैं, किंतु नए प्रकार की अनेक बुराइया प्रकट हो गइ हैं। क्या आप समझते है कि जातिवाद पूरी तरह मिट गया। कानून से उसे मिटा दिया गया। किंतु हृदय से वह कितना मिटा है, यह तो आप सब जानते ही हैं।

पत्रकार—अस्पृश्यता को आप क्या समझते हैं ?

आचार्यश्री—अस्पृश्यता हिंसा है।

पत्रकार—श्री शकराचार्य ने अस्पृश्यता को शास्त्र-सम्मत बताया है। उसका श्री करपात्रीजी ने समर्थन किया है। इस सबध में आपके क्या विचार हैं ?

आचार्यश्री—अस्पृश्यता और जातिवाद को जैनधर्म सदैव अतात्त्विक बताता रहा है। किसी को अस्पृश्य मानना हिंसा है मानवता का कलक है। मेरा अस्पृश्यता में विश्वास नही है। श्री शकराचार्यजी की मान्यता का श्री करपात्रीजी ने समर्थन किया हो लेकिन मुझे तो कोई अवतार भी आकर कहे तो भी मैं अस्पृश्यता का समर्थन

करने को तैयार नही हू । उन्होने क्या और कैसे कहा, मुझे पूरा मालूम नही । पत्रों में जरूर पढ़ा है । यदि वह सत्य है तो मेरी दृष्टि में किसी धर्माचार्य को ऐसा नही कहना चाहिए । क्योंकि अस्पृश्यता न केवल भारतीय सविधान के खिलाफ है, बल्कि मानवता के भी खिलाफ है ।

पत्रकार—वर्ण व्यवस्था को श्री मोलकर महोदय ने भी माना है । क्या उसमें भी आपका विश्वास नही है ?

आचार्यश्री—वर्ण व्यवस्था केवल कार्य की दृष्टि से विभाजित की हुई व्यवस्था है । कोई जन्म से ब्राह्मण, वेश्य और शुद्र नही हो जाता । एक ब्राह्मण कुल मे जन्म लेने वाला चडाल हो सकता है । एक चडाल के कुल में जन्म लेने वाला ब्राह्मण हो सकता है । इसी प्रकार अन्य व्यवस्थाए है । वर्तमान मे जो जिस कुल मे उत्पन्न हो गया वह वेसा ही बन गया । ऐसी वण-व्यवस्था मे जैनधर्म का कभी भी विश्वास नही था और न अब है ।

पत्रकार—क्या कही ऐसा उदाहरण मिलता हे ।

आचार्यश्री—हरिकेशबल एक चडाल कुल में उत्पन्न हुए थे । उन्होने अपनी साधना से पूज्यत्व को प्राप्त किया । वे श्रेष्ठ बन गए । जैनधर्म जातिवाद की अतात्विकता म सदव विश्वास करता रहा हे ।

पत्रकार—जेनधर्म पहले विभिन्न क्षेत्रों मे फेला हुआ था । उसको प्रभावहीन के लिए हिन्दुओं ने अनेक सघर्ष किए । क्या उस सबध में आप कुछ कहना चाहते है ?

आचार्यश्री—साप्रदायिकता के विष ने भारत का जितना अहित किया है उतना विदेशी आक्रमणकारियो ने भी नही किया । आज उस सबध मे क्या कहू । इतना ही कहा जा सकता है कि उससे हम धार्मिक सहिष्णुता का पाठ पढ़े ।

पत्रकार—जातिवाद एक बार दब गया था । अब वह दुबारा उभरा हे । क्या वह पुनर्जीवित हो सकता है ?

आचार्यश्री— आज जनमत जाग्रत हो गया है । उसका ही यह सब परिणाम है कि एक साथ चारो ओर से आवाज उठ खड़ी हुई१ । जनता का अब इन बेबुनियादी बातों से विश्वास उठ गया है । ऐसे युग में जातिवाद को जीवित रखना मुश्किल लगता है । उसके लिए आज प्रयत्न करने का मतलब है लाश को जिन्दा करने का प्रयत्न ।

पत्रकार— हमारे पास नवीनतम साधन नही है। इसलिए अमेरिका, रूस आदि का अनुकरण न करे तो क्या करें ?

आचार्यश्री— अपने अतुल वैभव को खोकर किसी का अनुकरण करना तो बुद्धिमानी नही कही जा सकती। विज्ञान को अपनाने का मैं विरोधी नही हू। मैं इतना ही कहता हू कि चरित्र को खोकर किसी का अनुकरण नहीं होना चाहिए। जहा चरित्र को सुरक्षित रखकर अच्छी बात का अनुकरण किया जाता है, उससे मुझे कोई एतराज नही है।

पत्रकार—अस्पृश्यता से आपका क्या तात्पर्य है ?

आचार्यश्री—अस्पृश्यता का आशय है किसी से घृणा नही करना। घृणाभाव अपने आप में अस्पृश्य है। हाथ से किसी का स्पर्श करना या न करना, मेरी दृष्टि में इसका कोई आग्रह नही है। जैनसाधु ब्रह्मचर्य की दृष्टि से किसी स्त्री का स्पर्श नही करता, लेकिन वह उससे घृणा नही कर सकता।

पत्रकार—केरल के लिए आपका क्या सदेश है ?

आचार्यश्री—केरल की जनता चरित्र के विकास के लिए प्रयत्नशील हो रहे। यहा की जनता को किसी प्रकार व्यसन-मुक्त बना दिया जाए तो उसके लिए एक नए युग का प्रारभ हो सकता है।

८ अप्रेल १९६९
पालघाट (केरल)

आचार्य तुलसी : पत्रकार

[दैनिक हिन्दुस्तान के सम्पादक श्री रतनलाल जोशी ने आचायश्री तुलसी से भेट की। जोशीजी अणुव्रत-दर्शन और अणुव्रत के कायक्रमो से प्रभावित थे। है। उनके साथ कुछ अन्य पत्रो के प्रतिनिधि भी थे। वे ग्रामीण क्षेत्र मे चलने वाली अणुव्रत प्रवृत्तियो का अवलोकन करने के लिए आए थे। उन्होने विभिन्न सूत्रा से इस विषय मे जानकारी हासिल की। दिल्ली रवाना होने से पूर्व इन्हाने पुन. आचार्यश्री से भेट की।]

यज्ञदत्त—अन्याय के विरुद्ध हिंसा के प्रयोग में अणुव्रत का क्या दृष्टिकोण है?

आचार्यश्री—महाव्रती अन्याय को हृदय-परिवर्तन के माध्यम से मिटाने का प्रयास करते हैं। किंतु राजनीतिक और सामाजिक व्यक्ति दड-व्यवस्था को भी मान्य करते हैं। अणुव्रती अपनी ओर से किसी के प्रति धोखा-धड़ी और आक्रमण न करे, किंतु प्रतिकार का निषेध उसमे नही है। यद्यपि हथियार उठाना और लड़ना हिंसा है पर गृहस्थ जीवन मे आवश्यक हिंसा या युद्ध से सर्वथा बचना सभव नही लगता। हिंसा हर स्थिति मे हिंसा ही है। प्रतिकारात्मक हिंसा को भी अहिंसा का जामा पहनाना भूल है।

जोशी—वास्तव में यह क्रान्तिकारी विचारधारा है।

आचार्यश्री—पूर्ण आदर्श व्यक्ति ही बनता है, राष्ट्र नही।

यज्ञदत्त—चीन के आक्रमण के समय सर्वोदय वालो ने शाति-सेना भेजने का प्रस्ताव किया। आपका इस सबध मे क्या विचार है?

आचार्यश्री—सर्वोदय की यह मान्यता हो सकती है कि राष्ट्र में सेना न रहे पर अणुव्रत व्यवहार की भूमिका पर चलता है।

जोशी—सर्वोदय शासन-विहीन समाज की कल्पना करता है और अणुव्रत व्यवस्था-प्रधान समाज की।

यज्ञदत्त—आपका आचार प्रेरणा देने वाला है। पर ये सीढ़िया हमसे इतनी दूर है कि हम चल नही सकते। मेरा विचार है कि समाज को साथ रखने के लिए प्रेरक

एक या दो कदम ही आगे रहे तो अच्छा होगा।

आचार्यश्री—महाव्रत सारे समाज के लिए नही होते, व्यक्तिश होते हैं। लाखों लोगो मे कुछ व्यक्ति ही उन्हे स्वीकार करते हैं। हम पैदल चलते है, पर सारा समाज पैदल नही चल सक्ता । हमारा आदर्श केवल प्रेरक के रूप में है। हम अणुव्रत के माध्यम से एक ऐसी श्रेणी कायम करना चाहते है, जो समाज में रहते हुए भी विशिष्ट हो। वह साधु और गृहस्थो के बीच एक कड़ी का काम करेगी। इस प्रकार के कुछ व्यक्ति तैयार हुए भी हैं।

यज्ञदत्त—अहिंसा-सबधी आपके विचार बहुत उपयोगी हैं। इनका व्यापक प्रसार होना चाहिए।

जोशी—रुढ़िगत परपराओं को बदलने का आपने जो साहस किया वह बेजोड़ है। हिन्दू शब्द की परिभाषा मे भी ऐसा ही हुआ है।

बालेश्वर अग्रवाल—शकराचार्य आदि के मन मे इसकी बड़ी प्रतिक्रिया हुई है। में उस कार्यक्रम मे उपस्थित था। मैंने वहा सब-कुछ गौर से सुना, देखा और अनुभव किया।

जोशी—अभी मुझे फिर बाहर जाना है। भारतीय सस्कृति और दर्शन पर व्याख्यान करने है। छह व्याख्यान अमरीका मे दो पश्चिमी जर्मनी मे और दो अरब मे देने हैं।

आचार्यश्री—उनके लिए तैयारी करनी होगी।

जोशी—तैयारी करने की आदत नही है। जैसा जानता हू, वैसा ही कहता हू। इस बार अणुव्रत-आन्दोलन की भी चर्चा करूगा और उसका साहित्य भी ले जाऊगा। वहा इस आन्दोलन का बीजारोपण होना चाहिए।

आचार्यश्री—कनाडा के हाई कमिश्नर रोलेण्ड मेचनर ने मुझसे पूछा—'अणुव्रत आन्दोलन और मोरल रिआर्मामेट में क्या अन्तर है ?' मैंने कहा—'उसके पीछे भित्ति क्या हे मैं नही कह सकता। पर अणुव्रत आन्दोलन अध्यात्म की भित्ति पर खड़ा हे। भारत के प्रधानमत्री स्वर्गीय प जवाहरलाल नेहरू कहा करते थे—'अणुव्रत आन्दोलन हमारे देश का शुद्ध आन्दोलन है।'

भारत के पास भौतिक साधन-सामग्री कम हो सकती है, पर अध्यात्म के क्षेत्र में वह आज भी परिपूर्ण है और उसका निर्यात कर सकता है। अणुव्रत-आन्दोलन देश में एकमात्र नही तो एक प्रमुख आन्दोलन अवश्य हैं जो देश और विदेशो को

इस विषय में कुछ दे सकता ह । आन्दोलन का केवल नेताओ द्वारा ही नही, जनता की भी मान्यता मिली है । अब आन्दालन की ऐसी रूपरेखा बनाई गई है, जिसे हम अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में प्रस्तुत करना चाहते हैं।

जोशी—हमारा यह कर्त्तव्य भी है । आजकल हवा ही ऐसी चली है कि विदेशों से होकर जो आए, उसके प्रति आकर्षण होता है । उधर से होकर न आने वाल के प्रति आकर्षण नही होता, चाहे वह कितना ही अच्छा क्यो न हो । टैगोर की कहानियो पर एक फिल्म बनी थी ।वहा वह तीन दिन चली । फ्रास और जर्मन म जब उसे पुरस्कार मिला तो यहा भी चलने लगी ।

आचार्यश्री—यह चिन्तन की गुलामी है ।

मुनि नथमलजी—भारत का एक व्यक्ति फ्रास गया । वहा उससे अणुव्रत आन्दोलन और उसके प्रवर्तक आचार्य तुलसी के बार म प्रश्न पूछे गए । उसने वापस आकर आन्दोलन के विषय मे जानकारी ली ।

जोशी—देश के बाहर आन्दोलन को किसी न किसी रूप में शुरू करना ही चाहिए । वहा करने से यहा सहज हो जाएगा । यहा सौ वर्ष काम करेंगे तो भी इतनी व्यापकता नही मिलेगी । बौद्ध धर्म यहा से बाहर गया । उसका ध्यान-सम्प्रदाय अमरीका, इगलैण्ड, फ्रास आदि देशो के बौद्धिक वर्ग म चलता है । केनेडी स्वय भी उसमे रस लेते हैं । झेन (ध्यान) के विषय म वहा विशाल साहित्य छपा है । वही साहित्य यहा आया तो रुचि से पढ़ा जाने लगा ।

आचार्यश्री—राजस्थान विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ. एम. एस. मेहता ने पूछा—झेन क्या है ? मैंने कहा—प्राकृत म ध्यान के लिए 'झाण' शब्द है । झाण से ही जेन और झेन बना है ।

मुनि नथमलजी—भारतवासी अब ध्यान को नही झेन को पढ़ते हैं ?

जोशी—आन्दोलन में सैद्धान्तिक पक्ष पर जोर देना चाहिए । आचरण-पक्ष वे स्वय पूछेंगे । विदेशो म विवेकानन्द के प्रचार के विषय में भी ऐसा हुआ । जिज्ञासा होने से वे स्वय पूछने आए । जिज्ञासा होने से आचरण-पक्ष को लोग स्वय समझेंगे ।

[अणुव्रत-आन्दोलन की नई रूपरेखा का एक पत्र उनके हाथ में दिया गया । पत्र को पढ़कर उन्होंने कहा—'यह बहुत अच्छा है । इसमे सातवी धारा है—'निश्छल व्यवहार करूगा' ।इसे मैं धोखा नहीं दूगा, यह न रहे तो अच्छा है । पश्चिम में निषेधात्मक भाषा को पसन्द नही किया जाता । हमारे यहा नैतिक शिक्षा की कमी

आचार्य तुलसी : दुर्गाप्रसाद चौधरी

[दैनिक नव ज्योति के सस्थापक सम्पादक आर प्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी दुर्गाप्रसाद चौधरी का आचार्यश्री तुलसी के साथ भावनात्मक सम्बन्ध रहा है। वे अनेक बार आचार्यश्री से मिले। उनके साथ हुए एक वार्तालाप को यहा प्रस्तुत किया जा रहा है।]

आचार्यश्री—आपने प्रेक्षा ध्यान का नाम सुना होगा ?

चौधरी—नाम तो सुना है। अभी यह काम कौन देख रहा है ?

आचार्यश्री—यह काम मेरे उत्तराधिकारी महाप्रज्ञजी देख रहे है।

चौधरी—अभी महाप्रज्ञजी कहा रहते हैं ?

आचार्यश्री—अभी वे जैन विश्वभारती (लाडनू) में है। उनके निर्देशन मे वहा पर प्रेक्षा ध्यान शिविर चल रहा है।

चौधरी—इससे लोगों को काफी लाभ पहुच रहा होगा ?

आचार्यश्री—निश्चित ही लाभ पहुच रहा है। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनों प्रकार का लाभ पहुच रहा है। अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक बीमारिया से ग्रस्त लोगों ने प्रेक्षा ध्यान से लाभ उठाया है।

चौधरी—प्रेक्षा ध्यान का व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार होना चाहिए ताकि अधिक से अधिक लोगों को इस सवध में जानकारी हो सके।

आचार्यश्री—ध्यान के सदर्भ में यह एक सर्वथा नई प्रणाली है। कुछ ही वर्षों में इसका विकास हुआ है। योग के नाम पर भ्रान्तिया भी आज बहुत फैल रही हैं। लोगों ने इसे धन कमाने की कला मान लिया है। प्रेक्षा ध्यान-पद्धति बहुत ही सरल और उपयोगी है। बौद्धिक लोग इसके प्रति काफी आकर्षित हो रहे हैं।

चौधरी—देश का नैतिक स्तर बहुत तेजी के साथ गिर रहा है। आप जैसे महात्मा लोग ही देश का उद्धार कर सकते हैं।

आचार्यश्री—अणुव्रत के माध्यम से हम अपना काम कर रहे हैं। सिनेमा तथा पत्र-पत्रिकाए भी समाज को विकृत बनाने में सहयोगी बन रही है।

नही है, पर उसमें निषेध पर जोर है। 'हाथ मत लगाओ' ऐसा निर्देश पाकर व्यक्ति वहा हाथ लगाएगा ही। क्योकि निषेध में आकर्षण होता है।

मुनि नथमलजी—कुछ दिन पहले आपने आन्दोलन के विषय मे सुझाव देते हुए कहा था कि आन्दोलन से शिक्षित लोगों को प्रभावित करना चाहिए।

आचार्यश्री—राजस्थान के राज्यपाल डॉ॰ सम्पूर्णानन्दजी ने भी अभी जयपुर में कहा था—'कुछ समय के लिए आपको बौद्धिक-वर्ग में ही काम करना चाहिए।'

आचार्य तुलसी : दुर्गाप्रसाद चौधरी

[दैनिक नव ज्योति के सस्थापक सम्पादक आर प्रसिद्ध स्वतन्त्रता सेनानी दुर्गाप्रसाद चाधरी का आचार्यश्री तुलसी के साथ भावनात्मक सम्यन्ध रहा है। वे अनेक यार आचार्यश्री से मिले। उनके साथ हुए एक वार्तालाप को यहा प्रस्तुत किया जा रहा है।]

आचार्यश्री—आपने प्रेक्षा ध्यान का नाम सुना होगा ?

चोधरी—नाम तो सुना है। अभी यह काम कौन देख रहा है ?

आचार्यश्री—यह काम मेरे उत्तराधिकारी महाप्रज्ञजी देख रहे हैं।

चौधरी—अभी महाप्रज्ञजी कहा रहते हैं ?

आचार्यश्री—अभी वे जैन विश्वभारती (लाडनू) में हे। उनके निर्देशन म वहा पर प्रेक्षा ध्यान शिविर चल रहा है।

चौधरी—इससे लोगों को काफी लाभ पहुच रहा होगा ?

आचार्यश्री—निश्चित ही लाभ पहुच रहा है। शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तीनो प्रकार का लाभ पहुच रहा है। अनेक प्रकार की शारीरिक और मानसिक बीमारियों से ग्रस्त लोगो ने प्रेक्षा ध्यान से लाभ उठाया है।

चौधरी—प्रेक्षा ध्यान का व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार होना चाहिए ताकि अधिक से अधिक लोगो को इस सबध मे जानकारी हो सके।

आचार्यश्री—ध्यान के सदर्भ मे यह एक सर्वथा नई प्रणाली है। कुछ ही वर्षों में इसका विकास हुआ है। योग के नाम पर भ्रान्तिया भी आज बहुत फैल रही हैं। लोगों ने इसे धन कमाने की कला मान लिया है। प्रेक्षा ध्यान-पद्धति बहुत ही सरल और उपयोगी है। बौद्धिक लोग इसके प्रति काफी आकर्षित हो रहे हैं।

चौधरी—देश का नैतिक स्तर बहुत तेजी के साथ गिर रहा है। आप जैसे महात्मा लोग ही देश का उद्धार कर सकते हैं।

आचार्यश्री—अणुव्रत के माध्यम से हम अपना काम कर रहे हैं। सिनेमा तथा पत्र-पत्रिकाए भी समाज को विकृत बनाने में सहयोगी बन रही है।

चौधरी—आपका कहना बिल्कुल सही है। आजादी के बाद देश का नैतिक स्तर बहुत तेजी के साथ गिरा है।

आचार्यश्री—आजादी के बाद देश की जनसख्या भी तो बहुत बढ़ी है।

चौधरी—आबादी को रोकने के लिए सरकार प्रयास कर रही है। किंतु वह पूरी तरह सफल नही हो रही है।

आचार्यश्री—सरकारी कानून सब पर समान रूप से लागू होना चाहिए। अन्यथा किसी कौम की जनसख्या बढ़ सकती है और किसी की घट सकती है। इससे और अधिक लोगों म असतोष पैदा होगा। हम सुनते हैं कि धर्म की आड़ में कुछ लोग बच जाते हें।

चौधरी—परिवार को सीमित करने की रोक किसी भी धर्म में नही है। किंतु आपका कहना ठीक है। कुछ लोग धर्म की आड़ से बचना चाहत है।

आचार्यश्री—आप लोगो को सही बात जनता के सामने रखनी चाहिए ताकि कोइ अनुचित लाभ न उठाए।

चौधरी—(सकोच करते हुए) यह बात कैसे कही जाए?

आचार्यश्री—(मुस्कराते हुए) साम्प्रदायिक कहलाने के डर से शायद नही कहते। किंतु इसमें साम्प्रदायिकता की कोई बात नही है। यह तो राष्ट्र से सबधित मामला है। सही बात को सही स्थान पर सही ढग से रखने म सकोच नही होना चाहिए।

चौधरी—मैं आपके विचारों से पूरी तरह सहमत हू।

आचार्य तुलसी : राजेन्द्र मेहता

राजेन्द्र—पिछले कुछ वर्षों से राष्ट्रीय ही नही, अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंसा, अराजकता भय एव आतक की घटनाओं में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है।एक ऐसे वातावरण की सृष्टि हुई है, जिसमें आम आदमी अपने-आपको असुरक्षित महसूस करने लगा है। आचार्यवर! ऐसी स्थिति में धर्म की भूमिका में क्या कोई परिवर्तन आया है?

आचार्यश्री—इतिहास साक्षी है कि ऐसी स्थिति मे धर्म सदैव उपयोगी सिद्ध हुआ है। किन्तु वही धर्म, जो व्यावहारिक हो और अध्यात्म से ओत-प्रोत हो। हम अनुभव कर रहे हैं कि आज धर्म का जो स्वरूप दुनिया में प्रचलित है वह अध्यात्म-शून्य है। लोगों ने सिर्फ क्रियाकाण्डो को ही धर्म समझ लिया है। यदि धर्म के शुद्ध रूप का अधिक प्रसार हो और जन-जन को उसके प्रति प्रेरित किया जाए तो जनता का सही पथ-दर्शन हो सकता है।

राजेन्द्र—आध्यात्मिक धर्म व क्रिया-काण्ड से आपका क्या तात्पर्य है?

आचार्यश्री—उपासना और अध्यात्म अथवा क्रियाकाण्ड और धर्म को छिलके व फल के उदाहरण से समझा जा सकता है। छिलका फल के मूल स्वरूप गूदे की सुरक्षा के लिए है। यदि हम छिलके को थामे रहे और यह मानकर प्रफुल्लित हो कि फल हमारे हाथ मे है तो हम भ्रमित हैं। कर्मकाड छिलके के समान है। हमे धर्म के मूल रूप की ओर ध्यान देना है। धर्म को वास्तव मे प्रायोगिक होना चाहिये।

राजेन्द्र—आचार्यवर। प्रायोगिक अथवा व्यावहारिक धर्म की बात सिर्फ किताबी ही है या यह कभी प्रयोग मे भी आएगी?

आचार्यश्री—धर्म के व्यावहारिक स्वरूप के प्रति जन-चेतना जागृत हो चुकी है। उसका एक रूप जैन विश्वभारती के 'अध्यात्म नीडम्' के रूप में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। सुनी-सुनाई बात की बजाय यदि प्रेक्षाध्यान की प्रक्रिया के माध्यम से इसका प्रत्यक्ष अनुभव किया जाए तो फिर विश्वास हो सकता है।

राजेन्द्र—क्या आप यह मानते है कि इस सारे दौर मे तेरापथ अपनी कोई

विशिष्ट भूमिका निभा रहा है ?

आचार्यश्री—सचमुच ही तेरापथ एक विशिष्ट भूमिका निभा रहा है। धर्म सम्प्रदायातीत है। धर्म मात्र क्रियाकाड नही है। हम मानते हैं कि धर्म वर्गातीत है। धर्म वह है, जो जीवन्त है और आचरणात्मक है। ऐसा धर्म ही वास्तव में मानव धर्म बन सकता है। धर्म के दो रूप हैं—उपासना और आचरण। आज आचरण गौण हो गया है और केवल उपासना प्रमुख रह गई है। हम प्रेक्षाध्यान और अणुव्रत आदोलन के माध्यम से आचरण पक्ष को उठाना चाहते हैं ताकि वह जन जन का धम बन जाए।

राजेन्द्र—कुछ लोगों को सशय है कि अणुव्रती लोगों की कथनी और करनी में यदा कदा अन्तर नजर आता है। रात-दिन के व्यापार में अथवा शादी-विवाह जैसे सामाजिक अवसरों पर विशिष्ट कहे जाने वाले अणुव्रतियों का आचरण भी अणुव्रत की प्रतिष्ठा के अनुकूल नही होता। आपकी इसके बारे में क्या टिप्पणी है ?

आचार्यश्री—मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज के साथ उसके अटूट सम्बन्ध है। कभी ऐसी स्थितिया आ सकती हैं, जब अणुव्रती का आचरण उचित न रहा हो। पर यह अणुव्रत का पथ नहीं है। मैं इसे कभी सही नही मानता। सच्चे अणुव्रती ऐसा नही कर सकते। वास्तव में जिसने अणुव्रत को पूर्ण निष्ठा के साथ स्वीकार किया ह वह ऐसा काम नही कर सकता। उसका आचरण सदैव अनुकरणीय होगा। यह अवश्य है कि ऐसे व्यक्तियों की सख्या कम है। यह स्थिति सभवत सर्वत्र मिलेगी। अच्छी चीज हमेशा बुरी चीजों की तुलना मे कम होती है।

हर तेरापथी अणुव्रती नही हे और हर अणुव्रती तेरापथी हो, यह भी जरूरी नहीं है। हमने अणुव्रत को तेरापथ के साथ नही जोड़ा है। इसका सीधा रिश्ता मानवता के साथ है। मानव-मात्र के साथ है।

राजेन्द्र—क्या आप सोचते हैं कि आज की युवा पीढ़ी धर्म के प्रति विमुख होती जा रही हे ?

आचार्यश्री—यह ठीक है कि आज की पीढ़ी में धर्म के प्रति आस्था कम है। पुरानी पीढ़ी मे धर्म के प्रति अपेक्षाकृत अधिक आकर्षण है। उसमें रूढ़िगत धर्म की बात ज्यादा है, जबकि आज की पुरानी के लिए तेयार नही है। कई मायनों मे उसकी धर्म दे ज्यादा —
धर्म के एक रूप प्रेक्षाध्यान की ओर यु
था कि युवा वर्ग धर्म की परिधि से नि

कि यह क्रम बदल रहा है और युवा पीढ़ी नजदीक आ रही है।

राजेन्द्र—समय परिवर्तनशील है। सामाजिक मान्यताए भी बदलती रहती हैं। क्या इसी के समानान्तर धार्मिक मान्यताओं मे परिवर्तन आवश्यक नही है? आपकी इस बारे में क्या परिकल्पना हे आचार्यवर?

आचार्यश्री—एक सीमा में परिवर्तन हर वस्तु का धर्म हे। चाहे व्यक्ति हो, चाहे समाज, चाहे परिस्थिति, हर-एक मे परिवर्तन अपेक्षित है। विवेक-पूर्वक किया गया हर परिवर्तन लाभप्रद होता हे। परिवर्तन से घबराने वाले कभी विकास नही कर सकते। परिवर्तन से घबराना जीवन-पथ मे विमुख होना हे।

राजेन्द्र—जब परिवर्तन की बात चल ही पड़ी है तो फिर इस मुद्दे पर भी विचार कर लिया जाए, जिसकी अभी काफी चर्चा है। विलक्षण दीक्षा के हाल ही में किए गए नए प्रयोग के बारे मे आप क्या सोचते हैं?

आचार्यश्री—यह नया क्रम समाज के सामने आया है। वर्षो से मै इस बारे मे सोच रहा था कि गृहस्थ और साधु के बीच एक कड़ी होनी चाहिए। इस दीक्षा के रूप मे वही कड़ी सामने आई है। प्रतिक्रिया-स्वरूप एक बार तो समाज में बड़े ऊहापोह की स्थिति हो गई। किन्तु गहराई से सोचने के बाद अधिसख्यक लोग इसे समझने लगे हैं। हमारा समाज यह मानता है कि आचार्यश्री ने जो कुछ किया है वह सोच-समझ कर किया है और सही दिशा मे किसी दूरदर्शितापूर्ण चिन्तन के बाद किया हे। अत हमारे हर प्रयोग को लोग श्रद्धापूर्वक मान लेते हैं।

राजेन्द्र—यह नई कड़ी किस रूप मे उपयोगी सिद्ध होगी?

आचार्यश्री—यह कड़ी शिक्षा और साधना के क्षेत्र मे अग्रगामी होकर जन-जन के सामने धर्म का नया स्वरूप प्रस्तुत करेगी। साधु समाज के सामने जो सीमाए हैं, यह कड़ी उन सीमाओं से काफी हद तक मुक्त रहेगी जैसे—विहार, भिक्षा उत्सर्ग, केश-लोच आदि। यातायात के नियम इस कड़ी के लिए सरल हैं, अत यह अधिक सुगमता से और त्वरित गति से अपना कार्य कर सकेगी। इसी प्रकार इस नई वेशभूषा से सामान्यजन अलगाव नही, निकटता महसूस करेगा। यह कड़ी धर्म के जीवन-व्यापी रूप को अधिक व्यापकता के साथ प्रसारित कर सकेगी।

राजेन्द्र—तो क्या आपको ऐसी कोई सभावना नजर आती है, जब साधु-समाज के लिए भी इन नियमा को इस सीमा तक सरल किया जाए?

आचार्यश्री—साधु-समाज ने अपनी सीमा को स्वय स्वीकार किया है। वह अपनी मर्यादा में चलेगा। उचित परिवर्तन अवश्य होगे मगर कोई मौलिक परिवर्तन

होगा, ऐसा मैं नही मानता। साधु के मूलस्वरूप को सुरक्षित रखा जाएगा।

राजेन्द्र—यातायात की सुविधा दे देने से साधु-समाज की भी कार्य-क्षमता बढ़ जाएगी। उसके कार्य-क्षेत्र का विस्तार हो जाएगा। क्या आप ऐसा नही मानते ?

आचार्यश्री—मेरा यह मानना है कि पद-यात्रा भी एक प्रकार की तपस्या है। जन-सम्पर्क की यह एक प्रभावी विधि है। अत साधु श्रेणी के लिए इस परिवर्तन की सभावना मुझे प्रतीत नही होती।

राजेन्द्र—मगर उत्सर्ग विधि के बारे में क्या पुनर्विचार की आवश्यकता नही है ? बड़े नगरो मे उत्सर्ग हेतु जगल जाने का कार्य जहा श्रम-साध्य है, वही स्वास्थ्य-सम्मत भी नही है और दूरियों को देखते हुए सुगम भी नही है। इस बारे में आप क्या सोचते हैं ?

आचार्यश्री—इस बारे मे विचार-मथन हो रहा है। परिवर्तन अवश्यभावी है। रास्ता सोच रहे हैं।

राजेन्द्र—ऐसा पाया गया है कि तपश्चर्या के आध्यात्मिक एव शारीरिक-पक्ष को गौण रखते हुए इसके भौतिक-पक्ष को हमारे समाज द्वारा अधिक महत्त्व दिया जाता है। मतलब यह कि तपश्चर्या के पश्चात् विशाल भोज, जुलूस रुपयो, कपड़ों गहनों का विशाल पैमाने पर लेन-देन और अन्य प्रदर्शन। क्या आपकी दृष्टि में यह प्रक्रिया उचित है ?

आचार्यश्री—तपस्या के नाम पर इस तरह के आडम्बर को हम कभी मान्यता नही देते। हो सकता है समाज के अन्य वर्गों की देखा-देखी हमारे श्रावक-समाज मे भी सभवतया प्रतिस्पर्धा-स्वरूप यह रूढ़ि घर कर रही है। पर मैं स्पष्ट रूप से यह मानता हू कि यह उचित नही है। इस पर प्रहार करना होगा और इसे मिटाने का प्रयत्न करना होगा।

राजेन्द्र—तपश्चर्या के सदर्भ मे ही क्या आप यह स्पष्ट करेंगे कि यह आखिर है क्या ? क्या उपवास करना या लम्बे समय तक शरीर को भूखे रखना ही असली तपश्चर्या है ?

आचार्यश्री—मात्र भूखे रहना ही तप है यह धारणा सही नही है। उपवास तब तक ठीक है जब तक मानसिक ग्लानि न हो। केवल स्थूल शरीर को थकाना कोई मायने नही रखता। असली बात है सूक्ष्म शरीर को थकाना। असली तपश्चर्या है कषाय को कम करना। उसका मकसद है वृत्तियों को परिष्कृत करना। उपवास सीधा नही है। एक व्यक्ति कई उपवास करके भी वास्तविक ध्येय तक नही पहुच

सकता, यदि उसके कषाय मन्द नही हो पाए हैं। उपवास करके क्रोध करना या कषाय बढ़ाना अधिक अधार्मिक कृत्य है। जबकि बिना उपवास किए ही वृत्तियों को सयत एव परिष्कृत करना सही धार्मिक प्रक्रिया है।

राजेन्द्र—प्राय ऐसा देखा जाता है कि धर्मप्रेमी लोग सामायिक या पौषध-प्रक्रिया प्रारभ करने के पश्चात् सामाजिक एव व्यक्तिगत वार्त्तालाप करने से भी नही हिचकते। आचार्यवर! आप इस बारे में क्या सोचते हैं?

आचार्यश्री—हमारे ध्यान मे भी ऐसा आया है और यह पूर्णतया अनुचित है। सामायिक की पवित्र प्रक्रिया को रूढ़ क्रिया बना दिया गया है। इन्ही सब बातों को देखने के पश्चात् हमने अभिनव सामायिक का एक नवीन प्रयोग प्रारम्भ किया है। सप्ताह मे एक बार मे स्वय सामूहिक रूप से यह प्रयोग करवाता हू। करने वालो को किसी और बात की ओर ध्यान देने का अवसर ही नही मिलता। लोगों को सामायिक का यह नया रूप बहुत सुन्दर लगा है और पसन्द भी आया है। शीघ्र ही यह अधिक प्रचलित होगा, ऐसा मै मानता हू।

राजेन्द्र— इतनी व्यस्त दिनचर्या में भी आपका इतना समय मुझे व्यक्तिगत रूप से मिला, यह मेरे लिये अत्यन्त हर्ष एव गौरव की बात है। अत में युवा पीढ़ी के लिये क्या आप कोई सदेश देगे?

आचार्यश्री—युवा पीढ़ी के लिए मेरा यही सदेश है कि वह भविष्य की ओर अवश्य देखे, किन्तु अतीत को भूले नही। अतीत के अनुभवों से भविष्य सदैव लाभान्वित होता रहा है। युवा पीढ़ी पुरानी सड़ी-गली रूढ़ियों को अवश्य तोड़े मगर नई रूढ़ियों का सृजन न करे। खानपान में जो अनियमितता दृष्टिगोचर हो रही है, उस ओर विशेष ध्यान दे।

आज का युग विज्ञान का युग है और नई पीढ़ी उससे ज्यादा आकृष्ट है। किन्तु यह बात ध्यान रखने योग्य है कि धर्म से विज्ञान लाभान्वित हुआ है और विज्ञान से धर्म। दोनों का सामजस्य बहुत जरूरी है बहुत उपयोगी है। केवल विज्ञानवादी बनना उचित नही तो केवल धार्मिक बनना भी उचित नही। दोनों का उचित मेल ही सही कदम है। प्रेक्षाध्यान पद्धति पूर्णतया वैज्ञानिकपद्धति है। यह मानसिक तनाव दूर करने में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। यह धर्म और विज्ञान के सामजस्य का प्रत्यक्ष उदाहरण है।

आचार्य तुलसी : डॉ॰ रामाराव

[दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डॉ॰ के जी रामाराव एम ए, पी-एच डी जबलपुर से आचार्यश्री तुलसी के दर्शनार्थ आए। वे प्रथम बार तारीख २६ को मध्याह्न मे १ ॥ बजे से ३ ॥ बजे तक आचार्यश्री के उपपात मे रहे। उनके साथ हुई बातचीत के कुछ अश यहा प्रस्तुत है ।]

१

रामाराव—मैं जीव हू, उसी तरह दूसरे भी जीव हैं, यह एक अवधारणा है। दूसरी अवधारणा के अनुसार ससार के सब जीव समान हैं। इस विषय में आपके क्या विचार हैं ?

आचार्यश्री—जैन शास्त्रो में प्राणिमात्र को समान माना गया है। जीवत्व की दृष्टि से कोई भी जीव छोटा-बड़ा नही होता । जीवो में जो अन्तर दिखाई देता है वह कर्म-कृत प्रभाव के कारण है। आत्मत्व की दृष्टि से सब आत्माए समान हैं। जैन आगमो मे तो यहा तक माना गया है कि आज जो वनस्पति जीव है, वह अगले जन्म में मनुष्य भी बन सकता है।

रामाराव—आत्मा कुछ ऊची उठ जाए तो फिर उसका वहा से पतन नही होता है, ऐसी मेरी धारणा है। आपका मन्तव्य क्या है ?

आचार्यश्री—यदि गति मे ह्रास या पतन न आए तो आत्मा ऊची उठने के बाद पतित नही होगी। किन्तु जिस गति से वह ऊची उठ रही है उसको निरुद्ध कर दूसरा मार्ग लेने पर उसका पतन भी सभाव्य है। जैन सिद्धान्तो में यह माना गया है कि मोक्ष प्राप्त करने से पहले जीव को १४ स्थान—गुणस्थान पार करने होते हैं। गुणस्थान का अर्थ है क्रमिक विकास की अवस्था। गुणस्थान-विवेचन में यहा तक बताया गया है कि आत्मा ११वी अवस्था (गुणस्थान) मे पहुचकर भी नीचे गिरती ही है। बारहवी अवस्था में वीतरागता आ जाती है। वहा से पतन नही होता। आत्मा के पतन का मुख्य कारण राग-द्वेष है। कितनी ही क्रियाए की जाए, जब तक राग-द्वेष

अवशिष्ट रहता है, तब तक पतन की सम्भावना रहती हैं। जब राग-द्वेष को विनष्ट कर दिया जाएगा, तब यह खतरा नही रहेगा। १२वी अवस्था के बाद १३वी अवस्था (सयोगी केवली गुणस्थान) सर्वज्ञता की है और चौदहवी अयोगी केवली की है।

आत्मा के पतन और उत्थान का आधार उसका अपना कर्तृत्व है। विकास की भूमिका पर आरोहण करने वाला जीव एकेन्द्रिय से द्वीन्द्रियादि योनियों में जा सकता है और अवरोहण करने वाला जीव पचेन्द्रिय से एकेन्द्रिय में भी जा सकता है।

रामाराव—यह मैने आज ही जाना कि यदि गति में शैथिल्य हो तो जीव का विकास के बाद ह्रास भी हो सकता है।

जीवन का अर्थ है सक्रियता (Life is activity)। उसमें वैराग्य का होना कर्म विमुखता है। वैराग्य तथा जीवन का सामञ्जस्य कैसे होगा?

आचार्यश्री—जिस रूप में आप जीवन को सक्रिय बतला रहे हैं, यह एक सापेक्ष सत्य है। जीवन की ये क्रियाए सोपाधिक हैं। भोजन करना तब तक आवश्यक है जब तक भूख का अस्तित्व रहता है। जिन कारणों से ये सोपाधिक सक्रियताए रहती हैं, वे कारण नष्ट हो जाए तो फिर सक्रियता की आवश्यकता नही रहेगी। आत्मा की स्वाभाविक सक्रियता है निजस्वरूप में रमण करना। हर क्षण रह सकती है। इस रूप म सक्रिय रहती हुई आत्मा अन्य क्रियाओं से अक्रिय हो जाती है। सोपाधिक सक्रियता वैकारिक या वैभाविक है। उसे मिटाने के लिए त्याग तपस्या आदि की आवश्यकता होती है।

इस बात को ध्यान में रखकर सबसे पहले अपने आपको जानना चाहिये। आत्मा की वास्तविक सक्रियता को समझना चाहिए। मैं तो बहुधा कहा करता हू कि विज्ञान अधूरा है। ससार भर को जानने का प्रयत्न करता है, किन्तु आत्मा को जानने या देखने का प्रयत्न नही करता।

रामाराव—साइकोलोजी (मनोविज्ञान) का भी यही दुर्भाग्य है। भारत के प्राचीन ऋषियों ने ऐसा ही कहा है—'अपने-आपको जानो।'

आचार्यश्री—जो आत्मस्वरूप, परमात्मतत्त्व और मोक्ष को नही जानता, उसकी सम्मति व असम्मति की क्या कीमत है। ऐसा एक प्राचीन विचारक ने कहा है, जो वस्तुत तथ्यपूर्ण है।

रामाराव—समाज में प्रवृत्ति का हेतु व्यक्ति का अपना स्वार्थ ही नही है, वह

अच्छे कर्म पुण्य और बुरे कर्म पाप कहलाते हैं। बुरे कर्म तो स्पष्टत मोक्ष में बाधक हैं ही। सत्क्रियाओं का फल दो प्रकार का है। उनसे पुराने बन्धन टूटते हैं, किन्तु साथ-साथ में शुभ पुद्गलों का बन्ध भी होता रहता है। बन्ध मोक्ष में बाधक है।

रामाराव—शुभ कर्मों से बधन टूटने के साथ पुन बन्धन किस प्रकार होता है?

आचार्यश्री—इस बात को एक उदाहरण से समझा जा सकता है। आप प्रात काल भ्रमण के लिए उपवन में जाते हैं। वहा घूमने से अस्वस्थता के पुद्गल दूर होंगे और स्वस्थता के अच्छे पुद्गल गृहीत होंगे। अच्छी क्रिया में मुख्य फल आत्मशुद्धि है। किन्तु जब तक उस क्रिया में राग-द्वेष का अश समाविष्ट रहता है, उससे बन्धन भी होता रहता है। गेहू की खेती की जाती है। गेहू के साथ चारा या भूसा भी पैदा होता है। बादाम के साथ छिलके भी पैदा होते हैं। जब तक वीतरागता नही आएगी। तब तक की अच्छी प्रवृत्ति भी राग-द्वेष से सर्वथा विरहित नही होगी, अत बन्धन होता रहेगा।

रामाराव—गृहस्थों के लिए कुछ न कुछ करना तो आवश्यक है ही?

आचार्यश्री—कुछ न कुछ करना तो साधुओं के लिए भी आवश्यक है। वे भी सत्प्रवृत्ति करते हैं। उससे पूर्व सचित कर्मों के बन्धन टूटते हैं, और किञ्चित् रूप मे बन्धन भी होता रहता है।

रामाराव—बन्धन से छुटकारा कैसे हो?

आचार्यश्री—ज्यों-ज्यों कषाय का शमन होगा, त्यों-त्यों जो क्रिया जनित बन्धन कम होगा, हल्का होगा और आत्मा ऊची उठती जाएगी। एक अवस्था ऐसी आएगी, जिसमें सर्वथा बधन नही होगा। क्योकि उसमें बधन के कारणों का अभाव हो जाएगा।

रामाराव—निष्काम भाव से कर्म करने से बन्धन कम होगा?

आचार्यश्री—निष्काम भावना के साथ आत्म-अवस्था भी शुद्ध होनी चाहिए। बहुत लोग कहने को कह देते हैं कि वे निष्काम कर्म करते हैं। किन्तु जब तक आत्मा विशुद्ध नही होती तब तक पूर्ण निष्कामता नही आ सकती।

रामाराव—आपके कथन से मैं यह समझ पाया हू कि ज्यो-ज्यों अनासक्ति बढ़ाते जायेगे, त्यों-त्यों हम ऊपर उठेंगे।

आचार्यश्री—आत्म-अवस्था की शुद्धि के साथ-साथ।

रामाराव—मनोविज्ञान का विषय मानसिक क्रिया से ऊपर नही जाता। आत्मा

सामाजिक है। दूसरों को सहयोग देना दूसरो की रक्षा करना आदि सामाजिक प्रवृत्तिया है। किन्तु कुछ लोग इनको परम लक्ष्य मान लेते हैं। पहली प्रवृत्ति के लिए शिक्षा देना सामाजिक दृष्टि से आवश्यक है, पर कमी यही है कि उसके साथ आध्यात्मिक शिक्षा नही दी जाती। जब तक आध्यात्मिक शिक्षा नही दी जाएगी, तब तक कोरी सामाजिक शिक्षा भौतिकता बढ़ाएगी, पर व्यक्ति को बदल नही पाएगी। क्रोध नही करना चाहिए, क्योंकि इससे आत्मा का पतन होता है। यह शिक्षा अपने आप में प्रभावकारी हो सकती है।

भारत सरकार कहती है—'अन्न के बचाव के लिए उपवास करो।' मैं कहता हू—आत्मशुद्धि के लिए उपवास करो। यदि यह प्रचार किया जाए तो अन्न स्वय बच जाएगा। यह तो गौण साध्य है। प्रत्येक कार्य का लक्ष्य अध्यात्मवाद रहना चाहिए।

छात्रों से पूछा जाता है—'आप अध्ययन क्यों करते हैं?' वे कहते हैं—'आजीविका के लिए। शायद ही कोई विद्यार्थी यह कहे कि वह आत्मशुद्धि के लिये, ज्ञानार्जन के लिए पढ़ता है। मेरा दृष्टिकोण ऐसा है कि आज लक्ष्य में जो सकीर्णता आ गई है, और जो विपर्यय हो रहा है, उसे बदलदिया जाए तो केवल भारत का ही नही, समूचे विश्व का बड़ा लाभ हो सकता है। आज विकृति का मूल कारण यही है कि लोगों का लक्ष्य भौतिकवादी बन रहा है। वैज्ञानिक लोग भी उसमें सहायक हो जाते हैं। आज लोग भी धर्म-सिद्धान्तो के बजाय विज्ञान को अधिक मानते हैं।

रामाराव—(मुस्कराहट के साथ) वस्तुस्थिति यही है।

आचार्यश्री—आपने जो प्रश्न किए, वे गूढ़ हैं। उनसे अन्य लागों को भी लाभ मिल सकता हैं।

रामाराव—मेरी यह धारणा थी कि शुभ कर्म सर्वदा व सर्वथा ऊचा ले जाने वाले ही हैं। किन्तु आज मैन 'शुभ कर्म भी बन्धन हैं'—यह नई बात समझी और मुझे यह ठीक जची।

[डॉ रामाराव का आचार्यश्री के साथ बात करने का वह पहला उवसर था। उससे वे अभिभूत हो गए। उक्त वार्तालाप के पश्चात् आचार्यश्री ने कुछ देर उनको अणुव्रती सघ के विषय में बताया।]

२

[दूसरे दिन ता॰ २७ को मध्याह्न में १ ॥ से २ ॥ बजे तक डॉ॰ रामाराव का आचार्यश्री के साथ वार्तालाप चला।]

के साथ मन का क्या सम्बन्ध है ? इस विषय में आपके विचार जानने की उत्सुकता है ?

आचार्यश्री—आत्मा का सम्बन्ध मानसिक, वाचिक व कायिक क्रियाओं के साथ तो है ही। इनके अतिरिक्त अध्यवसाय या परिणाम नाम की एक सूक्ष्म क्रिया भी है। स्थावर जीवों के मन नही होता। किन्तु उनके भी सूक्ष्म क्रिया होती है। उन्हें योग, लेश्या आदि नामों से अभिहित किया जाता है।

रामाराव—जिनके मन नही होता, क्या उनके आत्मा होती है।

आचार्यश्री—हा, आत्मा के आलोचनात्मक ज्ञान के साधन का नाम ही मन है। जिस प्रकार पाचो इन्द्रिया ज्ञान का साधन हैं, उसी प्रकार मन भी एक साधन है दूसरे शब्दों मे कहा जाए तो आत्मा की बौद्धिक क्रिया का नाम मन है। जिनकी बौद्धिक क्रिया अविकसित होती है, उन्हे अमनस्क कहा जाता है। उनके मन नही होता।

रामाराव—क्या इन्द्रियो की प्रवृत्ति अथवा निवृत्ति से आत्मा मुक्ति पाती है ?

आचार्यश्री—प्रवृत्ति दो प्रकार की है—सत्प्रवृत्ति तथा असत्प्रवृत्ति। सत्प्रवृत्ति तथा निवृत्ति दोनों आत्ममुक्ति में साधनभूत हैं।

रामाराव—मनोविज्ञान ऐसा मानता है कि मनुष्य कर्म में प्रवृत्त रहकर अपनी विचार-शक्ति का विकास कर सकता है। किन्तु कुछ बातें सस्कारलभ्य भी हैं। मनोविज्ञान मे विचारधारा के तीन प्रकार माने गए हैं—

१ माता-पिता की अपनी सन्तति के प्रति जैसी रक्षात्मक भावना होती है, वैसी भावना सब के प्रति रखना और दूसरो से वैसी ही रक्षात्मक भावना की माग करना।

२ बुरी चीजों से घृणा करना व उन्हें छोड़ने के उपाय सोचना।

३ काम, क्रोध लोभ, भय आदि सवेगात्मक भावनाए।

ये तीनो भावनाए स्वाभाविक शक्तिया (Energies) हैं। इनको सरलता से मिटाया नही जा सकता। इनको दूसरी ओर लगाया जा सकता है दूसरे मार्ग पर ले जाने की कोशिश की जा सकती है। स्कूलों में चरित्र-निर्माण की शिक्षा के लिए यह तरीका अख्तियार किया जाता है कि पहली विचारधारा को प्रोत्साहन दिया जाए और तीसरी को रोकने की कोशिश की जाए, क्या यह ठीक है ?

आचार्यश्री—तीसरी को रोकने का प्रयास करना बहुत ठीक है। पहली में प्रवृत्त करने या प्रोत्साहन देने की प्रेरणा एक सामाजिक अपेक्षा है। दूसरी विचारधारा को प्रश्रय देना, बढ़ावा देना उत्तम है। मेरे अभिमत से पहले प्रकार की विचारधारा

के सामने जब यह प्रसग आया तो उन्होने सोचा— जब मैंने दीक्षा ली थी तब मेरी माता को भी मोह से रोना आ गया था। तब मैंने अपने को मोहवश दुर्बल नही बनाया तो अब क्यों बनाऊ ? सत्यमार्ग क्यों नही ग्रहण करू ?

रामाराव—आपका कहना बिल्कुल यथार्थ है।

आचार्यश्री—पाश्चात्य लोग इस बात को हृदय में स्थान इसलिए नही देते कि उनके यहा दीक्षा या सन्यास जेसी कोई परम्परा नही है।

रामाराव—यह तो स्वीकार करना ही होगा कि व्यक्ति सबको छोड़कर सन्यस्त बन जाए, यह व्यक्तिगत स्वार्थपरता है।

आचार्यश्री—जेसा कि मैंने कल की बातचीत में बताया था, आत्मसाधना स्वार्थपरता नही, बल्कि परमार्थ हे। परमार्थ के पथ पर अग्रसर होकर दीक्षित होने वाला सामाजिक क्षेत्र में नैतिक उत्थान का भी प्रयत्न करता है। ऐसी स्थिति में उसका एकमात्र व्यक्तिगत स्वार्थ केसे हुआ ?

रामाराव—सब साधु-सन्यासी तो ऐसे नही होते। मैं समझता हू ऐसा नही करने वाले एक तरह से भार हें।

आचार्यश्री—साधु का जीवन तपस्या और साधना का जीवन है। उसमे अनिवार्यत साधना होनी चाहिए। यदि ऐसा नही हो तो वे साधु-वेष को विडम्बित व लज्जित करते हैं। हमारा कथन उन साधुओ को साममने रखकर है जो वास्तव में परमार्थ के साधक हें।

बुद्ध, महावीर, ईसामसीह आदि महापुरुष घरवालों के मोह का विचार न करते हुए अपने-अपने पथ पर अग्रसर हुए। यदि परिजनों के दुख से द्रवित होकर वे अपने गन्तव्य पथ पर नही जाते तो ससार को उनके मननीय विचार कैसे प्राप्त होते। आज साधुवर्ग की स्थिति कुछ प्रतिकूल-सी है। वे बड़े-बड़े मठों, स्थानों व आश्रमों के अधिपति बने बेठे हैं।

रामाराव—कई साधु-सन्यासी तो ऐसे है जिनके राजा महाराजाओं की तरह बड़े मूल्यवान व विशाल प्रासाद हैं।

आचार्यश्री—जब हम यह सुनते हैं तो हमारे दिल मे बड़ी टेस पहुचती है। भारतीय साधु-सन्यासियों का इतना उच्च व गोरवपूर्ण स्थान त्याग-तितिक्षा के कारण हे, भोग-लिप्सा के कारण नही। यदि त्याग व तपस्या के प्रतीक साधु भी सासारिकता में लिप्त रहते है तो यह बड़ी शोचनीय बात है।

रामाराव—क्या मेरा यह सोचना ठीक है कि जैन साधुओं ने अपनी आत्मा के

रामाराव—यद्यपि दीक्षार्थी या बहन-भाई वैराग्योन्मुख होकर दीक्षा ग्रहण करते हैं, वह उनके आत्मविकास का मार्ग अवश्य है। किन्तु उनके माता-पिता आदि परिजनो के हृदय में इससे जो दु ख होता है, उसे देखते उनका दीक्षा लेना कहा तक उचित है ?

आचार्यश्री—दीक्षा माता-पिता आदि की स्वीकृति से दी जाती है। जहा तक उनके मानसिक दु ख या व्यथा का सवाल है यह उनके स्वार्थ या मोह के कारण ह। जीवन की दिशा क्या हो ? इस विषय में माता-पिता के मार्गदर्शन का महत्त्व है तो व्यक्ति-स्वातन्त्र्य भी अपना एक विशेष स्थान रखता है। प्रत्येक व्यक्ति अपना हित या लाभ सोचता हे। यदि वह किसी प्रकार के हिंसात्मक साधनों का प्रयोग न करता हुआ विशुद्ध अहिंसात्मक उपायों से सच्चे सुख की उपलब्धि में अपने व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का उपयोग करता हे तो इसमें अनुचित क्या हे। एक व्यक्ति ब्रह्मचर्य पालना चाहता है, इसी मे वह सुखानुभव करता है। इसी में उसको आन्तरिक सन्तोष है। उसकी पत्नी की ऐसी इच्छा नही है। अत वह उससे नाराज होती है। क्या वह उसकी नाराजगी को लक्ष्य करते हुए अपने व्रत से च्युत हो जाए ?

रामाराव—इसके दो पहलू हैं—एक आत्मदृष्टि, दूसरी पारिवारिक या सामाजिक दृष्टि। यदि किसी के अन्तस्तल में यह ठीक जच जाए कि अमुक कार्य या प्रवृति छोड़ना अच्छा है तो वह व्यक्तिगत स्वार्थ या आत्मलाभ की दृष्टि से उससे अलग रह सकता हे। किन्तु दूसरी दृष्टि से उसे यह भी सोचना चाहिए कि उसका पारिवारिक हित किसमे है ?

आचार्यश्री—व्यवहार दृष्टि से हम अब्रह्मचर्य का त्याग पति-पत्नी दोनों की रजामन्दी से ही करवाते हैं। किन्तु सिद्धान्तत हम यह स्वीकार करते हैं कि जब एक व्यक्ति ब्रह्मचर्य का पूर्णतया इच्छुक है तो उसके लिए बाधा क्यो हो ?

रामाराव—भारतीय विचारधारा तो ऐसी ही रही है, किन्तु पाश्चात्य चिन्तन ऐसा नही है।

आचार्यश्री—जहा व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का महत्त्व है वहा तो यह विचारधारा रहेगी ही। ऐसे विचारों से कोई दु खी हो यह उसकी कमजोरी है। वह अपने स्वार्थ-व्याघात से दु खी बनता है। उदाहरणार्थ—तेरापथ धर्मसघ के प्रवर्तक आचार्य भिक्षु अपने दीक्षागुरु आचार्य रघुनाथ जी से पृथक् हुए तब उनकी आखों से आसू आने लगे। क्योंकि उनका एक परम योग्य शिष्य पृथक् हो रहा था। ऐसी स्थिति में क्या उन्हें ठीक रास्ता नही लेना चाहिए था ? यही बात दीक्षार्थी के लिए है। आचार्य भिक्षु

के सामने जब यह प्रसग आया तो उन्होने सोचा— जब मैंने दीक्षा ली थी तब मेरी माता को भी मोह से रोना आ गया था। तव मैंने अपने को मोहवश दुर्बल नहीं बनाया तो अब क्यों बनाऊ ? सत्यमार्ग क्यों नही ग्रहण करू ?

रामाराव—आपका कहना बिल्कुल यथार्थ है।

आचार्यश्री—पाश्चात्य लोग इस बात को हृदय में स्थान इसलिए नहीं देते कि उनके यहा दीक्षा या सन्यास जैसी कोई परम्परा नही है।

रामाराव—यह तो स्वीकार करना ही होगा कि व्यक्ति सबको छोड़कर सन्यस्त बन जाए, यह व्यक्तिगत स्वार्थपरता है।

आचार्यश्री—जैसा कि मैंने कल की बातचीत में बताया था आत्मसाधना स्वाथपरता नही बल्कि परमार्थ है। परमार्थ के पथ पर अग्रसर होकर दीक्षित होने वाला सामाजिक क्षेत्र में नैतिक उत्थान का भी प्रयत्न करता है। ऐसी स्थिति मे उसका एकमात्र व्यक्तिगत स्वार्थ कैसे हुआ ?

रामाराव—सब साधु-सन्यासी तो ऐसे नही होते। मैं समझता हू ऐसा नही करने वाले एक तरह से भार हैं।

आचार्यश्री—साधु का जीवन तपस्या और साधना का जीवन है। उसमें अनिवार्यत साधना होनी चाहिए। यदि ऐसा नही हो तो वे साधु-वेष को विडम्बित व लज्जित करते हैं। हमारा कथन उन साधुओ को साममने रखकर है, जो वास्तव में परमार्थ के साधक हैं।

बुद्ध, महावीर, ईसामसीह आदि महापुरुष घरवालों के मोह का विचार न करते हुए अपने-अपने पथ पर अग्रसर हुए। यदि परिजनों के दुख से द्रवित होकर वे अपने गन्तव्य पथ पर नहीं जाते तो ससार को उनके मननीय विचार कैसे प्राप्त होते। आज साधुवर्ग की स्थिति कुछ प्रतिकूल-सी है। वे बड़े-बड़े मठों, स्थानों व आश्रमो के अधिपति बने बैठे हैं।

रामाराव—कई साधु-सन्यासी तो ऐसे हें जिनके राजा महाराजाओ की तरह बड़े मूल्यवान व विशाल प्रासाद है।

आचार्यश्री—जब हम यह सुनते है तो हमारे दिल मे बड़ी टेस पहुचती है। भारतीय साधु-सन्यासियो का इतना उच्च व गोरवपूर्ण स्थान त्याग-तितिक्षा के कारण है, भोग-लिप्सा के कारण नही। यदि त्याग व तपस्या के प्रतीक साधु भी सासारिकता में लिप्त रहते हैं तो यह बड़ी शोचनीय बात है।

रामाराव—क्या मेरा यह सोचना ठीक है कि जैन साधुओं ने अपनी आत्मा के

लाभ या विकास के लिए ससार छोड़ा है। किन्तु उनसे ससार कुछ लेना चाहे तो उसे देना भी उनका कर्त्तव्य है ?

आचार्यश्री—हा, मैंने तो यहा (हामी में) आते ही आम जनता में कहा था कि मेरा जीवन सर्वथा सार्वजनिक है। कोई भी मेरे से कुछ लाभ उठाना चाहें, वे खुशी से उठा सकते हैं। यदि हमारे मन मं लोक-कल्याण की भावना न होती तो हजारों मील की पैदल यात्रा करते हुए हम यहा क्यों आते ?

रामाराव—जो साधु नही है, उनके लिए अणुव्रतों का पालन विहित है। इस विषय मे मेरा यह सुझाव है कि अणुव्रत-ग्रहण व्यक्तिगत न होकर परिवारगत हो। इससे परिवार-भर का वातावरण एक तरह का रहेगा व्रत पालने मे अधिक सुगमता होगी। अन्यथा कठिनाइया आएगी।

आचार्यश्री—सुझाव अच्छा है। यदि परिवार की जगह इसका समाजगत ग्रहण हो तो और भी अच्छा रहे। किन्तु फिर भी कई नियम ऐसे हैं, जो व्यक्ति से सम्बन्ध रखते है। नियमों को लेने वाला अपने समूचे जीवन को सामने रखता हुआ उन्हें लेता है। परिवार के सभी सदस्यों की मानसिक दृढ़ता या आत्मबल एक जैसा नही होता। नियम किसी पर लादे नही जा सकते। परिवार के सब सदस्यों की सहमति न होने पर एक व्यक्ति चाहता हुआ भी अणुव्रती नही बन पाएगा। क्योकि परिवारगत नियम रहने से जब तक सारा परिवार राजी नहीं होगा तब तक व्यक्ति की इच्छा का कोई मूल्य नहीं होगा। अत वह चाहता हुआ भी वञ्चित रहेगा। यदि व्यक्तिगत अणुव्रत ग्रहण की परम्परा रहेगी और एक व्यक्ति अणुव्रती बन जाएगा तो उसे चिन्ता रहेगी कि वह अपने पारिवारिक जनों का भी अणुव्रती बनाए। अणुव्रती सघ के प्रचार का यह भी एक तरीका रखा गया है कि प्रत्येक अणुव्रती पाच अन्य व्यक्तियो को इसके लिये तैयार करे। यदि डॉक्टर साहब अणुव्रती बनेगे तो आपको भी यह दायित्व दिया जाएगा।

रामाराव—मेरा एक सुझाव यह है कि साधु जहा-जहा विचरण करते हैं। उनका पूरा विवरण सभा को रखना चाहिए। अणुव्रती सघ के विषय में मेरी यह भावना है कि वह केवल भारत मे ही नही बल्कि समस्त ससार में फैले।

आचार्यश्री—(सूक्ष्म लिपि वाले पत्र दिखाते हुए) इस पत्र मे अनुत्तरोपपातिक सूत्र टीका सहित लिखा हुआ है। यह हमारे पाचवे आचार्य मघवा-गणी की हस्तलिपि है। हमारे साधु-साध्विया साधना और यात्रा के साथ कला के क्षेत्र में भी गतिशील।

रामाराव —ऐसा लिखना मुद्रण (*Printing*) से भी सभव नही है। यह तो लेखकों की एकाग्रता की अद्‌भुत शक्ति का द्योतक है।—साध्विया इन दिनों किन-किन ग्रन्थों का अध्ययन करती हैं?

आचार्यश्री—न्यायकर्णिका, तर्कसग्रह, पद्मानन्दमहाकाव्य आदि।

रामाराव—शिक्षा व कला को आप अध्यात्म का अग मानते हैं अथवा केवल कला की दृष्टि से जोर देते हैं?

आचार्यश्री—इनको भी हम एक प्रकार का आध्यात्मिक विकास मानते हैं।

रामाराव—क्या अनुशासन के विषय में साधु तथा साध्विया समान हैं?

आचार्यश्री—हा, समान हैं।

रामाराव—क्या कोई साध्वी योग्य हो तो वह सिद्धान्तत आचार्य के पद की अधिकारिणी हो सकती है?

आचार्यश्री—हा, हो सकती है।

रामाराव—क्या साध्वियों की शिक्षा साधुओं से कम है?

आचार्यश्री—यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो कुछ कम है। किन्तु जिस विशेष प्रयत्न व अदम्य उत्साह के साथ साध्वियों का विद्याभ्यास चालू है, उसे देखते हुए लगता है कि साध्विया शिक्षा के क्षेत्र में पीछे नही रहेंगी।

रामाराव—उनके विकास से विश्व भर के महिला समाज पर एक अमिट प्रभाव पड़ेगा।

आचार्यश्री—हमारे सघ में इस समय कोई भी साध्वी अशिक्षित नही है।

रामाराव—आपने महिलावर्ग को भी पुरुषवर्ग के समान स्थान दिया है, इसका दुनिया पर बड़ा असर होगा।

३

[तीसरे दिन तारीख २८ को मध्याह्न में डॉ॰ रामाराव का १॥ बजे से २॥ बजे तक आचार्यश्री के साथ पुन वार्त्तालाप हुआ।]

रामाराव—यदि दीक्षा के पश्चात् सिद्धान्तो में मतभेद हो जाए तो क्या कोई साधु सघ मे रह सकता है?

आचार्यश्री—सैद्धान्तिक मतभेद की स्थिति में समाधान करने की, समझाने की कोशिश की जाती है।फिर भी मन का सदेह दूर न हो तो वह सघ में नही रह सकता।

रामाराव—मेरा अभिप्राय यह है कि उसे किसी शास्त्रीय प्राचीन अर्थ में शका

हो जाए और वह उस स्थल का नया अर्थ लगाए तो क्या वह उसके अनुसार चल सकता है ?

आचार्यश्री—सघ की मर्यादा यह है कि यदि इस प्रकार की कोई बात हो तो वह आचार्य से निवेदन करे। आचार्य उस स्थल का विशेष मनन करके समाधान करेगे। फिर भी उसे यदि वह समाधान नही जचता है तो उसे सघ में नही रखा जा सकता। आद्य आचार्यश्री भिक्षुगणी की ऐसी ही वैधानिक मर्यादा है।

आचार्य भिक्षु ने सघ का जो दूरदर्शितापूर्ण व विवेकसम्मत विधान बनाया, उसे देखते हुए यह प्रतीत होता है कि वे एक बड़े नीतिविद् व दूरदर्शी सत थे। आज एक ओर विधान बनाने के लिए सैकड़ों-हजारो आदमियों की पार्लियामेण्ट बैठती है। दूसरी ओर लाखो आदमियों की सस्था का विधान एक व्यक्ति बनाए और आज सैकड़ो वर्ष होने के बाद भी उस विधान पर लोग चलते रहे यह विधान की तात्विकता व विज्ञानशीलता का परिचायक है। विधान की मौलिक विशेषता यह है कि हमारे दिमाग में उसे बदलने का विचार तक नही आता। वह आज के युग में भी उतना ही उपयुक्त साबित हो रहा है, जितना अपने निर्माण-काल म था।

रामाराव—तेरापथ सघ में दो का आदेश मान्य होता है—

१ जैनसिद्धान्त का २ आचार्य का

आचार्यश्री—आचार्य का आदेश सिद्धान्तानुकूल होता है। आचार्य एक प्रकार से सिद्धान्तों के प्रतीक होते हैं।

रामाराव—यदि आचार्य की आज्ञा सिद्धान्त-विरुद्ध हो तो ?

आचार्यश्री—यदि वस्तुत ऐसा हो तो आचार्य को हटाया जा सकता है। हमारे यहा कोई नाजिम नही है कि जो मन में आया कह दिया और वही सर्वमान्य हो गया। तभी तो हमारे यहा एकतन्त्र और जनतन्त्र का समन्वय है।

[बातचीत के बीच आचार्यश्री ने तेरापथ के विधान, लिखत आदि दिखाए और सक्षिप्त रूप में उनका आशय समझाया। स्वामीजी के जीवन-वृत पर सक्षिप्त प्रकाश डालते हुए केलवा की अधेरी ओरी की घटना बताई तथा चित्र दिखाए।]

रामाराव—जब दीक्षा होती हे तो क्या दीक्षार्थी को यह प्रतिज्ञा करनी होती है कि वह इस विधान को मानेगा ?

आचार्यश्री—हा इन लिखतों के साररूप में एक सक्षिप्त लिखत है उस पर दैनिक हस्ताक्षर भी करने होते हैं।

[तदनन्तर आचार्यश्री ने डॉक्टर साहब को स्याद्वाद का स्वरूप समझाते हुए कहा—]

प्रत्येक वस्तु मे अनेक विरोधी धर्म होते हैं। यदि वस्तु का प्रतिपादन एकागी दृष्टिकोण से किया जाएगा तो वह ठीक नही होगा। अत प्रत्येक वस्तु को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से देखना और भिन्न दृष्टियों से उसकी सिद्धि करना स्याद्वाद या अनेकान्त-वाद है।

उदाहरणस्वरूप एक प्रसग को हम लें—एक दर्शन कहता है कि ससार नित्य है। दूसरा कहता है कि ससार अनित्य है। किन्तु जैनदर्शन ससार को नित्यानित्य मानता है, इसलिए वह दो भिन्न मन्तव्यों का समन्वय कर देता है। यहा दो अपेक्षाओ को लेना होगा—द्रव्य की अपेक्षा से ससार नित्य है, क्योंकि द्रव्य का द्रव्यत्व रूप मे कभी विनाश नही होता। वस्तु के पर्याय समय-समय बदलते रहते हैं। अत पर्याय की अपेक्षा से ससार अनित्य है। दो भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से दो भिन्न प्रकार की सिद्धि होती है। इसी दृष्टि से ससार की समस्त वस्तुओं को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है। सब मनुष्य समान भी हैं और असमान भी हैं। भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से इस मन्तव्य की भी सिद्धि हो सकती है। मनुष्यत्व की दृष्टि से वे समान हैं और राजस्थानी, महाराष्ट्री बगाली आदि अपेक्षाओं से असमान हैं। एक दृष्टि से जड़ व चेतन को भी समान कह सकते हैं। पदार्थत्व या वस्तुत्व की दृष्टि से जड़ व चेतन दोनों में साम्य है। चेतनत्व व जड़त्व की दृष्टि से दोनों में असमानता है। इसी प्रकार वस्तु है भी और नही भी। स्व-स्वरूप से वह है, पर स्वरूप से नहीं है। एक साथ अस्तित्व नास्तित्व आदि का कथन नही किया जा सकता। अत वस्तुओं मे अवाच्यत्व या अवक्तव्यत्व नामक धर्म भी है।

मैं डॉक्टर साहब से पूछूगा कि यह पुस्तक (आचार्यश्री के हाथ में एक पुस्तक थी) है या नही ?

रामाराव—दोनों हैं, यानी है भी और नही भी।

आचार्यश्री—हा, अपने रूप से यह है और पर रूप से नही है। यदि पर रूप से किसी का अस्तित्व माना जाए तो फिर अनवस्था हो जाए, नियामकता ही न रहे। इस तरह अनेकान्त के द्वारा ससार की सब वस्तुओं ओर मत-मतान्तरो का समन्वय किया जाए तो बहुत कुछ समाधान हो सकता है।

अनेकान्त का तात्पर्य यही है कि प्रत्येक वस्तु स्व रूप से है और पर रूप से नही है। एक व्यक्ति ज्ञानी है तो वह अपने ज्ञान से है, किन्तु पर के ज्ञान से नही है।

रामाराव—तब ऐसा भी कहा,जा सकता है कि साधु का जीवन है भी और नही भी।

आचार्यश्री—ठीक है, जैन विधान से है और अन्य विधानों से नही।

रामाराव—जैन साधु त्यागी होते हुए और आत्मसाधना में रत रहते हुए समाजोत्थान का काम भी करते हैं। किन्तु लोग इस बात को नही जानते, ऐसा क्यों है ?

आचार्यश्री—हम जो काम करते है, प्रचार के उद्देश्य से नही करते। अथवा यो माना जा सकता है कि हमारा प्रचारतन्त्र इतना सक्रिय नही है।

रामाराव—ईसाई मिशनरियों का थोड़ा-सा कार्य भी प्रचार पा लेता है।

आचार्यश्री—उनका तन्त्र प्रबल है और वे छोटी-छोटी बातों व कार्यों को भी प्रकाश मे लाने के लिए जागरूक हैं।

रामाराव—आपके सघ के अतिरिक्त दूसरे सम्प्रदायो में इतना त्याग व सेवा नही हे। ईसाइयो मे सेवा है, पर त्याग नही है। हिन्दू सन्यासियों में त्याग है तो सेवा नही है। वे हिमालय की कन्दराओ में चले जाते हैं।

आचार्यश्री—दिल्ली मे अणुव्रती सघ के अधिवेशन के बाद लोग हमें कुछ जानने लगे हैं।

रामाराव—वास्तविकता का प्रचार न होने से कई प्रकार की गलतफहमिया फैल सकती हैं। आपके जो विभिन्न सिंघाडे (Groups) देश के भिन्न-भिन्न भागो में विचरण करते हैं। यदि उनके विचरण और उनके द्वारा क्रियमाण कार्यों का विवरण ससार को ज्ञात हो तो बड़ा अच्छा असर हो सकता है। आपके यहा से ही जाना जा सकता है कि साधु कितने नि स्वार्थ भाव से जनता के नैतिक उत्थान के लिए इस प्रकार प्रयत्नशील हैं। यह कम महत्त्व की बात नही है।

सवाद . विदेश के प्रबुद्धजनो के साथ

आचार्य तुलसी : डॉ. हर्बर्ट टीसी

डॉ. हर्बर्ट—पाश्चात्य देशों का यद्यपि भौतिक विज्ञान की ओर बहुत अधिक झुकाव है। किन्तु इस समय वे कुछ-कुछ आध्यात्मिकता की ओर झुकते हुए से प्रतीत होते हैं। वर्तमान गतिविधि को देखते हुए पाश्चात्य देशों मे कम्यूनिज्म का प्रसार होगा या अध्यात्मवाद का? आपको कैसा लगता है?

आचार्यश्री—अध्यात्मवाद वास्तविक, व्यापक व स्थायी सुख का कारण है। अध्यात्म से प्राप्त होने वाला सुख ही शाश्वत और पदार्थ-निरपेक्ष सुख है। कम्यूनिज्म सामयिक माग की पूर्ति करता है। बाह्य—भौतिक सुविधाओं को लेकर उभरने वाली समस्याओं का सामयिक हल है यह लोगो की मान्यता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यूरोपीय या पाश्चात्य दृष्टिकोण अब तक भी जड़वादी व भूत-प्रधान है। उस स्थिति में एक बार तो वहा भौतिक दृष्टिकोण के आधार पर खड़े कम्यूनिज्म के प्रसार की ही अधिक सम्भावना है। उसमें टिकाऊपन हो यह सम्भव नही लगता।

डॉ. हर्बर्ट—क्या भारतवर्ष में भी कम्यूनिज्म का प्रसार होगा?

आचार्यश्री—भारतवर्ष मूलत अध्यात्मप्रधान देश रहा है। भारतीय जीवन का मूल आधार आध्यात्मिकता है। आज भी उससे आध्यात्मिकता सर्वथा परे नही हुई है। वैज्ञानिक चकाचौध के बावजूद भारतीय लोकजीवन से धर्म-भावना व अध्यात्म-मनोवृत्ति का अस्तित्व लुप्त नही हुआ है। इस दृष्टि से मुझे ऐसा लगता है कि भारत में कम्यूनिज्म टिक नही पाएगा।

डॉ. हर्बर्ट—चीन भी प्राचीनकाल मे एक आध्यात्मिक देश था। किन्तु आज वहा कम्यूनिज्म का व्यापक प्रसार है। ऐसा क्यो हुआ!

आचार्यश्री—वहा अध्यात्म के पोषक तत्त्वा का अभाव हो गया। पोषण के अभाव में अध्यात्म का पल्लवन रुक गया। फलत वहा जनता का दृष्टिकोण बदल गया। एक छोटे बच्चे के लालन-पालन की तब तक आवश्यकता रहती है, जब तक वह जवान नही हो जाता। उसी तरह अध्यात्म को भी पोषण की आपेक्षा थी। भारतवर्ष में आज भी उसको पोषण मिल रहा है तथा भारतीय जीवन के कण-कण

में उसका अव्यक्त प्रभाव व्याप्त है।

डॉ॰ हर्बर्ट—आप जिस धर्म-भावना का प्रसार कर रहे हैं, क्या उससे कम्यूनिज्म को दवा लेगे ? जबकि आपके पास प्रचारात्मक बाह्य साधनों का अभाव सा लगता है।

आचार्यश्री—हमारे प्रचार का आधार सच्चाई व वास्तविकता है। हमारा ऐसा खयाल है कि जो कार्य सच्चाई, ईमानदारी व वास्तविकता को सामने रखते हुए होगा, वह स्थायी तथा प्रभावशाली होगा। उसमें सफलता भी मिलेगी। हो सकता है बाह्य साधनों के अभाव में वह उतनी शीघ्रता से न हो। फिर भी सत्य के पीछे सफलता है। दूसरी बात यह है कि हमारा उद्देश्य सख्या बढ़ाना नही है जैसा कि कम्यूनिष्टों का है। हमारी ऐसी धारणा है कि यदि एक-एक व्यक्ति समझे तो भी अच्छा है। *जितने लोग समझेगे, उनकी आत्मा का उत्थान होगा। व्यक्ति का सुधार ही समाजसुधार* का जनक है।

डॉ॰ हर्बर्ट—तिब्बत में पुनर्जन्म के विषय में ऐसा विश्वास है कि एक दलाईलामा (प्रधान लामा) की जब मृत्यु होती है तो उसी की आत्मा आगे होने वाले लामा मे प्रविष्ट हो जाती है। क्या आप भी ऐसा मानते हैं कि विगत आचार्य की आत्मा भावी आँचार्य मे प्रविष्ट हो जाती है और इस प्रकार वह विगत आचार्य ही अग्रिम आचार्य के रूप मे आता है।

आचार्यश्री—हमारा ऐसा विश्वास नही है। हम मानते हैं तेरापन्थ का आचार्य ओजस्वी, तेजस्वी और शक्तिसम्पन्न होगा। किन्तु अतीत में हुए आचार्य ही अग्रिम आचार्य के रूप मे आते हैं, उन्ही की आत्मा पुन यहा आती है ऐसा हम नही मानते।

डॉ॰ हर्बर्ट—लगभग ५० वर्ष पूर्व रोमन कैथोलिक सम्प्रदायवालो मे ऐसी भावधारा उत्पन्न हुई कि वे जो कुछ कहते है वह सर्वथा मान्य, विश्वसनीय व सत्य है। उसमें अविश्वास या भूल की कोई सभावना नही है। किन्तु इस बात से लोग आश्वस्त नही हो पाए। क्योंकि सामान्यत मनुष्य से भूल का होना सम्भव है। क्या आप भी आचार्य के विषय में ऐसा मानते है कि वे जो कुछ कहते हैं वह एकान्तत सत्य ही होता है ?

आचार्यश्री—यद्यपि सघ के लिये अनुयायियो के लिये आचार्य ही एकमात्र प्रमाण हैं। उनका कथन या आदेश उनके लिए सर्वथा मान्य व स्वीकार्य होता है। किन्तु हम ऐसा नही मानते कि आचार्यों से कभी कोई भूल होती ही नही। जब तक वे सर्वज्ञ नही होते तब तक भूल की सम्भावना बनी रहती है। यदि ऐसा प्रसग हो

तो आचार्य को वह बात निवेदन की जा सकती हे । वे उस पर उचित ध्यान भी देते हैं।

डॉ॰ हर्बर्ट—क्या एक पूर्ववर्ती आचार्य द्वारा बनाए गए नियमो में परिवर्तन की सभावना की जा सकती हे ?

आचार्यश्री—ऐसा सम्भव है । पूर्ववर्ती आचार्य उत्तरवर्ती आचार्य के लिये ऐसा विधान करते हैं कि देश, काल, भाव, परिस्थिति आदि को देखते हुए वे व्यवस्थामूलक नियमो मे परिवर्तन करना चाहे तो कर सकते हैं। किन्तु साथ में यह ध्यान रखना भी आवश्यक हे कि धर्म के मोलिक नियमों में परिवर्तन करने का अधिकार किसी को भी नही है। वे सर्वदा व सर्वथा अपरिवर्तनशील होते है।

डॉ॰ हर्बर्ट—क्या जीव पुद्गल पर कुछ असर कर सकता है ?

आचार्यश्री—हा जीव पुद्गलो को अनुकूल-प्रतिकूल अनुवर्तित या परिणत करने का सामर्थ्य रखता हे। स्थूल पुद्गलो पर तो जीव का प्रभाव रहता ही है। कर्म जैसे सूक्ष्म पुद्गल भी जीव द्वारा गृहीत और उत्सर्जित होते रहते हैं। जीव कर्मपुद्गलो का बन्धन भी करता ह और निर्जरण भी करता है।

डॉ॰ हर्बर्ट—जीव मनुष्य के शरीर में कहा है ?

आचार्यश्री—जीव शरीर में सर्वत्र व्याप्त ह। वह शरीर के किसी स्थान विशेष पर नही ह। उसका प्रमाण भी हे। जब शरीर के किसी भी अग-प्रत्यग पर चोट लगती है, तत्काल पीड़ा अनुभव होती है। पूरे शरीर में जीव न हो, तो पीड़ा का अनुभव कोन करे ?

डॉ॰ हर्बर्ट—जब सब जीव ससार-भ्रमण शेष कर लेंगे तब क्या होगा ?

आचार्यश्री—बिना योग्यता व साधना के सब जीव कर्ममुक्त नही हो सकते। जीव सख्या मे इतने हैं कि उनका कोई अन्त नही है। उनमें से बहुत कम जीवो को वह सामग्री उपलब्ध होती है, जिससे वे मुक्त हो सके। इस बात को हम एक प्रतीक के रूप में समझें। यह ससार है। इसमें करोड़ों-करोड़ों लोग हैं। करोड़ो लोगो मे लाखो शिक्षित हैं। लाखों मे हजारो विद्वान् या कवि हैं। हजारों में भी ऐसे बहुत कम है जो स्वानुभूत बात कहने वाले तत्त्वज्ञानी हों। ऐसी स्थिति मे यहा अध्यात्मरत योगी कितने होगे ? मोक्ष या मुक्ति के लिये पूर्णरूपेण अध्यात्म साधना अपेक्षित है। जब ऐसी साधना करने वाले मनुष्यों की सख्या ही सीमित है तो सबको मोक्ष की प्राप्ति कैसे सभव है ? फिर भी यदि कल्पना की जाए कि सब का मोक्ष हो जाए तो हानि क्या है ? सारा झगड़ा व सघर्ष ही मिट जाएगा। किन्तु ऐसा कभी होगा नही।

डॉ० हर्बर्ट—तब पुद्गल कहा रहेंगे ?

आचार्यश्री—पुद्गल आकाश मे रहेंगे। वे तो जीवों के बिना भी इधर-उधर स्थितिमान या गतिमान रहते हैं। मनुष्य पुद्गलों की चिन्ता क्यों करे, वह अपने कर्म काटने की चेष्टा करे। कर्म काटने का कार्य बड़ा विषम है, खड्ग की धारा पर चलने जैसा है।

डॉ० हर्बर्ट—क्या इस उपलब्ध दृष्ट जगत के अतिरिक्त और भी कोई जगत है ?

आचार्यश्री—जो दृश्य है, ससार उतना ही नही है।

डॉ० हर्बर्ट—क्या उन अन्य लोको के प्राणी इस लोक मे जन्म पा सकते हैं ?

आचार्यश्री—हा, पा सकते हैं।

डॉ० हर्बर्ट—क्या कभी ऐसा हो सकता है जब पिछले जन्म की बाते याद आ जाए ?

आचार्यश्री—हा ऐसा होना सम्भव है। इसे जातिस्मरण ज्ञान कहते है।

डा० हर्बर्ट—क्या कभी ऐसा हुआ है, जब किसी ने अपना पिछला जन्म देखा हो ?

आचार्यश्री—हा आगमों मे ऐसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं। आजकल मैं 'आयारो' नामक आगम का वाचन कर रहा हू। उसमे भी इस प्रकार का वर्णन है।

डा० हर्बर्ट—समस्त विश्व सान्त है या अनन्त ?

आचार्यश्री—विश्व के दो विभाग हैं—लोक और अलोक। यदि दोनों को ले तो अनन्त है यदि केवल लोक को लें तो वह सान्त है। अलोक में केवल आकाशमात्र है। उसे अलोकाकाश कहते हैं। वह अनन्त हैं। लोक म आकाश के अतिरिक्त धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल द्रव्य भी हैं। लोकअधिष्ठित आकाश का नाम लोकाकाश है। वह सान्त है।

डा० हर्बर्ट—जब आत्मा शरीर छोड़ कर जाती है, तब वह किस आकार मे जाती है ?

आचार्यश्री—आत्मा या जीव का तो कोई आकार होता ही नहीं। ससारी जीव जब पार्थिव शरीर को छोड़कर जाते है, तब कार्मण व तैजस शरीर उनके साथ रहते हैं। स्थूल शरीर छोड़कर जाने की दो पद्धतिया मानी गई हैं—एक पद्धति के अनुसार गोली के भड़ाके की तरह जीव एक शरीर से दूसरे शरीर में पहुच जाता है। दूसरी पद्धति के अनुसार जीव एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में जाता है तब छोड़े जाने वाले शरीर से आगे ग्रहण किये जाने वाले शरीर तक आत्म-प्रदेशों का मकड़ी

के जाले की तरह ताना-बाना फल जाता है। आत्म-प्रदेश उधर जाते हैं ओर लौटकर आते हैं। इसका प्रमाण यह है कि कभी-कभी मरणावस्था मे नाड़ी कुछ देर के लिये चली जाती है, फिर आ जाती है और फिर चली जाती है। यह ताने-बाने की प्रक्रिया मारणान्तिक समुद्घात मे होती है।

डा० हर्वर्ट—उसमें कितना समय लगता है?

आचार्यश्री—अर्न्तमुहूर्त की अवधि मानी गई है।

डा० हर्वर्ट—क्या ताना-वाना तोड़े विना किसी जीव के आत्म-प्रदेशों का अपने शरीर से बाहर प्रसार हो सकता है?

आचार्यश्री—हा हो सकता है। आयुष्य की अल्पता और उपभुज्यमान वेदनीय कर्म की अधिकता के कारण केवली के आत्म-प्रदेश अखण्ड भूमण्डल मे फैलते हैं। वे आत्म-प्रदेश उस शरीर मं रहते हुए सर्वत्र प्रसृत होते हैं। इस प्रक्रिया का नाम केवलि-समुद्घात है। प्रत्येक आत्मा के आत्म-प्रदेश इतनी मात्रा में होते हैं कि वे समस्त लोक में फैल सक्ते हैं।

[उपर्युक्त विपया के अतिरिक्त आचार्यश्री ने डा० हर्बर्ट कोण मुक्कार महामन्त्र का अर्थ तथा कतिपय अन्य ज्ञातव्य वातें भी समझाईं।]

दिनाक ६ अक्टूबर, १९५०
हासी हरियाणा

आचार्य तुलसी : फेलिक्स वाल्यी

[हगरी के सुप्रसिद्ध विद्वान तथा प्राच्य सस्कृति विषयक उच्च शिक्षा कौंसिल के प्रतिष्ठाता एव सचालक डॉ फेलिक्स वाल्यी और आचार्यश्री तुलसी के बीच आध्यात्मिक विषयो पर महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर हुए।]

वाल्यी—जैन साहित्य में योग का उल्लेख कब से मिलता है ? तथा प्राचीनतम परम्पराओ से इसका क्या सम्बन्ध है ?

आचार्यश्री—प्राचीनतम जैन साहित्य म योग का उल्लेख है। मानसिक तथा आध्यात्मिक शक्तियो के विकास तथा इन्द्रिय-निग्रह के लिए योगाभ्यास किया जाता था।

वाल्यी—जैन साधुओ को शिक्षण कैसे मिलता है ?

आचार्यश्री—आचार्य तथा ज्ञानवृद्ध साधु-साध्वियों के द्वारा विद्यार्थी साधु साध्विया का शिक्षाक्रम चलता है। विद्यादान की इच्छा रखने वाले अवैतनिक पण्डितों के द्वारा भी यह कार्य एक सीमा तक सम्पन्न होता है।

वाल्यी—इन्द्रिय-निग्रह की दिशा में साधना की प्रक्रिया क्या है ?

आचार्यश्री—आत्मा और शरीर मे भेद का ज्ञान होना तथा बाह्य विषयों की ओर दौड़ने वाली इन्द्रियो को अपने विषय-ग्रहण के बाद राग-द्वेष से उपरत रखने का प्रयत्न करना साधना की प्रक्रिया है।

वाल्यी—साधुओ की आध्यात्मिक भावना को पुष्ट करने के लिए प्रतिदिन क्या किया जाता है ?

आचार्यश्री—साधुओं की दैनिक-क्रियाए सयमपूर्वक आहार करना, सयमपूर्वक बोलना तथा आत्मचिंतन प्रतिक्रमण स्वाध्याय व ध्यान आदि हैं। इनके द्वारा आध्यात्मिक भावना पुष्ट होती है।

वाल्यी—किन आवश्यक नियमों के आधार पर किसी पुरुष या स्त्री को साधु के रूप में दीक्षित किया जाता है ?

आचार्यश्री—साधुत्व की अर्हता के लिए कुछ नियम निर्धारित हैं—

१ त्याग की वास्तविक भावना।

२ साधु के आचार का समुचित ज्ञान।

३ जीव और अजीव का ज्ञान।

४ कर्म-बन्धन , कर्म-निरोध और कर्म-निर्जरण के कारण आश्रव, सवर और निर्जरा का ज्ञान।

५ कम से कम साधिक ८ वर्ष की आयु।

६ स्वस्थ शरीर।

७ अभिभावकों की स्वीकृति।

वाल्यी—क्या आत्म-साधना के लिए केवल जैनसूत्रों का ज्ञान ही पर्याप्त है ?

आचार्यश्री—आत्म-साधना और आत्म-अभ्युदय के लिए जैन सूत्रों का ज्ञान निस्सदेह पर्याप्त है। किन्तु व्यावहारिक ज्ञान की भी उपेक्षा नही की जा सकती।

वाल्यी—केवल सूत्र पाठ का ज्ञान और चारित्र— इन दोनों मे से किसका महत्त्व अधिक है ?

आचार्यश्री—जैन दृष्टिकोण से सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र दोनों की महत्ता बराबर है।

वाल्यी—जैन योग का चरम लक्ष्य क्या है ?

आचार्यश्री—जैन योग का चरम लक्ष्य मोक्ष अर्थात् सकल कर्मों के बन्धनो से मुक्ति प्राप्त करना है।

वाल्यी—काम-वासना को जीतने के क्रियात्मक उपाय क्या हैं ?

आचार्यश्री—काम-वासना पर विजय प्राप्त करने के लिए क्रियात्मक उपाय है—

१ वासना को उत्तेजित करने वाली बातचीत न करना।

२ दृष्टिसयम रखना।

३ मादक द्रव्यों एव उत्तेजक पदार्थों का सेवन न करना।

४ काम-वासनात्मक बातों की स्मृति से बचना।

५ गरिष्ठ एव अधिक भोजन न करना।

६ मन को धार्मिक स्वाध्याय ध्यान एव अन्य सत्-प्रवृत्तियों मे सलीन रखना।

वाल्यी—जैन युवकों का सेक्स के प्रति क्या दृष्टिकोण है ? स्त्री और पुरुष के बीच सम्बन्धों की सीमा क्या है ? क्या वर्तमान का वातावरण उन्हें प्रभावित करता है ?

आचार्यश्री—भारत के अन्य धर्मावलम्बी युवकों का सेक्स के प्रति जैसा दृष्टिकोण है, वैसा ही जैन युवको का है। जैन युवकों को जैन सन्तों का मार्गदर्शन और सयम का उपदेश बराबर मिलता रहता है। इस दृष्टि से प्राय युवक उन्मुक्त यौन सम्बन्धों से परहेज रखते हैं। जैन परम्परा में जीने वाले युवक सामान्यत किसी अपरिचित स्त्री के साथ स्वच्छन्द वार्तालाप पर भी नियत्रण रखते हैं। अन्य सीमाओं का अतिक्रमण तो सहज रूप में वर्जित है ही।

वाल्यी—क्या साधु स्त्री-ससर्ग से दूर रहकर पूर्ण सतुष्ट हैं?

आचार्यश्री—सयम में जो आनन्द है, वह स्त्री-सहवास से कभी प्राप्त नही हो सकता। साधु अपने आदर्शों पर चलते हुए पूर्ण प्रसन्न प्रतीत होते हैं।

वाल्यी—साधु चारित्र के नियमों का किस तरह उल्लघन करते हैं? कभी कभी साधुओं के प्रति अनुशासनात्मक कदम उठाना कैसे आवश्यक हो जाता है?

आचार्यश्री—यदि अशुभ कर्मो के उदय के कारण कोई साधु साधारण चारित्रिक अतिक्रम कर लेता है तो उसे गलती के अनुसार प्रायश्चित्त करना पड़ता है। अगर वह विशेष रूप से दोष-सेवन कर लेता है तो उसे सघ से बाहर भी किया जा सकता है।

वाल्यी—क्या जैन सम्प्रदाय में दम्पत्ति के लिए शील पालन आवश्यक समझा जाता है? क्या विवाह को धार्मिक सस्कार माना जाता है?

आचार्यश्री—कोई व्यक्ति गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी ब्रह्मचर्य का पालन करे तो बहुत उत्तम है। किन्तु उसके लिए पूर्ण शीलव्रत का पालन अनिवार्य नहीं है। विषय-सेवन की मर्यादा उसके लिए भी जरूरी मानी गई है तथा परस्त्रीगमन व वेश्यागमन आदि को सर्वथा निषिद्ध माना गया है।

यद्यपि जैन दृष्टिकोण से विवाह धार्मिक सस्कार नही है। तथापि सामाजिक जीवन में सुव्यवस्था एव सयम का प्रभाव बना रहे, इस दृष्टि से विवाह-सस्था का महत्त्व भी स्वीकार किया गया है?

वाल्यी—क्या साधुओ में परस्पर ईर्ष्या नही होती। क्या उनमें परस्पर आदर-सत्कार के लिए प्रतिस्पर्द्धा की भावना भी नही होती? क्या गुरु के प्रति उनकी पूर्ण आज्ञाकारिता है?

आचार्यश्री—साधुओं मे आध्यात्मिक उन्नति व स्वाध्याय-ध्यान के क्षेत्र में परस्पर प्रतिस्पर्द्धा होती है, परन्तु आदर-सत्कार की प्राप्ति के लिए प्रतिस्पर्द्धा रखना अतिक्रम माना गया है। भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित महाव्रतो की आराधना

के साथ गुरुजनों की आज्ञा का पूर्णरूपेण पालन करने की उनके लिए अनिवार्यता है।

वाल्यी—क्या गुरु कभी गलती नही कर सकते ? क्या वे पूर्ण सतोषी होते है ? क्या वे मानसिक दु ख, बुरे स्वप्न एव चिंताओं से पूर्ण मुक्त है ? क्या उनके लिए हमेशा स्वप्नरहित गहरी नींद लेना आसान है ? क्या उन्हें अनिद्रा रोग नही होता है ? क्या उन्हें हमेशा स्वास्थ्यवर्धक आहार मिल जाता है ? क्या उन्हें कभी कब्ज की शिकायत नही होती ?

आचार्यश्री—हमारे दृष्टिकोण से धार्मिक गुरु भी मुक्तिपथ के पथिक है। उनसे कभी गलतिया हो सकती हैं। उनके लिए उन्हें भी प्रायश्चित्त करना पड़ता है।

हमारे विचार से आत्म-सन्तोष ही सच्चा सुख है। जो लोग अपनी स्थिति मे सन्तुष्ट रहते है वे निश्चत रूप से पूर्ण सुखी होते हैं। शारीरिक कष्टों के विषय मे निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता है। क्योंकि शारीरिक रोग एव कष्ट वातावरण एव परिस्थितियों पर भी निर्भर करते हैं।

साधारणतया वे मानसिक चिंताओं एव बुरे स्वप्नों से मुक्त रहते हैं। उनकी निद्रा नियमत गहरी ही हो, ऐसी कोई नियामकता नही है। वे जितनी देर सोते है उसी में सतोष करते हैं।

साधु भिक्षा द्वारा भोजन प्राप्त करते हैं। उनके लिए भोजन की अतिरिक्त रूप में कोई व्यवस्था नही होती। इसलिए यह नही कहा जा सकता कि उन्हें प्राप्त होने वाला भोजन हमेशा स्वास्थ्यकर एव पुष्टिप्रद ही होता है।

वाल्यी—क्या साधु शारीरिक कष्टों से पीड़ित होते हैं ? उनसे मुक्त होने के लिए वे क्या उपचार करते हैं ? विश्व की अशाति को देखते हुए भी नैतिक दृष्टि से क्या आपके हृदय मे दु ख की भावना जागृत नही होती ? क्या आप बुद्ध के समान ससार के दु खों में हाथ नही बटाते ?

आचार्यश्री—साधु वेदनीय कर्म से मुक्त नही होते, इसलिए उन्हें शारीरिक रोग भी होते हैं और वे अपने नियमानुसार उनका उपचार भी करते हैं। रोगजनित कष्ट को शातिपूर्वक सहन करना है। या उसे दूर करने के लिए औषधि सेवन करना हे यह साधु की अपनी इच्छा और सहनशीलता पर निर्भर करता है।

साधु ससार में रहते हुए अपनी साधना करते हैं। अतएव वे वैश्विक समस्याओ से अनजान नही रहते। वे उन दु खों के वास्तविक कारणों को खोजने का प्रयत्न करते हैं। जनता क नैतिक स्तर को ऊचा उठाने में भी उनका योगदान रहता है।

उनका लक्ष्य आत्म-साधना के साथ अहिंसा, सत्य एव अपरिग्रह द्वारा मानव-जाति का अधिक से अधिक कल्याण करना है। वे सासारिक दु खों के मूल कारण को मिटाने म विश्वास करते हैं। इस विश्वास के आधार पर चरित्र निर्माण का काम करते हे।

वाल्यी—भारतवर्ष से बौद्ध-धर्म के उठ जाने एव जाति-पाति के रहते हुए भी जनधर्म के बचे रहने के विषय म आपके क्या विचार है ?

आचार्यश्री—एक समय था जब जैन और बौद्ध धर्म के अस्तित्व पर सकट के बादल मडराए तथा वैदिक धर्म प्रखरता के साथ सामने आया। उस समय बौद्ध लोग सामजस्य का रास्ता नही अपना सके। फलत उन्हे भारत से बहिर्गमन करना पडा। जन आचार्यो ने कट्टरता का मार्ग छोड लचीलपन की नीति अपनाई। उन्होने जाति आर धम को भिन्न रूप म स्वीकार किया। परिस्थितिवश उनके अनुयायियो ने वैदिक परम्पराओ को भी सामाजिक दृष्टि से आत्मसात कर लिया। यही कारण हे कि जेन धम अधिक प्रभावोत्पादक नही होते हुए भी अपने अस्तित्व को भारत मे सुरक्षित रख सका।

वाल्यी—आप साधुओ के आदर्श की क्या परिभाषा करते हे ? क्या वर्तमान विश्व म साधुओ का होना लाभप्रद हे ? वे ससार को किस तरह प्रभावित करत हे ?

आचार्यश्री—अहिंसा सयम ओर तपस्या साधुता के आदर्श है। साधु अत्यन्त सीमित साधनो से अपना जीवन चलाते हैं।

आज का विश्व हिंसा और असयम के भयकर जाल मे फसा हुआ हे। उसको विनाश-मार्ग से बचाने के लिए आत्म-सयमी साधु प्रकाश-स्तभ की तरह आवश्यक हे। साधु की आवाज उनकी अन्तरात्मा की आवाज है। इसीलिए उनके आदेशो एव कार्यो का लोगों पर प्रभाव पड़ता है। वे जो कुछ कहते हे उसे पहले अपने जीवन मे उतारते हैं।

वाल्यी—जैनदर्शन म ध्यान का क्या स्थान है ? व्यावहारिक जीवन में उसका क्या महत्व है ?

आचार्यश्री—जैनदर्शन मे ध्यान का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। चित की एकाग्रता और आत्म-निरीक्षण के लिए ध्यान की साधना प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी बनती है।

१ जनवरी १९५१

आचार्य तुलसी : डॉ. निकम

[प्रो निकम और प्रो महादेवन तारीख २५ सितम्बर को आचार्य श्री तुलसी के प्रात कालीन प्रवचन म उपस्थित हुए। व्याख्यान में स्याद्वाद का प्रसग आया। आचार्यश्री ने स्याद्वाद पर किए जाने वाले आक्षेपो का निराकरण करते हुए उसक व्यावहारिक महत्त्व पर भी प्रकाश डाला था। आचार्यश्री का प्रवचन मुन दानो विद्वान प्रभावित हुए। व आचार्यश्री के पास पहुचे आर तत्वचर्चा मे सभागी यन।]

श्री महादेवन—स्याद्वाद को सशयवाद या अनिश्चयवाद मे नही मानता। सीमित ज्ञानवाल जनसाधारण क लिए अनेकान्तवादी दृष्टिकोण ही सभव ओर ग्राह्य है। पर एक सवज्ञ या केवली किसी वस्तु को एकान्त दृष्टिकोण मे देखने मे समर्थ होगा या नही ?

आचार्यश्री—नही, ऐसा नहीं हो सकता। केवली भी अनेकातवादी रहेगे। स्याद्वाद तो वस्तुतत्त्व को समझने और समझाने की एक प्रणाली मात्र है। ज्ञान की तारतम्यता से उसका कोई सम्बन्ध नही है।

श्रीमहादेवन—अद्वैतवाद और जैनदृष्टिकोण मे क्या अन्तर है ?

आचार्यश्री—अद्वैतवाद सब तत्त्वो को एक ही मानता है। किन्तु जैनदृष्टिकोण सब तत्त्वो को एक भी मानता है ओर अनेक भी। पदार्थो मे जो समानता है द्रव्यत्व है उसकी अपेक्षा से सब पदार्थ एक हैं। पदार्थो मे जो विषमता ह उसकी अपेक्षा से सब पदार्थ अनेक भी हैं। अद्वैतवाद की भाषा मे सब पदार्थ एक ही है। जैनदर्शन की भाषा में पदार्थ एक भी है, पर एक ही नही है।

श्रीमहादेवन— अद्वैतवादी भी पारमार्थिक दृष्टिकोण से ही अभेद मानते है व्यवहारिक दृष्टि से तो वे भी भेद मानते है। व्यवहार में पदार्थ मात्र को एक कहने से व्यवहार लोप हो जाएगा। क्योकि अद्वैत या इस अभेद की स्थिति को सख्या के द्वारा कहा ही नही जा सकता।

आचार्यश्री—जैनदर्शन, पारमार्थिक दृष्टिकोण से भी सब पदार्थो को एक ही

नही मानता। जबकि अद्वैतवादी तत्वत सब कुछ एक मान लेते हैं। अद्वैतवाद और जैनदृष्टिकोण मे मौलिक अन्तर यही है।

श्रीमहादेवन—क्या ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार किये बिना धर्मपालन नही किया जा सकता ?'

आचार्यश्री—धर्मसाधना है, जबकि ईश्वरत्व की प्राप्ति साध्य है। जैनदृष्टिकोण के *अनुसार आत्मा ही सर्वथा निर्मल होकर परमात्मा हो जाती है। जैन सिद्धान्त* एक ईश्वर को नही मानता। चरम विशुद्ध आत्मा ही अन्तत परमात्मा का रूप धारण कर लेता है।

श्री महादेवन—केवल ज्ञान क्या है ?

आचार्यश्री—ज्ञानशक्ति पूर्ण विकसित होकर त्रिलोक और त्रिकाल की वस्तुओं को जान लेने मे समर्थ हो जाती है। उस निरावरण ज्ञान को ही केवल ज्ञान कहा जाता है। वह आत्मा का ही एक गुण है।

श्री महादेवन—केवलज्ञान शरीरमुक्ति से पहले सभव है ?

आचार्यश्री—केवलज्ञान निश्चित रूप से शरीरमुक्ति के पहले ही उत्पन्न होता है।

श्री महादेवन—केवलज्ञान प्राप्ति की अवस्था ही मोक्ष की अवस्था है या केवलज्ञान के बाद मोक्ष होता है ?

आचार्यश्री—केवलज्ञान प्राप्त होने के बाद ही मोक्ष होता है।

(आचार्यश्री ने चौदह गुणस्थानो का विस्तृत वर्णन करते हुए आत्मा की क्रमिक विशुद्धि के समस्त सोपानों का दिग्दर्शन कराया।)

श्री महादेवन—क्या मोक्ष प्राप्ति के लिए आत्मा का शरीर से पृथक होना आवश्यक है ?

आचार्यश्री—हा सर्व प्रकार के स्थूल और सूक्ष्म शरीरो से मुक्त होकर ही आत्मा मोक्ष की स्थिति को प्राप्त कर सकती है।

श्री महादेवन—आत्मा क्या शरीर के अनुसार बदलती रहती है ?

आचार्यश्री—हा, जैन दृष्टिकोण से आत्मा देहपरिमित है। आत्मा जब तक शरीरबद्ध रहेगी तब तक शरीर के आकार-परिवर्तन के साथ आत्मा का भी आकार बदलता रहेगा। मुक्तात्मा का कोई शरीर या आकार नही होता।

श्री निकम—जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण कैसा होना चाहिए, जिससे आत्मा को ऊपर उठाया जा सके ?

आचार्यश्री—प्रत्येक आत्मा का मुख्य लक्ष्य परमात्मा बनने का होना चाहिए। आत्मा का उत्तरोतर शुद्ध होते हुए सर्वथा शुद्ध हो जाना ही परमात्मा बन जाना है। आत्मशुद्धि के लिए अहिंसा आदि पाच व्रतो का पालन जरूरी हे। गृहस्थ जीवन में हिंसा से सर्वथा उपरत होना सभव नही लगता। वहा इच्छा न होने पर भी व्यक्ति को बाध्य होकर हिंसा तथा अन्य पापकारी प्रवृत्तियो मे प्रवृत्त होना पड़ता है। पर अनावश्यक और परिहार्य हिंसा का तो निवारण करते ही रहना चाहिए। बाध्य होकर पाप करना पड़े तो भी पाप को पाप ही समझना चाहिए। विचारो के क्षेत्र मे सबसे अदिक विश्रृखलता इस कारण हुई है कि लोग मजबूरी की हिंसा को अहिंसा समझने लगे हैं। हमारा मन्तव्य यह है कि गृहस्थ को अपने जीवन में अहिंसा का अधिकाधिक पालन करने के लिए सवेष्ट रहना चाहिए। बाध्यतापूर्वक जो हिंसा करनी पड़े, उसके प्रति दृष्टिकोण सम्यक् रहे। उस हिंसा को भी हिंसा ही समझना चाहिए। उसे अहिंसा मान लेने के भ्रमजाल मे नही पड़ना चाहिए। यह दृष्टिकोण हमे हमारे प्रथम आचार्य सन्त भीखणजी से प्राप्त हुआ है। अन्य जेन सम्प्रदायों में अहिंसा का इतना विशुद्ध विवेचन आपको मुश्किल से मिलेगा।

[अहिंसा के विवेचन मे दोनों दार्शनिकों ने गम्भीर अभिरुचि प्रकट की। आचार्यश्री ने विषय को अधिक स्पष्ट करने के लिए उन्हे एक चित्र दिखलाया। उसमे चूहे-बिल्ली जैसे बहु-प्रचलित और प्रचारित दृष्टात चित्रित थे। आचार्यवर ने उनसे पूछा—'अगर बिल्ली को मारकर या डराकर चूहे को बचाया जाए तो क्या वह अहिंसा होगी? लोग कहते हे कि चूहे निर्बल हैं। पर बिल्ली के खिलाफ जब मनुष्य भी चूहों से मिल जाएगे तो ये निर्बल कहा रहेग। मूल बात यह है कि कोई निर्बल हो या सबल जहा भी किसी प्रकार की हिंसा और बल-प्रयोग होगा वहा अहिंसा नही हो सकती। अहिंसा का आधार तो हृदय-परिवर्तन ही है।]

श्री निकम—में आचार्यश्री के विचारां से पूर्ण सहमति प्रकट करता हू।

श्री महादेवन—आपके विचार हृदयग्राही हें। मैं भी इनके साथ अपनी सहमति प्रकट करता हू।

आचार्यश्री—चार ओर धन कसाई और बकरा, व्यभिचारी और स्त्री—तीन दृष्टातों का यह एक चित्र है। प्रथम दृष्टान्त मं सन्तो की प्रेरणा से चोर ने चोरी छोडी यह धर्म हे? या सेठजी का धन बचा, वह धर्म हे?

श्री निकम—निश्चित रूप से चोर का चोरी छोड़ना ही धर्म है।

श्री महादेवन—सेठजी का धन बचना तो चोरी छोड़ने का एक

है। हमारा लक्ष्य किसी के धन को बचाना नहीं हो सकता।

आचार्यश्री—जीव-दया के सम्बन्ध में हमारे इस दृष्टिकोण को लेकर बहुत अधिक ऊहापोह मचा। हमारे मन्तव्य के अनुसार 'नहीं मारना' जितना निरापद है, 'बचाना' उतना निरापद नही हो सकता।

श्री महादेवन—निश्चय ही 'बचाने' की अपेक्षा 'नही मारने' का विशेष महत्व है। हम एक बार बौद्ध मन्दिर में गए वहा हमने देखा कि मन्दिर के बाहर काफी लोग पिंजरो मे पक्षिया को बद किये हुए खड़े हैं। दर्शनार्थी आते और कुछ रुपये देकर उनको छुड़ा देते। छूटे हुए पक्षी फिर पकड़ लिये जाते और उनको छुड़ाने के लिये फिर दानियों की जेबें खाली कराई जाती। जीव-दया का यह विकृत रूप इसीलिए दृष्टिगोचर होता है कि लोगो को अहिंसा के शुद्ध- स्वरूप का पता नही है। न तो वे अपने साध्य को ही जानते हैं और न ठीक साधन ही काम मे लाते हैं।

They have wrong conception of ends and use wrong methods'

श्री निकम—शास्त्रज्ञों का काम है वस्तुसत्य से अवगत करा देना। किस परिस्थिति में कौन व्यक्ति क्या करे और क्या न करे, यह तो करने वाले पर ही निर्भर करता है।

श्री महादेवन—गाधीजी ने राजनीति मे अहिंसा का प्रवेश कराया उसके विषय मे आपकी क्या धारणा है?

आचार्यश्री—जीवन के किसी भी क्षेत्र म अहिंसा का प्रवेश हो सकता है। पर पूर्ण अहिंसा के द्वारा राजनीति का सचालन नही किया जा सकता। अहिंसा का आधार हृदय-परिवर्तन है, जबकि राजनीति दड का आश्रय लेकर चलती है। अगर पूर्ण अहिंसक समाज की कल्पना की जाए तो फिर राजनीति की कोई आवश्यकता ही नही रह जाएगी।

२

[१ ॥ बज प्रो निकम और प्रो महादेवन पुन आचार्यश्री के सान्निध्य मे उपस्थित हुए। श्री निकम ने आचार्य श्री और साधु-समाज के दैनिक कार्यक्रम को जानना चाहा। आचार्यश्री ने साधुआ की दिनचर्या का सक्षिप्त दिग्दर्शन कराया। सूक्ष्म लिपिकला के पत्र देखकर वे बहुत आश्चर्यान्वित हुए।]

श्री निकम—धर्म के द्वारा साम्यवाद का प्रतिरोध कैसे किया जा सकता है?

आचार्यश्री—आज की परिस्थितिया स्वय साम्यवाद का प्रोत्साहन दे रही हैं।

अतिसग्रह और परिग्रहवाद साम्यवाद को नया धरातल दे रहा है। मनुष्य का दृष्टिकोण जब तक भौतिकता से आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख नही होगा वह आवश्यकता से अधिक सचय की प्रवृत्ति का परित्याग नही करेगा, तब तक साम्यवाद का प्रतिरोध सभव नही लगता। साम्यवाद को रोकने के लिए भौतिकवादी दृष्टिकोण को मूलत ही बदल डालने की आवश्यकता है। सामाजिक और आर्थिक ढाचे मे भी कुछ परिवर्तन आवश्यक होगा। अणुव्रती सघ इस दिशा में एक सही कदम है। आप भी इसके नियमोपनियम देखे। उनके बारे मे अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करें और सभव हो सके तो स्वय उन्हें अपनाए।

श्री महादेवन—जैन दृष्टिकोण के अनुसार अहिंसा का स्वरूप क्या है ?

आचार्यश्री—अहिंसा को समझने से पहले हिंसा को समझ लेना जरूरी है। जैनदर्शन के अनुसार जीव छह प्रकार के होते है। उनमे से किसी भी जीव की मनसा-वाचा-कर्मणा किसी प्रकार की हिसा करना हिसा है।

जैनदर्शन की सूक्ष्मता कहती है कि किसी प्रकार की असत् प्रवृत्ति का होना ही हिंसा है फिर चाहे वह किसी अन्य के लिए कष्टकारी हो या न हो।

[विदा होते हुए श्री निकम ने बताया कि वे अगले वर्ष अमेरिका जा रहे हैं। उन्होने आशीर्वाद पाने की इच्छा प्रकट की। श्री महादेवन अमेरिका के कर्नेल विश्व-विद्यालय में दो वर्ष तक अध्यापन कर चुके हैं। श्री निकम और श्री महादेवन ने तीन बैठकों में प्राय तीन चार घटे तक दार्शनिक विषयों पर आचार्यश्री से गभीर वार्तालाप किया।]

दिनाक ११ अक्टूबर, १९५१

आचार्य तुलसी : जे. आर. बर्टन

[अमेरिका के सुप्रसिद्ध और ईसाई धर्म के मर्मज्ञ विद्वान एव प्रचारक श्री जे आर. बर्टन तथा श्री डब्लू डी वेल्स भारत का सास्कृतिक अध्ययन करने आए। उन्होने आचार्यश्री से विभिन्न विषयो पर वार्तालाप किया।]

आचार्यश्री—क्या आपने जैन धर्म के सम्बन्ध म कुछ पढ़ा है ?

श्री बर्टन—स्कूल में अपने अध्ययनकाल के समय मैंने विश्व के समग्र धर्मो के इतिहास का तुलनात्मक अनुशीलन किया था। उस समय जैनधर्म के विषय म अमेरिकी विद्वानो द्वारा लिखित पुस्तके थोड़ी-सी पढ़ी हैं। आपके सम्प्रदाय के विषय में मैं विशेष रूप से जानना चाहता हू।

आचार्यश्री—हमारे सघ का नाम श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थ है। लगभग २०० वर्ष पूर्व इसकी प्रतिष्ठापना हुई। इसका लक्ष्य था—जैन धर्म के मौलिक आदर्शो का प्रतिपालन तथा प्रसार।

श्री बर्टन—ऐसा लगता है कि बीच के युग में जैनधर्म का सम्यक् परिपालन करने मे ढीलापन आ गया था। उसे दूरकर धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों को प्रकाश में लाने के लिये आपके सघ की स्थापना हुई। वास्तव में आपका सघ एक सुधारवादी सघ है। आपके धर्मग्रन्थ कौन-कौन-से हैं ?

आचार्यश्री—आयारो आदि ११ आगम हमारे मूल धर्मग्रन्थ हैं।

श्री बर्टन—क्या वे विभिन्न आचार्यों के बनाए हुए हैं ?

आचार्यश्री—नही, उनम भगवान महावीर की वाणी का सकलन है। बाद मे उनके आधार पर अन्यान्य ग्रन्थ भी बने हैं पर मूल आगम अर्हत्-भाषित ही है।

श्री बर्टन—क्या जैनधर्म में मूर्त्तिपूजा का विधान था ? अथवा अन्यान्य धर्मो की देखादेखी उसमें इसका समावेश हुआ।

आचार्यश्री—जैनधर्म के मौलिक सिद्धान्तों के अनुसार मूर्तिपूजा विहित नही है। धर्म का शुद्ध स्वरूप आत्मसाधना में है, बाहरी दिखावे का वहाँ महत्व नही है।

श्री बर्टन—मेरा कार्यक्षेत्र अमेरिका है। मैं भी इसे अपना काम समझता हू कि

प्रभु ईसा के सिद्धान्तों के मूलभूत सत्यस्वरूप का जनता में प्रचार करू। धर्म के नाम पर विशाल गिरजाघर तथा अन्यान्य आडम्बरमय वस्तुए मुझे ठीक नही जचती, पर वे आज ईसाईधर्म में आ गई हैं। ईसामसीह ने जो सदेश जगत को दिया, मैं उसे ससार में फैला देना चाहता हू। बाह्य रूप में ईसाई धर्म आज उन्नति के उच्चशिखर पर पहुचा हुआ लगता है, पर उसमें आत्मा नही रही है। मैं समझता हू कि यही बात आपके यहाँ जैनधर्म की भी हुई है। आपका सघ जैनतत्त्वो को विशुद्ध व वास्तविक रूप में प्रसारित करने का काम कर रहा है।

आचार्यश्री—हा, यही बात है। महावीर द्वारा प्रवर्तित धर्म-सिद्धान्तों का यथावत् पालन करते हुए हम उन्हें जन-जन तक पहुचाने के लिये प्रयत्नशील हैं।

श्री बर्टन—क्या आपको इसमें सफलता मिली ?

आचार्यश्री—हा बहुत कुछ अशों में मिली है।

श्री बर्टन—भारत भर मे सारे जैन कितने होगे ?

आचार्यश्री—रायशुमारी के अनुसार लगभग बीस लाख।

श्री बर्टन—उनमें तेरापन्थी कितने हैं ?

आचार्यश्री—लगभग चार लाख।

श्री बर्टन—यह प्रसन्नता की बात है कि आपको अपने प्रशसनीय ध्येय में सफलता मिली। जैनधर्म का मौलिक स्वरूप क्या है ?

आचार्यश्री—अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के परिपालन द्वारा आत्म-शोधन।

जैनधर्म में मनुष्य तो क्या पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, वनस्पति, मिट्टी, जल, अग्नि, आदि की भी हिंसा करना वर्जित है। किसी व्यक्ति को कायिक क्लेश देना ही हिंसा नहीं है, बल्कि किसी के मन को पीड़ा पहुचाना भी हिंसा में शामिल है।

श्री बर्टन—जो लोग साधु नही हैं, वे इन नियमो का पालन कर सकते हैं ?

आचार्यश्री—उनके लिए यह तो सम्भव नही है कि वे सम्पूर्णत इनका पालन कर सकें। पर वे यथाशक्ति इसके लिए प्रयास जरूर कर सकते हैं।

श्री बर्टन—मैं सोचता हू कि यदि विश्व के सब लोग इन्हें अपना लें तो आज की सब समस्याए और उलझनें समाप्त हो जाए। जैनधर्म हिन्दू-धर्म का अग है या उससे सर्वथा स्वतन्त्र ?

आचार्यश्री—सर्वथा स्वतन्त्र।

श्री बर्टन—मैंने बौद्धदर्शन में यह पढ़ा है कि तृष्णा या आकाक्षा को मिटाना

जीवन-विकास का साधन है। जैनदर्शन की इस विषय में क्या मान्यता है?

आचार्यश्री—जैनधर्म में भी वासना, तृष्णा, लिप्सा आदि का वर्जन करने का उपदेश है। आत्मा के शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति में ये दोष बड़े बाधक हैं।

श्री बर्टन—आपसे मैंने अपनी इस बातचीत के बीच जो कुछ सुना, इससे मुझे लगता है कि न्यू टेस्टामेण्ट में प्रभु ईसा ने जो कुछ कहा है, उसमें तथा आपके कथन में कोई अन्तर नही हे। ईसा के उपदेशों के सम्बन्ध में आपका क्या विचार है?

आचार्यश्री—अपरिग्रह और अहिंसा आदि अध्यात्मतत्त्वों के सम्बन्ध में जो कुछ उन्होंने कहा है, वह हृदयस्पर्शी है। भगवान महावीर ने कहा कि परिग्रह पाप का मूल है। इसी प्रकार ईसामसीह ने कहा है कि ऊट का सुई के छेद में से निकल जाना सम्भव है पर परिग्रही मनुष्य द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति कभी सम्भव नही।

श्री बर्टन—मैं समझता हू कि ससार ईसा के अनुसरण से ही सच्ची शान्ति पा सकता है। इससे विश्व के लोगों में भाईचारा सौहार्द और मैत्री भावना का सचार हो सकता है।

आचार्यश्री—जैन सन्तों की चर्या बहुत विलक्षण है। वे जीवन-यापन के लिए पैसा नही रख सकते। उनका काम भिक्षा से चलता है। उनके लिए कही अतिरिक्त रूप से भोजन तैयार नही होता। देने वाले अपना सकोच करें और शेष बचे पदार्थों से ही काम चलाए तो उनके घर से भिक्षा ली जा सकती है।

श्री बर्टन—इससे कभी-कभी शायद आपको भूखो रहना पड़ता होगा?

आचार्यश्री—कई बार ऐसे मौके आते रहते हैं।

श्री बर्टन—क्या आप तथा अन्य साधु साध्वीगण अपनी स्थिति से सन्तुष्ट व सुखी हैं?

आचार्यश्री—हम परम सन्तुष्ट, शान्त एव सुखी हैं। व्रत-पालन व सयम- साधना का आनन्द आत्म-सापेक्ष है वह बाह्य पदार्थों की अपेक्षा नही रखता।

श्री बर्टन—रुग्ण होने पर क्या आप डाक्टर के पास जाते है?

आचार्यश्री—रोग के सम्बन्ध में जानकारी करने के लिए जा सकते हैं। पर सामान्यत उससे किसी प्रकार की शारीरिक सहायता नही ले सकते। क्योंकि साधु का जीवन पूर्ण स्वावलम्बी होता है। गृहस्थ द्वारा की जाने वाली शारीरिक सेवा उनके लिए वर्जित है।

(साधु साध्वियों द्वारा तैयार की गई कलापूर्ण वस्तुए देखकर उक्त दोनो विद्वान बहुत प्रभावित हुये। नारियल से बने कलात्मक सुन्दर प्यालों को देख वे मुग्ध हो

गए। उनकी धारणा थी कि यदि वे प्याले अमेरिका म होते तो लोग इन्हे प्लास्टिक का बतलाते। वे इस बात पर विस्मित थे कि उनमे इतनी सुघड़ता व खूबसूरती कैसे ढाली गई है।

सूक्ष्माक्षरों में लिखे गए पत्र को देखकर उनके आश्चर्य का ठिकाना नही रहा। उन्होंने अमेरिका में ऐसी उत्कृष्ट कला कही नहीं देखी।

[अन्त में अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट करते हुए वे बोले—'आपने अपना बहुमूल्य समय हमें दिया, इसके लिये हम आपके आभारी हैं। हमें आपसे मिलकर बहुत हर्ष हुआ। आप द्वारा चलाए जा रहे नैतिक उत्थानमूलक आध्यात्मिक आन्दोलन की हम हृदय से श्लाघा करते हैं।]

२.

श्री बर्टन—आप धर्म-प्रचार किस प्रणाली से करते हैं?

आचार्यश्री—हम प्रवचन करते हैं, बातचीत करते हैं और साहित्य भी लिखते हैं। हमारे धर्म-प्रचार के यही माध्यम हैं।

श्री बर्टन—क्या आप धर्म-परिवर्तन भी कराते हैं?

आचार्यश्री—हमारा कार्य तो धर्म के सत्य तत्त्वों के प्रति व्यक्ति के मन में श्रद्धा और निष्ठा पैदा करना है, हृदय-परिवर्तन द्वारा व्यक्ति को आत्म-विकास के पथ का सच्चा पथिक बनाना है। हम मानते हैं कि व्यक्ति किसी भी उपासना पद्धति का प्रयोग करता हुआ आत्म विकास कर सकता है। केवल बाह्य परिवेश बदलने में मुझे श्रेयस की प्रतीति नही होती। क्योंकि धर्म का सम्बन्ध आत्म-स्वरूप के परिमार्जन और परिष्कार से है।

श्री बर्टन—ससार के सब लोग एक जैसे नही हैं। सबकी लगन, रुचि और झुकाव में अन्तर है। ऐसी स्थिति में धर्मापदेश कहा तक कार्यकर हो सकता हे?

आचार्यश्री—व्यक्ति के जीवन के विविध पहलुओ में एकरूपता नही है, यह सही है। पर जीवन का चरम लक्ष्य, जो तत्त्वत सबका एक है, उस ओर सबका झुकाव होना आवश्यक है। उपदेश द्वारा उसके लिये प्रयास किया जाता है और सदैव किया जाना चाहिये। ऐसा करने मे आशा यही की जाती हे कि लोगो के अन्तर-मन में यह बात पैठेगी। किस सीमा तक पैठेगी, यह पहले से निश्चय हो नही सकता। पूरी सफलता नही तो आशिक सफलता अवश्य मिलती है। सर्वथा प्रयास न करने का अर्थ एक अवश्य करणीय कार्य को बिना किए छोड़ देना होगा।

श्री बर्टन—प्रायश्चित्त का क्या अर्थ है ?

आचार्यश्री—अपने द्वारा हुए दोष के लिये मन मे पश्चात्ताप करना और अन्त शुद्धि के लिये तपस्या करना ।

श्री बर्टन—क्या अपने दोष की स्वीकृति मात्र पश्चात्ताप के रूप में पर्याप्त है ?

आचार्यश्री—दोष की स्वीकृति अन्त शोधन की पहली सीढ़ी है और अत्यन्त छोटे दोषों के लिए इसे पर्याप्त भी माना जा सकता है। किन्तु बड़ा दोष होने पर आत्मा की उज्ज्वलता के लिए आलोचना के साथ दण्ड-स्वरूप स्वेच्छा-पूर्वक तप साधना का विधान है। इससे यह बात प्रमाणित होती है कि किसी व्यक्ति को बलात् दण्ड नही दिया जाता, व्यक्ति उसे स्वय स्वीकारता है।

श्री बर्टन—श्रद्धा का क्या तात्पर्य है ?

आचार्यश्री—सत्य विश्वास का नाम श्रद्धा है।

श्री बर्टन—सत्य विश्वास किसके प्रति ?

आचार्यश्री—आत्मा के प्रति, परमात्मा के प्रति आध्यात्मिक तत्वो के प्रति।

श्री बर्टन—मैं समझ गया कि श्रद्धा का आध्यात्मिक स्वरूप क्या है। अब कृपया बतलाइए कि श्रद्धा का बाह्य चिह्न क्या है ?

आचार्यश्री—जिनके प्रति श्रद्धा हो, उनके प्रति सम्मान की अभिव्यक्ति ।

श्री बर्टन—श्रद्धा-प्रकटन का शारीरिक प्रतीक क्या हो सकता है ?

आचार्यश्री—श्रद्धेय के प्रति हाथ जोड़ना, उनके चरणों का स्पर्श करना, उनके वचनों में विश्वास रखना आदि।

श्री बर्टन—क्या आप उपवास में विश्वास करते हैं ?

आचार्यश्री—अवश्य। यह तपस्या का ही एक भेद है।

श्री बर्टन—केवल पानी पीकर ४० तथा ६० दिन का उपवास मैंने देखा है। ११ दिन का उपवास मैंने स्वय किया है। यहा ऊँचे-से-ऊँचा उपवास कितने दिन तक का हुआ है ?

आचार्यश्री—१०८ दिन तक का। उसमें पानी के अतिरिक्त कुछ नही लिया गया।

श्री बर्टन—आपके यहा पर आश्चर्यजनक उपवास हुए हैं।

आचार्यश्री—२२ दिन की ऐसी तपस्या भी हुई है जिसमें पानी भी नही लिया गया अर्थात् सब प्रकार के आहार का त्याग किया गया।

श्री बर्टन—विज्ञान तो यह नही स्वीकारता कि इतने दिन तक जल के बिना

कोई व्यक्ति जीवित भी रह सकता है।

आचार्यश्री—हमारे यहा तो यह प्रत्यक्ष घटित घटना है।

श्री बर्टन—हमारे ईसाईधर्म की भी मान्यता है कि सप्ताह मे दो बार उपवास अवश्य करना चाहिए।

आचार्यश्री—उपवास का प्रयोग बहुत अच्छा है। किसी से उपवास न हो तो वह खाने में सयम का प्रयोग कर सकता है। एक बात मैं आपको खास तौर से कहूगा कि मास मानव का खाद्य नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को उससे बचना चाहिये। ठडे देशो में रहने वाले लोग कहते है कि वे मासाहार के बिना नही रह सकते। सभवत. वे इसका सर्वथा परिहार न कर सके, किन्तु मास छोड़ने की वृत्ति उत्तरोत्तर बढ़े, यह आवश्यक है। इसलिए कम-से-कम सप्ताह में एक दिन मास वर्जन की शुरुआत आपको करनी चाहिये।

श्री बर्टन—मैं मानता हू कि मास-भक्षण कोई उत्तम कार्य नही है। तामसिक वृत्ति बढ़ाने के कारण यह आध्यात्मिक दृष्टि से बुरा है ही शारीरिक स्वस्थता की दृष्टि से भी हेय है। विदेश-प्रवास में तो हमारे लिए यह सम्भव नही कि हम सप्ताह में एक दिन भी मास को छोड़ सकें, क्योकि वहा पौष्टिक और ताजे फल तथा भोजन मिल नही सकता। अपने देश में हम इस ओर अवश्य प्रयास करेगे।

आचार्यश्री—आप इस दिशा में एक छोटा-सा लक्ष्य बनाकर चलना शुरू करे। एक दिन आपके लिए मास-परिहार की बात सहज हो सकेगी।

श्री बर्टन—कृपया बतलाइये कि जैन दृष्टि से मोक्ष क्या है?

आचार्यश्री—आत्मा पर चिपके कर्म-पुद्गलों के आवरणो को दूर कर आत्मा का अपने शुद्ध स्वरूप में आना ही मोक्ष है। वे आवरण आठ प्रकार के हैं—

ज्ञानावरण—जो ज्ञान को आवृत करता है।

दर्शनावरण—जो दर्शन को आवृत करता है।

वेदनीय—सुख-दुख के वेदन मे निमित्त बनता है।

मोहनीय—जो श्रद्धा और चारित्र को विकृत करता है

आयु—शरीर को आयु के बधन मे बाधे रखता है

नाम—जिससे सुन्दर या असुन्दर शरीर प्राप्त होता है

गोत्र—जिससे प्रतिष्ठा या अप्रतिष्ठा की स्थिति मिलती हे,

अन्तराय—जो अभीष्ट की प्राप्ति में अवरोध करता हैं

श्री बर्टन—क्या आप मानते हैं कि अनेक लोग मोक्ष जा सकते हैं?

आचार्यश्री—हा, अनन्त जा चुके हैं और अनन्त जाएगे।

श्री वर्टन—क्या मोक्ष नित्य, शाश्वत व सनातन है?

आचार्यश्री—ऐसा ही है।

श्री वर्टन—जिसकी मुक्ति नही होती, क्या वह ससार मे पुन आता है?

आचार्यश्री—ससार में आता क्या है, ससार मे ही रहता है। वह जन्म-मरण की प्रक्रिया से जो ससरण करता है, उसी का नाम ससार है।

श्री वर्टन—क्या प्रत्येक मनुष्य का यह प्रयास होना चाहिये कि वह बन्धनों से छूटे?

आचार्यश्री—क्या नही? बन्धन दुख है और बन्धन-मुक्ति के द्वारा आत्मा शाश्वत सुख व शान्ति को पा सकती है।

श्री वर्टन—क्या कर्त्तव्य ही धर्म है?

आचार्यश्री—धर्म हर स्थिति मे कर्त्तव्य है। पर सब कर्त्तव्य धर्म हो, यह आवश्यक नही है। सामाजिक जीवन मे रहते हुए व्यक्ति को पारिवारिक, सामाजिक आदि कई कर्त्तव्य ऐसे भी करने पड़ते हैं, जो धर्मानुमोदित नही होते। समाज की दृष्टि से तो वे कर्त्तव्य है, पर अध्यात्म-धर्म नहीं है। क्यों कि उनसे आत्म-विकास का लक्ष्य नही सधता।

श्री वर्टन—मैं भी अक्सर चर्च मे कहा करता हू कि हम जितने कर्त्तव्य करते है, वे सब भगवत्-प्राप्ति के लिये नही है। उनमे से अनेक कर्त्तव्य लौकिक हित या सुविधा से सम्बन्धित होते हैं। जब तक आत्मा का कालुष्य मिट नही पाता भगवत्-प्राप्ति या आत्म स्वरूप का अवबोध नही हो सकता।

आचार्यश्री—कुछ जैन भी धर्म और कर्त्तव्य की भेदरेखा को नही समझते। लोक-प्रवाह मे वे इस तरह बह रहे हैं कि लौकिक कर्त्तव्य या सामाजिक उत्तरदायित्व के कामो को भी धर्म से जोड़ रहे हैं।

श्री वर्टन—हमारे ईसाई धर्म में भी ऐसा ही हुआ। आत्मशुद्धिमूलक धर्म को भुलाकर बाहरी आडम्बर व कर्मकाण्ड में उसे गठित कर दिया गया। मैं इसे विकृति मानता हू।

जैनधर्म के सिद्धान्त वास्तव में बहुत ही मजे हुए व आत्म-कल्याणकारी हैं। कोई भी अध्यात्मवादी इन्हें अनुचित नही कह सकता। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि आपसे मुझे कुछ सीखने को मिला। इसके लिए मैं पुन आपकी सेवा में आऊगा।

आचार्य तुलसी : श्री वुडलैण्ड केलर

[अन्तर्राष्ट्रीय शाकाहारी मडल (International Vegetarian Union) के उपाध्यक्ष तथा यूनेस्को (UNESCO) के प्रतिनिधि श्रीवुडलैण्ड केलर (Woodland Keller) शाकाहारी एव अहिंसावादी लोगो से मिलने व विचार-विमर्श करने सपत्नीक भारत आए। बम्बई मे आचार्यश्री तुलसी के सपर्क मे आए। उन्होने आचार्यश्री के साथ विभिन्न विषयो पर बातचीत की।]

श्री केलर—भारत एक शाकाहार-प्रधान देश है। जैनधर्म में विशेष रूप से आमिष-वर्जन का विधान है। अत भारतवर्ष से तथा मुख्यत जैनो से हमारा एक सहज सम्बन्ध एव आत्मीयभाव जुड़ जाता है। मैंने जब से आपके बारे मे सुना है तब से दर्शनों की अभिलाषा थी। आज आपके दर्शन कर मुझे हार्दिक प्रसन्नता हुई।

श्रीमती केलर—आचार्यवर! आपके नेत्रों में जो ओज, आभा और आत्म तेज मै देख रही हू, वह अद्भुत है। मुझे बहुत लोगो से मिलने का अवसर मिला है, ऐसा ओज मैंने कही नही देखा। सचमुच आपके नेत्रों का सौन्दर्य, सुगठितपन और तेजस्विता अनूठी है।

श्री केलर—रूस विश्व की उलझनों अथवा समस्याओं के लिए साम्यवाद के रूप मे जो समाधान प्रस्तुत करता है, उसके सम्बन्ध में आपका क्या विचार है?

आचार्यश्री—साम्यवाद (कम्यूनिज्म) विश्व की सब समस्याओं का स्थायी और सही हल नही है। वह अर्थ-सम्बन्धी समस्याओं का एक सामयिक हल है। आर्थिक समस्याओं का सामयिक हल जीवन की समस्याओं को सुलझा सके, यह सभव नही लगता।

श्री केलर—क्या राजनीतिक कायदे और कानून से लोक-जीवन की बुराइयों और विकृतियों का उच्छेद हो सकता है?

आचार्यश्री—विकारों अथवा बुराइयो के मूलोच्छेद का सही साधन है हृदय-परिवर्तन। विकारों के प्रति व्यक्ति के मन में घृणा और हेयता के भाव पैदा होने से उसमे स्वत परिवर्तन आता है। हृदय बदलने पर जो बुराइया छूटती हैं, वे स्थायी

रूप से छूटती है। कानून या डडे के बल से जो बुराइया छुड़ाई जाती हैं, उनसे व्यक्ति तब तक दूर रहता है, जब तक उसके सामने डडे का भय रहता हे। ज्योही भय दूर होता है, व्यक्ति पुन विकारग्रस्त हो जाता है। क्योकि उसका मन विकारो को जघन्य या त्याज्य नही मानता। इस दृष्टि से यह मानना चाहिए कि विकारो के ध्वस का सही साधन हृदय-परिवर्तन ही है। कानून का भी एक क्षेत्र है। समाज में उसकी उपयोगिता है, पर हृदय-परिवर्तन जैसी बात वहा नही है। यही कारण है कि लोक-जीवन में व्याप्त विकारो और अनैतिक वृत्तियों के परिहार हेतु अणुव्रत-आन्दोलन के रूप में हम एक विशुद्ध नैतिक आन्दोलन चला रहे हैं। अपनी साधना के साथ हमारा यह भी उद्देश्य है कि जन-जीवन अनैतिकता और अनाचार से बचता रहे।

श्री केलर—ससार मे रहते यह सभव नही कि हिंसा के बिना जीवन चल सके। हिंसा के रहते व्यक्ति सपूर्ण सुखी कैसे बन सकता हे ?

आचार्यश्री—सम्पूर्ण और अव्याबाध सुख-प्राप्ति के लिए तो यह अपेक्षित है ही कि हिंसा का सम्पूर्णतया परिहार हो। पर जब तक यह भौतिक शरीर है और शरीर के प्रति आसक्ति है प्राणी को परिपूर्ण सुख मिलने का नही है। क्योकि दार्शनिक सूक्ष्मता में जाए तो शरीर पाना भी अपने आप में एक दु ख है। सम्पूर्ण सुखमयता प्राप्त करने के लिये तो जन्म-मरण अथवा शरीर से छुटकारा पाना होगा। इन सब दु खा विघ्नों, बाधाओ और प्रतिबंधों से मुक्त अवस्था का नाम ही तो मोक्ष है। भारतीय दर्शन मे जीवन का मूल लक्ष्य यही है ?

श्रीमती केलर—सपूर्ण सुख मानव देहधारी को नही मिल पाता। पर वह आशिक सुखोपलब्धि तो कर सकता है ?

आचार्यश्री—क्यों नही, वह अपने जीवन में ज्यों-ज्यों अहिंसा की ओर बढ़ेगा, त्यों त्यों उसे जीवन में सुखानुभव होगा। अहिंसा में जितना ज्यादा वह अपने को गतिशील बनाएगा उसके जीवन की सुखमयता भी उतनी ही गतिशील बनेगी।

श्री केलर—ससार मं जो कुछ दृश्यमान है वह क्षणभगुर है नाशवान है फिर व्यक्ति क्यां क्रियाशील रहे ? किसलिए इतना प्रयास करे ?

आचार्यश्री—दृश्यमान व अदृश्यमान सभी भौतिक पदार्थ नाशवान हैं, भौतिक सुख भी क्षणिक है। आत्मसुख शाश्वत, चिरन्तन और अविनश्वर है। उसी के लिए व्यक्ति को सत्कर्मनिष्ठ और प्रयत्नशील रहने की अपेक्षा है। भौतिक दृश्यमान जगत या सुख सामग्री जीवन का चरम लक्ष्य नही है। चरम लक्ष्य है।आत्मसाक्षात्कार या आत्म-विशोधन।

श्री केलर—आज ससार की परिस्थिति ऐसी बन गई है कि व्यक्ति एक दूसरे को धोखा देने या चकमा देने में अपना कर्तृत्व या दक्षता मानता है। क्या धोखा देनेवाले के प्रति धोखे का बर्ताव किया जाए?

आचार्यश्री—धोखा देनेवाला क्षणभर के लिए सोच लेता है कि उसने बड़ी बुद्धिमत्ता की। पर वास्तव में ऐसा करके वह पतन के गड्ढे मे गिरता है। उसका अन्तर्मन मलिनता और कालिमा से लिप्त होता है। यह उसकी दक्षता नही, दक्षता या बुद्धिमत्ता के नाम पर आत्म-विडम्बना है। क्या कोई भी विवेकी व्यक्ति ऐसी मिथ्या आत्म-विडम्बना और असद्आचरण में अपने को लगा सकता है? धोखा देने वाले को प्रत्युत्तर में धोखा देना ऐसा ही कार्य हे।

श्रीकेलर—आप लम्बी-लम्बी यात्राए कैसे करते हैं?

आचार्यश्री—हम पाद-विहार करते हैं।

श्रीकेलर—ऐसा क्यों?

आचार्यश्री—अहिंसा की दृष्टि से। हमारे द्वारा जीवो की विराधना और हिंसा न हो इसलिए हम किसी सवारी का उपयोग नही करते। यतनापूर्वक पैदल चलते हैं। अपना वजन अपने कधो पर लादकर चलते हैं। यहा भी अहिंसा का ही लक्ष्य है।

श्री केलर—क्या आप पेड़ से अपने आप टूटकर गिरा हुआ फल ले सकते हैं?

आचार्यश्री—नही, क्योकि फल सचित्त—सजीव होता है।

श्री केलर—क्या कच्चा भोजन लेते हैं?

आचार्यश्री—नही वह भी सजीव होता है।

श्री केलर—आपके पास आकर लोग तरह-तरह की प्रतिज्ञाए लेते हैं। आप उन्हें प्रतिज्ञाए दिलाते हैं। अमुक व्यक्ति प्रतिज्ञा पालेगा या नही यह कैसे मालूम पड़ता है?

आचार्यश्री—विशिष्ट प्रतिज्ञाए तत्क्षण नही दिलाई जाती। व्यक्ति को परख कर दिलाई जाती हैं। दृढ़ निष्ठा के साथ व्यक्ति अपनी इच्छा से प्रतिज्ञा लेता है तो वह उसे बीच में ही तोड़ देगा ऐसा सन्देह क्यों किया जाए? प्रमादवश किसी व्यक्ति से प्रतिज्ञा टूट जाती है तो वह उसके लिए प्रायश्चित्त लेता हे, पश्चाताप करता है।

श्रीमती केलर—जब आपका दीक्षा-सस्कार हुआ तो आपकी आयु क्या थी?

आचार्यश्री—ग्यारह वर्ष की।

श्रीमती केलर—दीक्षा से पूर्व आप कहा रहते थे ?

आचार्यश्री—घर में।

श्रीमती केलर—क्या आप प्रवचन सुना करते थे ?

आचार्यश्री—प्रवचन सुनता था, तत्त्व समझता था। मेरे गुरु के व्यक्तित्व का मेरे मन पर गहरा प्रभाव था। मेरी वैराग्य-भावना का यही कारण हुआ।

श्रीमती केलर—आपके माता-पिता आदि अभिभावक इससे सहमत थे ?

आचार्यश्री—सहमत कर लिया।

श्रीमती केलर—क्या आपका घरवालों से कोई सम्बन्ध है ?

आचार्यश्री—कोई भी भौतिक सम्बन्ध नहीं है।

श्रीमती केलर—क्या आप अपने घरवालों से कभी-कभी मिलते हैं ?

आचार्यश्री—हमे इसकी अपेक्षा नहीं। वे सम्पर्क क लिए समय-समय पर आते रहते हैं।

श्रीमती केलर—रोम के पोप और आपमें कितना बड़ा अन्तर है। पोप एक सम्राट की तरह धन, वैभव, शानशौकत और मौज-मजे में रहते हैं। आपका जीवन त्यागपूर्ण, सादगीमय, अकिंचन और अपरिग्रही है। वास्तव में यही साधुता है। साधुत्व के मार्ग पर आनेवालों को भौतिक वैभव और सपदा छोड़नी ही पड़गी। आज ईसाई धर्मवालों में शराब तथा कुछ ऐसी अवाछनीय बातें आ गई हैं कि उनके प्रति हमारे मन मे सम्मान कम होता जा रहा है। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि वे तो हम साधारण नागरिकों से भी कमजोर हैं।

श्री केलर—दूसरे लोगों में जो बुराइया हैं, उसके विषय में आप टीका करते हैं या मौन रहते हैं ?

आचार्यश्री—व्यक्तिगत रूप से किसी पर आक्षेप या टीका करने की हमारी नीति नही है। पर सामुदायिक रूप में बुराइयो पर तो प्रहार करना ही होता है। वह आवश्यक भी है।

श्री केलर—मनुष्य जो कर्म करता है, उसका फल परिपाक ईश्वराधीन है या स्वतन्त्र ?

आचार्यश्री—ईश्वर या परमात्मा केवल द्रष्टा है। व्यक्ति जैसा कर्म करता है उसका फल स्वय उसे मिलता हे। सत् या असत् जैसा कर्म वह करेगा, वैसा ही फल उसे मिलेगा। फल परिपाक कर्म का सहज गुण है। ईश्वर या परमात्मा कर्ममुक्त हैं निर्विकार है। अपने स्वरूप में अधिष्ठित है। कर्म का फल देने में उसका कोई

हाथ नही रहता, यह जैनदर्शन का मन्तव्य है।

श्रीकेलर—क्या ईश्वर एक है?

आचार्यश्री—नही, जैनदर्शन अनेकेश्वरवादी है। उसके अनुसार परमात्मा अनेक हैं, अनन्त हैं। कर्म-मल से छुटकारा पाकर अपने निर्मल स्वरूप में स्थित होने वाली आत्मा ही ईश्वर कहलाती है। इस दिशा में प्रयत्न करने का अधिकार प्रत्येक आत्मा को है।

श्री केलर —हम अपने को धन्य मानते हैं कि आपके सपर्क में आने का हमें सौभाग्य मिला। आपने अपना अमूल्य समय हमें दिया, इसके लिए हम आपके प्रति बहुत-बहुत कृतज्ञ व आभारी हैं। आप जनता की नैतिक विशुद्धि और जीवन-परिष्कार के लिए जो आन्दोलन चला रहे हैं, पश्चिम को आज उसकी बहुत अधिक आवश्यकता है. मैं ऐसा महसूस करता हू। जब तक व्यक्ति नैतिक वृत्ति और शुद्ध आचरण को नही समझेगा, मातृभाव कैसे पनप सकेगा? यह आन्दोलन मातृभाव और मैत्री का प्रसार करने वाला है। मै भारतीय लोगों को अपना सदेश दूगा कि पश्चिम से उन्हें कुछ मिलने का नही है। जीवन के उत्थान का मार्ग वे उनसे नही पा सकेंगे। जीवन विकास के लिए उन्हें पूर्व की ओर देखना होगा। यह आन्दोलन उन्हें प्रेरणा देगा।

फरवरी, १९५४
बम्बई

आचार्य तुलसी : डोनेल्ड दम्पति

[क्रिश्चियन एण्ड मिशनरी एलाइएन्स चर्च के कैनेडियन पादरी रेव डोनेल्ड केप्स, श्रीमती डोनेल्ड केप्स तथा चर्च के दूसरे कार्यकर्ता श्री जे टी सिरवैया एव श्री एस ए घकर आचार्यश्री तुलसी के सपर्क मे आये। आचार्यश्री के साथ श्री डोनेल्ड तथा श्रीमती डोनेल्ड का विविध तात्त्विक विपयो पर वार्तालाप हुआ।]

श्रीमती कैप—आचार्यश्री ! क्या आपने बाइबिल पढ़ी है ?

आचार्यश्री—हम प्राय ससार के सभी धर्मों का साहित्य देखते है, बाइबिल भी देखी है।

श्रीमती कैप—बाइबिल के अनुसार हम ऐसा मानते हैं कि न्यायी व्यक्ति श्रद्धा से जीवन विताता है।

आचार्यश्री—हमारी भी मान्यता हे कि सच्चा श्रद्धावान वही है, जो अपने जीवन मे अन्याय को प्रश्रय नही देता।

श्रीमती कैप—प्रभु यीशु ने कहा हे कि प्रत्येक व्यक्ति यह सोचे कि जिस किसी को तू मारना चाहता है, वह तू ही है।

आचार्यश्री—भगवान महावीर का कथन है कि जिस तरह तुझे अपना जीवन प्रिय ह, उसी तरह वह सबको प्रिय है। सब जीव जीना चाहते हैं। इसलिए तुम्हें दूसरा के प्राण लूटने का अधिकार नही है।

श्री केप—ससार में व्याप्त अशान्ति और दु ख का कारण क्या है ?

आचार्यश्री—आज का ससार भौतिकवाद मे बुरी तरह फसा हे। परिणामस्वरूप उसकी लालसाए असीम बन गई है। स्वार्थ के अतिरिक्त उसे कुछ नजर नही आता। शान्ति का आधारभूत तत्त्व है अध्यात्म। उसे मनुष्य दिन पर दिन भूलता जा रहा है। जहा तक मैं समझ पाया हू, दु ख और अशाति का यही कारण है।

श्री कैप—हम यह मानते हैं कि मनुष्य में जो पाप हैं, उनके कारण अशान्ति है।

आचार्यश्री—पाप क्यो है ? इसीलिए कि मनुष्य भौतिकवादी बनता जा रहा है। आत्म-तत्त्व और आत्मस्वरूप को भूलकर वह पर मे उलझ रहा है।

श्री कैप—हमारी मान्यता यह है कि मनुष्य जब पैदा होता है तो पापो को लेकर ही पैदा होता है।

आचार्यश्री—हमारी मान्यतानुसार मनुष्य जब पैदा होता है तो पाप और पुण्य दोनो को साथ लेकर आता है। यदि वह पुण्य साथ नही लाता तो उसे अनुकूल सुख-सुविधाए भी नही मिलतीं।

श्री कैप—मनुष्य जो कुछ पाता है, वह सब ईश्वर द्वारा प्रदत्त है। मनुष्य को पैदा भी ईश्वर ही करता है।

आचार्यश्री—तो क्या यह समझा जाए कि उसके साथ पाप भी ईश्वर ही पैदा करता है। मानव के जीवन मे जो कुछ घटित होता है वह सब ईश्वर करता है—ऐसा मानने से मनुष्य का पुरुषार्थ अर्थहीन हो जाएगा। फिर भले या बुरे कामों के लिए मनुष्य की कोई जिम्मेवारी नही रहेगी। क्योकि वह सब कुछ ईश्वर की प्रेरणा से करता है।

श्री कैप—जो प्रभु यीशु की शरण म आ जाते हैं, उनकी मान्यता रखते हे उनके पापों के लिए वे पेनल्टी चुका देते हैं।

आचार्यश्री—इस मान्यता से मनुष्य का अपना कर्तृत्व समाप्त हो जाता है। हमारी मान्यता यह है कि मनुष्य को पैदा करने वाली ईश्वर जैसी कोई शक्ति नही है। मनुष्य जाति अनादिकालीन है। सत्-असत्, शुभ-अशुभ मनुष्य के अपने किए गए कर्मों पर आधारित है। उनके लिए मनुष्य स्वय जिम्मेवार है। भले-बुरे कार्यों के लिए व्यक्ति की अपनी जिम्मेवारी नही रहेगी तो धर्मोपदेश और धर्मानुष्ठान अकिंचित्कर कर हो जाएगे।

श्री कैप—मनुष्य की आत्मा में कोई शेतान बैठा है। वह उसे बुरे कर्मों मे प्रवृत्त करता हे। क्या यह सच है ?

आचार्यश्री—मनुष्य का जो कुछ है वह जिस किसी स्थिति में है, आपके विचारानुसार वह सब ईश्वर की देन है तब शेतान को बीच में लाने की क्या जरूरत है ?

श्री कैप—यीशु की शरण में जाने से ही वह पापो से छुटकारा दिला सकता है। क्या आप यह मानते हें कि मनुष्य अपने पाप कर्मों के लिये स्वय प्रायश्चित कर सकता है ?

आचार्यश्री—क्यों नही कर सकता ? जरूर कर सकता है। प्रायश्चित के द्वारा वह अपने बहुत पाप मिटा सकता है।

श्री कैप—हम तो ऐसा मानते हैं कि मनुष्य को बनाना, उसके पापों को मिटाना, ससार की सृष्टि करना आदि सब ईश्वर के कार्य हैं। सृष्टि को आप कैसा मानते हैं ?

आचार्यश्री—जैसा कि मैंने अभी कुछ समय पहले कहा था कि हम सृष्टि को अनादि मानते हैं। आप लोग आत्मा और शरीर को भिन्न मानते हैं या नही ?

श्री कैप—जी हा, हम आत्मा और शरीर को अलग मानते हैं, पर यह भी मानते हैं कि इनका निर्माण ईश्वर ने किया। क्योंकि निर्माता के बिना इनको कौन बनाता।

आचार्यश्री—ईश्वर को किसने बनाया ?

श्री कैप—वह तो स्वय सिद्ध है।

आचार्यश्री—जब हम यह नियम स्वीकार करते हैं कि निर्माता के बिना कोई वस्तु नही हो सकती और कर्त्ता के बिना कोई कर्म नही हो सकता तो ईश्वर को करने वाला भी कोई होना चाहिए। क्योकि वह भी एक तत्त्व है।

श्री कैप—वह स्वय स्रोत है, उद्गम है।

आचार्यश्री—पर उसका भी कोई उद्गम होना चाहिए।

श्री कैप—कृपया बतलाइए के आत्मा पाप-कार्य क्यों करती है ?

आचार्यश्री—अज्ञान एव मोह के कारण। वह इनसे ज्यों-ज्यों निवृत्त होगी, पाप-कार्यों से अपने आप बचेगी।

श्री कैप—आपके विचारों के अनुसार साधुओं के अतिरिक्त अन्य लोग भी पापमुक्त हो सकते हैं क्या ?

आचार्यश्री—क्यों नही हो सकते ? इसके लिए प्रायश्चित्त और तपश्चर्या करनी होती है।

श्री कैप—साधु एव गृहस्थ की साधना में क्या अन्तर है ?

आचार्यश्री—साधु महाव्रतधारी होते हैं। वे अहिंसा आदि महाव्रतों का पूरा पालन करते हैं। श्रावक या गृहस्थ व्रत पालन की एक सीमा कर लेते हैं। उस सीमा के अन्तर्गत वे अपनी साधना करते हैं। साधु और गृहस्थ दोनों का मार्ग एक है। पालन की दृष्टि से उसमें अन्तर है। साधु पूर्णरूप से व्रतों का पालन करते हैं और गृहस्थ आशिक रूप में करते हैं।

श्री कैप—मेरी ऐसी मान्यता है कि हम लोग स्वय कुछ भी नही कर सकते। सब ईश्वरीय प्रेरणा से करते हैं।

आचार्यश्री—इस अभिमत में हमारी सहमति नही है। हमारा चिन्तन है कि हम अपने सत्-असत् के स्वय जिम्मेवार हैं। हम जो कुछ करते हैं, आत्मशक्ति के द्वारा करते हैं। किसी अन्य शक्ति का हमारे जीवन में कोई हस्तक्षेप नही है।

(वार्तालाप बहुत सरस चला। तत्पश्चात् डोनेल्ड दम्पति ने साधु-साध्वियों द्वारा निर्मित कलाकृतिया, सूक्ष्म लिपिकला पत्र आदि का निरीक्षण किया।)

श्रीमती कैप—क्या ये सुन्दर चीजें कही मिल सकती हैं? मैं इन्हें खरीदना चाहती हू ताकि अन्य लोगों को दिखा सकू।

आचार्यश्री—हम अपनी जरूरत के अनुसार इन वस्तुओं को तैयार करते हैं। यह हमारा व्यवसाय नही है। न तो हम अपने पास पैसा रखते हैं और न किसी वस्तु का क्रय-विक्रय करते हैं।

श्री कैप—हम लोग पुन आपकी सेवा में आएगे और अधिक जानकारी पाएगे। आज आपका बहुत समय ले लिया। कृपाकर क्षमा कीजियेगा।

१२ मई, १९५५
जलगाव

आचार्य तुलसी : इ. यन. स्टीवेन्सन

[वर्जीनिया यूनिवर्सिटी (अमेरिका) के मनोवैज्ञानिक प्रो॰ श्री इ यन स्टीवेन्सन तथा उनके सहयोगी श्री एच एन बनर्जी (गगानगर) पुनर्जन्म शोध कार्य में सलग्न थे। उन दिनो वे भारत की यात्रा पर थे। यात्रा के दौरान उन्होंने आचार्यश्री तुलसी के दर्शन किए।]

बनर्जी—हम लोग पुनर्जन्म का अध्ययन करने के लिए भारत में भ्रमण कर रहे हैं।

आचार्यश्री—हमें प्रसन्नता है कि अब विज्ञान भी पुनर्जन्म के शोध में सलग्न हो रहा है। भारतीय दर्शन का पुनर्जन्म पर दृढ़ विश्वास है। उनके अनुसार पुनर्जन्म को सप्रमाण सिद्ध किया जा सकता है।

स्टीवेन्सन—पुनर्जन्म की मान्यता में और जैनों में क्या मतभेद है?

आचार्यश्री—मूल मान्यता में कोई खास भेद नही है। पद्धति का भेद हो सकता है। वैदिक मान्यता है कि आत्मा यहा से छूटती है। कुछ काल तक वह आकाश में रहती है। ईश्वरीय न्याय के बाद उसे जहा भेजा जाता है, वह जाती है। किन्तु जैन दर्शन मानता है कि आत्मा वर्तमान शरीर त्याग से पूर्व ही आगे का स्थान निश्चय कर लेती है और आयुष्य परिसमाप्ति के अनन्तर ही गन्तव्य स्थान पर पहुच जाती है।

स्टीवेन्सन—हम वर्षों से पुनर्जन्म के बारे मे रिसर्च कर रहे हैं। हमे कुछ नए तथ्य उपलब्ध हुए हैं। हमारे ध्यान में कुछ ऐसी घटनाए आई है, जिनके अनुसार व्यक्ति मरता बाद में है और उत्पत्तिस्थान पर पहले पहुच जाता है। यह सब कैसे होता है? हमने पुनर्जन्म को सिद्ध करने वाली ३०० घटनाओं का सकलन कर लिया है।

आचार्यश्री—आगमों में कही-कही ऐसा वर्णन मिलता है कि व्यक्ति मरने से कुछ समय पहले ही वहा पहुच जाता है। यहा से उसका ताता जुड़ा रहता है। इसे आगमिक भाषा में मारणातिक समुद्घात कहते हैं।

स्टीवेन्सन—दो एक ऐसी घटनाए भी है, जिनमे शताब्दियो का अन्तर पड़ता है। वे घटनाए कहती हैं कि व्यक्ति मरा सौ वर्ष पूर्व और जन्मा शताब्दी बाद। प्रश्न यह है कि वह आत्मा इतने काल तक कहा रही ?

आचार्यश्री—उस अवधि में आत्मा के अन्य रूपों में उद्‌भव की सभावना को अस्वीकार नही किया जा सकता। जातिस्मरण ज्ञान के द्वारा पिछले भवों का ज्ञान किया जा सकता है। सभव है, वह ज्ञान बीच के कुछ भवों के व्यवधान से अपना सौ वर्ष पहले का भव देख पाया हो।

स्टीवेन्सन—पुष्पा के विषय में आपको क्या जानकारी है ?

आचार्यश्री—सुना है कि पुष्पा बचपन से ही कुछ विशेष शब्दों का उच्चारण करती और विशेष खाद्य पदार्थों के सम्बन्ध मे चर्चा करती थी। जो खाद्य पदार्थ उस परिवेश में नही खाए जाते उनके बारे में उसे ज्ञान था। वह अपनी मा से कहती—'इस दाल में क्या है ? दाल तो उड़द की होती है।' वह बहुधा मेवाड़ की प्रशसा करती। वह अपने पते-ठिकाने बताती और कुछ लड़के-लड़कियों की घटना भी बताती। पर किसी ने ध्यान नही दिया। बचपन में उसका पूर्व जन्म सम्बन्धी ज्ञान विकसित था। *ज्यों-ज्यो वह बड़ी होती गई, स्मृति कम होती गई।*

पिछले वर्ष जब उसके परिवार वाले राजनगर पहुचे तब पुष्पा भी उनके साथ थी। उसने कहा—'देखो मा ! में जिस देश के लिए कहती थी' वह यही है। उदयपुर मेरा घर है। घर में मेड़ी है। यह है, वह है आदि। 'उसे वहा ले जाया गया' उसकी कुछ बातें ठीक निकली।

[स्टीवेन्सन ने ध्यानपूर्वक आचार्यश्री की बात सुनी। वे स्वय दौलपुरा में पुष्पा से मिलकर आए थे। उन्होंने उससे जो कुछ सुना। उसका आचार्यश्री के कथन से मिलान करते प्रतीत हुए।]

स्टीवेन्सन—विवेकशील व्यक्ति कैसा होना चाहिये ?

आचार्यश्री—विवेक का अर्थ है अच्छे ओर बुरे का सही-सही ज्ञान। विवेकशील व्यक्ति अच्छे को अच्छा मानेगा और बुरे को बुरा समझेगा। वह आत्मा और शरीर की भिन्नता को भी स्वीकार करेगा। धार्मिक दृष्टि से विवेकशीलता की यही परिभाषा है।

स्टीवेन्सन—उसका रहन-सहन कैसा होगा ?

आचार्यश्री—वह सदा जागरूक, अनासक्त और विरक्त रहेगा।

स्टीवेन्सन—हम भारत मे पुनर्जन्म शोध-केन्द्र स्थापित कर रहे हैं। वहा के

हमारे विद्यार्थी आपसे सम्पर्क करेंगे। हम आशा करते हैं कि आपके ज्ञान से हमें बराबर लाभ मिलता रहेगा।

बनर्जी—हम गंगानगर में एक अवधिमनपर्यव ज्ञान विकास योजना चला रहे हैं। उसमें विद्यार्थियों को बिना किसी संकेत के मनोभावों के आधार पर पढ़ाया जाता है। विद्यार्थी एक कमरे में बैठ जाते हैं। अध्यापक दूसरे कमरे में बैठते हैं। एक घंटी बजती है और विद्यार्थी अपने आप वह पाठ निकालकर पढ़ने लग जाते हैं, जो पाठ अध्यापक उन्हें पढ़ाना चाहते हैं। यदि इस मनोभाव अभिज्ञप्ति का विकास हो पाया तो आत्म-ज्ञान में एक नया अध्याय जुड़ेगा।

आचार्यश्री—आत्मा है, इस विषय में वैज्ञानिकों का क्या अभिप्राय है?

बनर्जी—अभी तक कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं बन पाया है।

स्टीवेन्सन—हम आपका बहुत-बहुत आभार प्रदर्शन करते हैं। आशा है आपसे हम पुनर्जन्म की अभिसिद्धि में पर्याप्त ज्ञान मिलता रहेगा। हमें केवल वे घटनाएं चाहिए, जो हमारे प्रत्यक्ष लोक में हों और जिनका हम अन्वेषण कर सकें।

४ अगस्त १९६१

आचार्य तुलसी : एच. ई. होलेन्ड मेचनर

[२९ जून, अपराह्न कनाडा के हाईकमिश्नर (राजदूत) श्री एच ई होलेन्ड मेचनर सपत्नीक आचार्यश्री तुलसी से भेट करने आए। वे आचार्यश्री को नमस्कार कर उनके उपपात मे बैठ गए और अपनी जिज्ञासाओ के समाधान पाने मे लीन हो गए।]

मेचनर—में आपके जीवन के सम्बन्ध मे पढ़ता रहा हू। किन्तु प्रत्यक्ष सम्पर्क का यह पहला ही अवसर है।

श्रीमती मेचनर—मै कनाडा विश्वविद्यालय मे पढ़ाती हू। वहा जैनदर्शन का अध्यापन होता है।

आचार्यश्री—सुदूर देशो मे रहने वाले भी दर्शन के माध्यम से एक दूसरे से परिचित हो जाते हैं।

[हाईकमिश्नर को नीचे बेठने का अभ्यास नही था। कमरे मे गर्मी भी काफी ी। अत आचार्यश्री ने सहज भाव से पूछ लिया। इस प्रकार बैठने मे सम्भवत आपको दिक्कत पड़ती होगी।]

मेचनर—नही, मैं बहुत आराम में हू।

आचार्यश्री—हम प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हैं।

मेचनर—आपका जीवन बहुत सादा और सयमित है।

आचार्यश्री—अमरीका और कनाडा के लोग प्रकृति को अपने हाथ मे रखते हैं।

मेचनर—वहा का वातावरण ठडा है।

आचार्यश्री—ठण्डा न हो तो बना लेते हैं।

मेचनर—मैं ग्यारह वर्ष पहले भारत आया था। गत दस महीनों से कनाडा का प्रतिनिधि बनकर यहा हू । मैने तीन वर्षो तक वकालत की है। वर्तमान में हम विदेशों में मैत्रीपूर्ण वातावरण तैयार करने का प्रयत्न करते हैं। आप इस विषय में क्या सोचते हैं?

आचार्यश्री—मै मानता हू कि आपने मेरे मन की बात कही है। मैं भी यही चाहता हू कि जो विदेशी यहा रहते हैं, उनमे परस्पर मैत्री भावना का प्रसार हो। शीघ्र ही यहा एक मीटिंग होने वाली है, जिसमें यही विषय आने वाला है। मुझे प्रसन्नता है कि कनाडा के हाईकमिश्नर हमारे विचारों के साथ हैं।

मेचनर—भारत के प्रधानमन्त्री लाल बहादुर शास्त्री जब कनाडा गए थे तब मैं भी उनके साथ था।

आचार्यश्री—शास्त्रीजी भारतीय सस्कृति के प्रतिनिधि और विश्वमैत्री के समर्थक रहे हैं।

मेचनर—हमारे देश के लोग उनकी सरलता, सादगी और मैत्री भावना से प्रभावित हैं।

आचार्यश्री—कनाडा के लोगो ने शास्त्रीजी का स्वागत करके भारतीय सस्कृति का स्वागत किया है।

मेचनर—वास्तव मे शास्त्रीजी भारतीय आत्मा के प्रतिनिधि हैं।

आचार्यश्री—आज सारे ससार में राजनीति छा गई है। मैं मानता हू कि वही सब कुछ नही है उसके अतिरिक्त भी कुछ होना चाहिये।

मेचनर—राजनीति गन्दी होती है। उसमें व्यक्ति कहता कुछ है। और करता कुछ है। किन्तु शास्त्रीजी की कथनी और करनी में कोई अन्तर परिलक्षित नही हुआ। हमारे देश के प्रधानमन्त्री बहुत प्रसन्न हुए। हमारी परस्पर की बातचीत से तय हुआ कि कनाडा के विद्यार्थी भारत मे आकर भारतीय सस्कृति का अध्ययन करें।

आचार्यश्री—आपके विचारों का स्वागत है।

मेचनर—यह कार्य एक साथ तो हो नही सकेगा। प्रतिवर्ष १०-१२ छात्र-वृत्ति प्राप्त विद्यार्थी यहा आएगे।

आचार्यश्री—हम भी चाहेगे कि भारतीय सस्कृति और परम्परा के विषय मे उन्हें अवगत किया जाए।

मेचनर—हमारे लिए यह बहुत सौभाग्य की बात होगी।

आचार्यश्री—सब अपने-अपने दर्शन की बात करते हैं। किन्तु मैं सोचता हू कि एक ऐसा दर्शन हो जो सबका प्रतिनिधित्व करता हो। उसमें हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई सबका समन्वय हो। अणुव्रत के द्वारा यह कार्य आसानी से हो सकता है। हमारे सामने धर्म के दो पहलू हैं—उपासना और आचार। उपासना में भिन्नता हो सकती है। अत आचार-धर्म को लेकर चला जाए तो ऐसा हो सभव है।

मेचनर—मैं भी मानता हू कि उपासना में विभेद हो सकता है। किन्तु सत्य में

नही। वह सार्वजनिक है। मे आपसे पूछना चाहता हू कि क्या मोरल रिआर्मामेन्ट और अणुव्रत-आन्दोलन मे समानता है ?

आचार्यश्री—दोनों के उद्देश्यो में काफी समानता है। किन्तु भारतीय मानस में एक सन्देह है कि मोरल रिआर्ममिन्ट के पीछे कोई राजनीतिक उद्देश्य है, जबकि अणुव्रत उससे सर्वथा अस्पृष्ट है।

मेचनर—आप ठीक कह रहे है। ऐसा हो भी सकता है।

आचार्यश्री—इसीलिए मैं दोनों मे भेद करता हू। अणुव्रत नैतिक आन्दोलन है किन्तु उसकी भित्ति अध्यात्म की है।

मेचनर—अणुव्रत में किसी का विरोध नही है। मैंने उसकी पुस्तक पढ़ी है। मैं उससे प्रभावित हू। अणुव्रत के आदर्श बहुत ऊचे हैं।

आचार्यश्री—इस देश मे तो इसका प्रसार व्यापक रूप से हुआ है। किन्तु हम चाहते हैं कि विदेशों मे भी प्रसार हो। आप इस विषय में क्या सोचते है ?

मेचनर—अणुव्रत क मूल पाच सिद्धान्त सर्वत्र उपयोगी है। किन्तु इसके उपभेदो की उपयोगिता सबके लिए एक जैसी नही हो सकती।

आचार्यश्री—उनका चयन भी उसी दृष्टि से होगा, जो सबको मान्य हो। भारत की आजादी के साथ ही अणुव्रत का इतिहास जुड़ा हुआ है। गत १६ वर्षो से भारतीय जनता म इसका काम हो रहा है। पिछली बार जब मैं दिल्ली में था तब कुछ विदेशी व्यक्तियों ने मुझसे कहा था कि इस आन्दोलन का विदेशो मे भी प्रसार हा।

मेचनर—पारस्परिक सम्पर्क से मित्रभाव बढ़ता हे। हम प्रत्येक व्यक्तित्व का सम्मान करते हैं। कनाडा के लोग मानव-जाति को एक मानते हैं।

आचार्यश्री—मैंने भी ऐसा जाना हे। भारत और कनाडा के प्रधानमन्त्री बहुत-सी बातो पर एक मत हैं। वियतनाम पर भी दोनो की नीति एक ही है।

मेचनर—भारत और कनाडा मे एक भेद है। कनाडा के लोग भौतिकवाद में बह रहे हैं। किन्तु भारत में वैसा नही है।यहा अध्यात्म की प्रधानता है।

(*आचार्यश्री ने हाईकमिश्नर को तेरापन्थ और जैन साधुचर्या से अवगत किया।* साधु-साध्वियो की कला और लिपि साधना से वे अत्यन्त प्रभावित हुए। हाईकमिश्नर और उनकी धर्मपत्नी दोना ही अध्यात्म प्रेमी थे। जाते जाते श्रीमती मेचनर न अपने पति से कहा—'मै तो आचार्यश्री के पेर नही छू सकती, किन्तु आप तो छू सकते है।' हाईकमिश्नर ने तत्काल आचार्यश्री के चरण छूकर नमस्कार किया। आचार्यश्री ने उन्हें मगलपाठ सुनाया।)

आचार्य तुलसी : श्रीमती आरगेलिया डी. बरविया

१

[अर्जेण्टाइना (दक्षिण अमरीका) निवासिनी श्रीमती आरगेलिया डी बरविया आचार्यश्री तुलसी से भट करने आई। श्रीमती आरगेलिया अपनी पुत्री क साथ डेढ वर्ष से भारत मे प्रवास कर रही थी। हिन्दू महासभा के निकट बिडला मन्दिर मे ठहरी हुई थीं। भारतवर्ष मे उनके प्रवास का उद्देश्य था—यहा के सन्त पुरुषों की जीवनियो को एकत्रित करना। तब तक वे १८० सन्तो के जीवन-चरित्र एकत्रित कर चुकी थी। किन्तु जैन तीर्थकरो तथा आचार्यों का एक भी जीवन चरित उन्हे प्राप्त नही हुआ। वे उसकी खोज मे थी। एक दिन उन्हे सहसा माणिकचन्द चौरडिया से आचायश्री के दिल्ली प्रवास की सूचना मिली अपनी जिज्ञासाओ का समाधान पाने के लिए वे हिन्दू महासभा भवन चली आई।]

आरगेलिया—मैं जैन साधुओ के सम्बन्ध में कुछ जानना चाहती हू। क्या यहा से मुझे कुछ जानकारी मिल सकेगी ?

आचार्यश्री—अवश्य अधिकारपूर्ण और विश्वस्त जानकारी आप यहा से प्राप्त कर सकेंगी।

आरगेलिया—आपका बहुत-बहुत धन्यवाद। इसके लिए मैं कब उपस्थित होऊ ?

आचार्यश्री—विस्तृत चर्चा तो किसी निश्चित समय पर ही हो सकेगी। फिर भी अभी थोड़ा समय है। कुछ बातें हो सकती हैं।

आरगेलिया—मैं अवश्य आऊगी। आपकी बड़ी कृपा होगी।

आचार्यश्री—आप भारत कब आईं ?

आरगेलिया—मुझे भारत आए डेढ़ वर्ष हो गया। इस बीच मैंने भारत के उत्तर,

दक्षिण और पूर्व के प्रान्तों का भ्रमण किया। मैंने १८० भारतीय सन्तों का जीवन-चरित भी सकलित किया है। किन्तु आज तक जैन सन्तों का एक भी जीवन-चरित मुझे उपलब्ध नही हुआ।

आचार्यश्री—जैनधर्म भारत के प्रमुख धर्मों में से एक है। वर्तमान मे अनेक प्रसिद्ध आचार्य मौजूद हैं। फिर भी आपको इसकी जानकारी नही मिल सकी, यह खेद का विषय है।

आरगेलिया—मैं हर एक से जानना भी नही चाहती। प्रामाणिक और अधिकृत रूप से बताने वाला आज तक मुझे कोई नही मिला।

आचार्यश्री—आज यदि यह अवसर नही मिलता तो?

आरगेलिया—जब तक मुझे पूरी जानकारी प्राप्त नही हो जाती, मै भारत से वापस नही लौटती। आज मैं अपना सौभाग्य मानती हूँ कि आपसे मिलने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ।

आचार्यश्री—आजकल हमारे यहाँ जैन आगमों का वैज्ञानिक अनुसन्धान हो रहा है।

आरगेलिया—दक्षिण अमरीकावासी अधिकाशत स्पेनिश भाषा ही जानते हैं। यदि उनका अनुवाद उस भाषा में हो सकेगा तो वे हमारे लिए भी उपयोगी बन सकेंगे।

आचार्यश्री—आप दिल्ली में कहा ठहरी हैं?

आरगेलिया—(हिन्दी मे) बहुत नजदीक बिड़ला मन्दिर में ही।

आचार्यश्री—आप हिन्दी भी जानती हैं?

आरगेलिया—मैं थोड़ी सस्कृत भी जानती हू। सस्कृत में लिखने-पढ़ने का मुझे सामान्य ज्ञान है।

आचार्यश्री—क्या प्राकृत और पाली भी जानती हैं?

आरगेलिया—नही मैं जापानी जानती हू।

[बीच मे कई श्रावक और श्राविकाए आईं। वे आचार्यश्री को वन्दना करने लगी। उन्हें देखकर श्रीमती आरगेलिया ने कहा—मैं आपकी वन्दन विधि से परिचित नही हू। किन्तु मेरा अन्त करण आपके चरणों में समर्पित हैं।]

मैं आपसे जानना चाहती हू कि जैनों में मुख्य सम्प्रदाय कौन-सा है?

आचार्यश्री—जैन मूलत एक ही हैं। भगवान महावीर को सब मानते हैं।

आरगेलिया—भगवान महावीर कौन थे?

आचार्यश्री—जैनधर्म में आज तक अनेक प्रवर्तक हुए हैं। भगवान महावीर इस युग के २४ वे प्रवर्तक थे।

आरगेलिया—महावीर शब्द का अर्थ क्या है?

आचार्यश्री—आत्मविजेता को महावीर कहते हैं। विशिष्ट तपस्या और साधना से बोधि प्राप्त कर कोई भी महावीर बन सकता है। वैसे महीवीर सज्ञा वाचक शब्द बन गया। महावीर के बारे में यह कहा जा सकता है कि उनका नाम अन्वर्थ था।

आरगेलिया—अवतार का ससार में क्या कर्तव्य है?

आचार्यश्री—परमात्मा अवतार से आते हैं, ऐसा हम नहीं मानते।

आरगेलिया—मैं मानती हू कि आत्मा में स्त्री-पुरुष का भेद नही। किन्तु उनका इस ससार में कर्त्तव्य क्या होता है?

आचार्यश्री—ससार म दा प्रकार के मनुष्य होते हैं। एक वे, जो अपना जीवन यो ही बिता देते हैं और दूसरे वे महापुरुष होते हैं, जो अपनी साधना से जीवन का विकास करत है।

आरगेलिया—पुनर्जन्म क्यों होता है?

आचार्यश्री—जब तक आत्मा समस्त कर्म-बन्धनां को तोड़कर परमात्मा का पद नही प्राप्त कर लेती, तब तक पुनर्जन्म पाना होता है।

आरगेलिया—किस आदर्श पर चलने से बन्धन टूट सकते हैं?

आचार्यश्री—वीतराग के आदर्श पर चलने से बन्धन टूट सकते हैं।

आरगेलिया—पश्चिम म कोई भी ऐसा व्यक्ति नही है, जो सर्वथा पापमुक्त हो। सबमे कुछ न कुछ अशो में पाप मिलता ही है।

आचार्यश्री—यहा भी सब लोग पापमुक्त नही होते। पश्चिम में जैसे महात्मा ईसा एक ही हुए, उसी प्रकार भारत में भी तीर्थंकर कोटि के पुरुष कम होते हैं।

आरगेलिया—ईसा ने कहा कि भगवान की तरह सबको प्यार करो। इससे बन्धन स्वत ही टूट जाएगे

आचार्यश्री—हम मानते हैं कि इसके साथ पुरुषार्थ भी करना होगा।

आरगेलिया—बस! यही मैं जानना चाहती थी।

आचार्यश्री—भगवान ने अपने पुरुषार्थ से आत्म-साक्षात्कार किया और मुक्त हो गये।

आरगेलिया—आपने बहुत ठीक कहा।

आचार्यश्री—भगवान महावीर को हुए पच्चीस सो वर्ष हो गए। महावीर और

बुद्ध समकालीन थे। महावीर के पथ पर चलने वाले जैन कहलाए। जैन शब्द जिन शब्द से बना है। जिन का अर्थ है आत्मविजेता। उनके अनुयायी जैन कहलाते है। आगे चलकर जैनों के दो सम्प्रदाय हो गए—दिगम्बर और श्वेताम्बर। हम श्वेताम्बर अर्थात् श्वेत वस्त्रधारी हैं।

आरगेलिया—क्या आप मूर्त्तिपूजा में विश्वास करते हैं?

आचार्यश्री—नही, हम मूर्त्तिपूजा मे विश्वास नही करते। श्वेताम्बरों में एक सम्प्रदाय मूर्त्तिपूजा में विश्वास करने वाला है।

आरगेलिया—मैंने कलकत्ता में एक बहुत सुन्दर जैन मदिर देखा था।

आचार्य श्री—मन्दिरों का पुरातत्त्व, कला और इतिहास की दृष्टि से महत्त्व है। वे प्रेरणा के स्रोत हो सकते हैं। किन्तु मूर्त्तिपूजा के सम्बन्ध मे हमारा दृष्टिकोण भिन्न है। फिर भी हम उनके सम्बन्ध में सारी स्थिति प्रामाणिकता से बता सकेगे।

आरगेलिया—क्या इस सम्बन्ध मे कोई पुस्तक भी है?

आचार्यश्री—हा, इस सम्बन्ध में काफी लिखा गया है।

आरगेलिया—आज आपसे बात करके मुझे अपने पति को समझने का मौका मिला है। वे बहुत दयालु और सहृदय है। किन्तु कभी चर्च में जाकर उपासना और प्रार्थना नही करते।

आचार्यश्री—लोग समझते है कि हम मन्दिर में उपासना करके कृतकृत्य हो गए। किन्तु हम कहते हैं कि जीवन का व्यवहार सुधरना चाहिए। हमारा कोई भी मठ मन्दिर या धर्मस्थान नही है। अभी जिस स्थान में हम ठहरे हुए हैं, वह भी हमारा नही, हिन्दू महासभा वालो का है। हम इसे माग कर रह रहे हैं। जैन साधुओ का कोई स्थान नही होता।

आरगेलिया—क्या आप जप का अभ्यास करते हैं?

आचार्यश्री—नियमित रूप से करते हैं।

आरगेलिया—क्या आप गुरुमन्त्र भी देते हैं?

आचार्यश्री—देते हैं किन्तु वह सख्यावृद्धि के लिए नही सुधार के लिए देते है।

आरगेलिया—आपका त्याग बहुत-बहुत महान है। यदि आप कृपा करके समय देगें तो मैं इसी सप्ताह आप से पुन मिलूगी।

आचार्यश्री—हम भी बड़ी प्रसन्नता से आपकी जिज्ञासाओ को समाहित करने का प्रयास करेगें।

आरगेलिया—मैं तो कुछ नही, एक साधारण प्राणी हू।

आचार्यश्री—हम मानते हैं कि कोई भी आत्मा छोटी नही है। सबमें अनन्त शक्ति है और सबमे परमात्मा बनने की क्षमता है।

(श्रीमती आरगेलिया ने जैन विधि से आचार्यश्री को अभिवन्दन किया। वह अपने चित्त मे गहरी प्रसन्नता की अनुभूति कर रही थी उसके शब्दों और व्यवहार मे श्रद्धा झलक रही थी। आते समय वह अपने आपको कुछ अपरिचित-सी अनुभव कर रही थी किंतु जाते समय वैसी स्थिति नही थी। उसकी लड़की भी उसके साथ 'भरतनाट्यम्' सीखने के लिए भारत आई हुई थी। आरगेलिया ने बताया कि जैन साधना चर्या और दर्शन में उसकी गहरी अभिरुचि है। आचार्यश्री के बारे मे जानकारी पाकर वह बहुत प्रसन्न होगी। जब वह पुन आएगी तो उसको भी साथ लाएगी।)

२

[पूर्व निश्चित समय के अनुसार श्रीमती आरगेलिया पुन. आचार्यश्री के सान्निध्य म उपस्थित हुई। उसके साथ उसकी लडकी कुमारी मिरता भी थी। वेशभूषा की दृष्टि से वह ठीक भारतीय कन्या जैसी लग रही थी। माता पुत्री ने जैन विधि क अनुसार घुटने टेक कर आचार्यश्री का अभिवादन किया। वे दोना अपने मन मे अनेक जिज्ञासाए सजोकर लाई थीं। आचार्यश्री ने उनकी हर जिज्ञासा को समाहित किया।]

आरगेलिया—आचार्यजी ! आप मुखपती क्यों बाधते हे ?

आचार्यश्री—जेनधर्म अहिंसा और सयमप्रधान हे। अधिकाश दार्शनिक स्थूल अहिंसा के सम्बन्ध मे सोचते है। किन्तु जन तीर्थकरो ने अहिंसा के सूक्ष्म रूप को भी स्वीकार किया हे। जीव दो प्रकार के है—स्थूल ओर सूक्ष्म। कीड़े मकोड़े मच्छर, मक्खी आदमी गाय, भैस आदि स्थूल जीव हे। मिट्टी, पानी, अग्नि वायु, वनस्पति आदि सूक्ष्म जीव हैं। जेन श्रावक गृहस्थ होते हैं। उनके स्थूल हिंसा का त्याग होता हे। किन्तु जैन साधु स्थूल और सूक्ष्म दानो प्रकार की हिंसा का त्याग करते हें। इसी कारण जेन मुनि हरियाली, कच्चे-पानी आदि का नही छू सकते। अग्नि का भी प्रयोग नहीं कर सकते। वायु की हिंसा से बचने के लिए वे ताली नही बजाते पखा नही झलते खुले मुह नही बोलते। मुखवस्त्रिका श्वास को रोकने के लिए नही हे अहिंसा की साधना के लिए है। बोलते समय मुह से तेज हवा निकलती है। अन्दर से निकलने वाली हवा की बाहर की हवा से टक्कर होती है तब वायु के जीवों की हिंसा होती है। इसी कारण छीक, जम्भाई आदि के समय भी यतना रखनी होती है।

आरगेलिया—में भी इसमें विश्वास करती हू।

मिरता—यदि अग्नि से हिंसा होती है तो आप भोजन किस प्रकार लेते हैं?

आचार्यश्री—गृहस्थ अपने लिए जो भोजन पकाते हैं, उसका कुछ हिस्सा हम ग्रहण करते हैं। वह भी सहज होना चाहिये। हमारे लिए पकाया हुआ भोजन हमारे काम नही आता। हमारे लिए यदि कोई विशेष तैयारी करता है तो हम उसे ग्रहण नही करते।

आरगेलिया—इस प्रकार तो आपको नियमित और समुचित आहार नही मिल पाता। फिर स्वास्थ्य कैसे अच्छा रहता होगा?

आचार्यश्री—स्वास्थ्य मानसिक वृत्तियो पर निर्भर करता है।

आरगेलिया—यदि आपके बिछोने मे खटमल हो तो आप क्या करेंगे?

आचार्यश्री—हम उन्हे मारेगे नही, निकालकर एक ओर रख देगे।

आरगेलिया—कुत्ते का पिल्ला बहुत सुन्दर होता है। कई लोग उसे शौक से पालते हैं। किन्तु बड़ा होने पर यो ही असहाय छोड़ देते हे। इस स्थिति मे क्या उस पिल्ले को उत्पन्न होते ही मार देना अच्छा है या बड़ा होने पर छोड़ देना?

आचार्यश्री—न तो उत्पन्न होते ही मारना अच्छा है न उस पर अतिनियन्त्रण करना अच्छा ह ओर न किसी को असहाय अवस्था मे छोड़ने का औचित्य है। किसी की स्वतत्रता को बिना मतलब हड़पना भी उचित नहीं है। आवश्यकतावश यदि किसी पर नियन्त्रण रखा जाए और अपने आश्रित बनाया जाए तो फिर उसे यो निराश्रित रूप मे छोड़ देना एक अतिचार है।अपने बच्चे को इस प्रकार नही छोडते तो पिल्ले के साथ ऐसा व्यवहार क्यो? आश्रित प्राणी का लालन-पालन भी मनुष्य के कर्त्तव्य की सीमा मे आता है।

आरगेलिया—हमारे देश मे यह समस्या नही है। किन्तु भारत मे यह समस्या बहुत बड़ी ह।

आचार्यश्री—यहा कुत्ते बहुत हैं तथा भारतीय जनमानस में धार्मिक व्यामोह भी अधिक है। अहिंसा की वास्तविकता को समझने मे भी भ्रान्ति हुई हे। यही कारण है कि अहिंसा के व्यवहार में सबका स्तर समान नहीं हे।

मिरता—यदि कोई जानवर सख्त बीमार हो तो उसे अस्पताल में इन्जेक्शन से मार देना ठीक है या यो ही छोड़ देना?

आचार्यश्री—कोई भी प्राणी चाहे कितना भी दुखी क्यो न हो, मरना नही चाहता। इस स्थिति में उसे मारना न्यायसगत कैसे हो सकेगा?

आरगेलिया—उसका दर्द मिटाने के लिए क्या उसे मारना ठीक नही है?

आचार्यश्री—किसी भी स्थिति मे प्राणी को मारा जाए, मारना आखिर मारना ही है। दर्द मिटाने का जहा तक सवाल है कौन किसका दर्द मिटा सकता है। मनुष्य का व्यामोह ही है कि वह सबको सुखी बनाने का दावा करता है। यदि कोई मनुष्य बीमारी से तड़पता है तो क्या उसे मार देना ठीक होगा?

आरगेलिया—नही, वह कानून से वैध नही है।

आचार्यश्री—क्या कानून केवल मनुष्य के लिए है, पशु के लिए नही?

मिरता—फिर उसे जीने देना चाहिये?

आचार्यश्री—किसी के जीने मे बाधक नही बनना चाहिये। प्राय लोग दूसरों को सुखी बनाने की बात सोचते हैं। किन्तु हम कहते हैं कि सुखी बनाना अथवा न बनाना हमारे वश की बात नही। कम से कम हम किसी को पीड़ित तो न करें।

आरगेलिया—मेरे एक कुत्ता है, उस पर से कोई गाड़ी गुजर रही हो तो उसे बचाना क्या ठीक नही है?

आचार्यश्री—मनुष्य अपने आश्रित प्राणी का बचाव करता ही है।

आरगेलिया—यदि वह कुत्ता मेरा न हो तो?

आचार्यश्री—किसी का भी हो, जीव तो है न? मनुष्य का यह सहज स्वभाव है कि वह अपने सामने होने वाली ऐसी दुर्घटना मे प्राणी बचाने का प्रयास करता है।

आरगेलिया—जैनधर्म पुनर्जन्म को मानता है तो क्या मनुष्य भी पशु होता है?

आचार्यश्री—मनुष्य कीड़ा भी हो सकता है और पिल्ला भी। आज उस पर आपका प्रेम है तो सम्भव पूर्व जन्म मे वह आपका भाई भी रहा हो।

आरगेलिया—मेरा मोह मेरी बेटी पर अधिक है। चक्रवर्ती की अपेक्षा मैं इसकी बात अधिक मानूगी। कोई प्राणी आफत मे फसा है और उसे देखकर यदि दिल मे दर्द होता है तो वह आसक्ति तो नही होगी?

आचार्यश्री—गहरी दृष्टि से सोचे तो यह आसक्ति ही है। क्योकि निर्विकल्प समाधि मे इसका कोई महत्त्व नही। कसाइखाने मे हजारो प्राणी मारे जाते हे हम उन्हे देखते हुए भी क्या करते हैं? हम यदि कसाइयो को कुछ नही कहते तो क्या देखन मात्र से हम पापी हो जाएगे? तत्त्व यह है कि मन, वचन और काय से हिंसा करने वाला, कराने वाला और अनुमोदन करने वाला हिंसक होता है। केवल देखने-मात्र से कोई हिंसक नही बनता। सम्भव हो तो हिंसक को समझाया जाए। यह सम्भव

न हो तो मध्यस्थ रहा जाए। हिंसा का पाप हिंसा करने वाले को लगेगा। देखने मात्र से यदि हिंसा का पाप लगता तो ईश्वर को सबसे अधिक लगता। क्योकि वह सर्वद्रष्टा है।

आरगेलिया—मै किसी भी आदमी को पाप करते देखकर अपने को रोक नही सकती।

आचार्यश्री—यदि पापी नही समझेगा तो क्या आप उसे मार-पीटकर समझाएगी। यदि उपदेश से कोई समझ सके तो हम भी उसके लिए प्रयास करते हैं। किन्तु कोई समझने की स्थिति में न हो तो क्या किया जाए? उस हिंसा को बचाने के लिए हम स्वय हिंसक बन जाए, यह तो ठीक नही। एक को बचाने से यदि दूसरे को कष्ट होता हो तो वहा क्या करना चाहिये?

आरगेलिया—यह तो बड़ा मुश्किल प्रश्न है।

[आचायश्री ने आचाय भिक्षु द्वारा प्रदत्त सात दृष्टान्तो को भिन्न-भिन्न करके चित्र के द्वारा विस्तार से समझाया। श्रीमती आरगेलिया और कुमारी मिरता ने बहुत गौर से सब कुछ देखा सुना।]

आचार्यश्री—जहा एक की रक्षा म दूसरे की हिंसा होती है, वहा अहिंसा की दृष्टि से क्या करना चाहिये।

आरगेलिया—बड़ा के लिए छोटो की हिसा को मैं अपनी दृष्टि से ठीक मानती हू।

आचार्यश्री—एक बड़े आदमी की अपेक्षा के लिए एक छोटे बच्चे को मार देना क्या उचित होगा?

आरगेलिया—बच्चे को आदमी की अपेक्षा छोटा नही मानना चाहिये। क्योकि दोनो एक ही जाति के है।

आचार्यश्री—तो फिर छोटा किसे मानना होगा? क्योकि जीवत्व की दृष्टि से सब प्राणी समान है। वर्तमान मे बच्चा भी न कुछ करता है और न कुछ बोलता है। उसका विकास तो भविष्य म अन्तर्गर्भित ह। भगवान की दृष्टि में तो सब प्राणी समान हैं।

मिरता—यह तो प्रकृति का नियम है कि बड़े छोटों को खाते हैं।

[आचार्यश्री ने उन्हें एक ओर चित्र दिखाया। उसम यह दिखलाया गया था कि मढक को साप, साप को मोर, मोर को कुत्ता कुत्ते को चित्ता, चित्ते को शेर, शेर को आदमी और आदमी को काल खा रहा है।]

आचार्यश्री—जब सारे ससार की स्थिति ही ऐसी है तब कौन बड़ा है और कौन छोटा ? यह निर्णय कर पाना भी कठिन है। सामान्य मानस तो यों मान लेता है कि बड़ों के लिए छोटों की हिंसा अव्यवहार्य नही है। किन्तु न्याय और तटस्थता की दृष्टि से क्या हम मान सकते हैं कि छोटों को पीड़ा कम होती है तथा उनमें जीवन की आकाक्षा नही होती ?

आरगेलिया—तब हमें क्या करना चाहिए ?

आचार्यश्री— न्याय की दृष्टि से क्या हम हिंसा को हिंसा नही मानेंगे ? यदि ऐसा नही होगा तो आचार-दृष्टि से पतन हुआ ही विचार-दृष्टि से भी पतन हो जाएगा। विचार-शुद्धि तो प्रत्येक व्यक्ति में होनी ही चाहिये। राष्ट्रहित की दृष्टि से कुछ लोग कही-कही गर्भपात आदि को भी वैध मान लेते हैं पर वास्तव मे वह भी हिंसा और पाप ही है।

आरगेलिया—यह तो बहुत जघन्य कृत्य है।

आचार्यश्री—छोटे प्राणी भी सुख चाहते हैं। यह सूक्ष्म तत्त्व आपको भारतीय सस्कृति और विशेषत जैन सस्कृति में ही मिलेगा।

आरगेलिया—इस स्थिति में हमारा क्या कर्त्तव्य होता है ?

आचार्यश्री—यह तो दर्शक के विवेक पर छोड़ना होगा। हम उसमें कोई हस्तक्षेप नही करते। किन्तु दर्शन कहता है कि जब एक के बचाव से दूसरे की हिंसा होती हो तो वहा तटस्थ रहना चाहिये। औरों को अहिंसक बना सके तो अच्छा हैं पर ऐसा सभव न हो तो हम हिंसक क्यो बने ?

आरगेलिया—यह बहुत कठिन हे।

आचार्यश्री—समाज और राष्ट्र मे बहुत कुछ होता है। खेती मे अनेक कीड़े मरते हैं। लोग वनस्पति और मास भी खाते है। किन्तु यह कोई जीवन का सिद्धान्त नही बनता।

आरगेलिया—मे किसी की हिंसा नही देख सकती। मै मरने वाले को बचाती हू।

आचार्यश्री—हम भी आपको नही रोकगे। पर समुद्र मे मछुए मछलिया पकड़ते हैं। आप किस किसे रोकेगी ?

आरगेलिया—उन्हे तो नही रोक सकती। यह तो बहुतो द्वारा स्थापित सिद्धान्त हो गया।

आचार्यश्री—सिद्धान्त कैसे हो गया ? क्या मछलियों के दर्द नही होता ? क्या आपके दिल म करुणा नही हे ?

मिरता—मैं ऐसा समझी हू कि हम हिंसा को हिंसा से रोकने का प्रयास न करे।

आचार्यश्री—शक्ति-प्रयोग के द्वारा किसी को हिंसा करने से रोकना अहिंसक उपक्रम नही है। नही जा सकता। इस प्रकार रोकना भी हिंसा है। जैन दर्शन की अहिंसा बहुत गहरी है।

मिरता—क्या आप भगवान मे विश्वास करते हैं?

आचार्यश्री—अवश्य करते है।

मिरता—भगवान के रूप में या अरूप में?

आचार्यश्री—हम जिन भगवान में विश्वास करते हैं, वे आपके भगवान से पृथक है।

आरगेलिया—कैसे?

आचार्यश्री—हम जिन्हे भगवान मानते हैं वे सृष्टि के कर्त्ता-हर्त्ता नही हैं।

मिरता—हिन्दू-धर्म ससार को माया मानता है, क्या आप भी ऐसा मानते हैं?

आचार्यश्री—नही, हम ऐसा नही मानते।

मिरता—इस ससार को किसने बनाया?

आचार्यश्री—यदि किसी को ससार का कर्ता माना जाता है तो यह भी प्रश्न हो सकता है कि कर्त्ता को किसने बनाया? यदि कर्त्ता को शाश्वत मानते हैं तो इस ससार को ही शाश्वत क्यो न मान ले?

आरगेलिया—क्या आप ऐसा मानते हैं कि सब प्राणी भगवान हैं?

आचार्यश्री—सब प्राणी भगवान बन सकते हैं बशर्ते कि बन्धन टूट जाए। सबकी आत्मा एक है, ऐसा हम नहीं कहते। सबका स्वतन्त्र अस्तित्व है। अनेक प्राणी भगवान् बने हैं और भविष्य में अनेक प्राणी भगवान बन सकेंगे।

आरगेलिया—क्या हमारे अन्दर सब शक्तिया हैं?

आचार्यश्री—है अवश्य, किन्तु जिनकी शक्तिया का विकास हुआ है वे ही भगवान हैं। उस विकास के लिए ही साधना की जाती है।

मिरता—आप भक्ति और ज्ञान—इन दोनो मे से किसे अधिक महत्त्व देते हैं?

आचार्यश्री—हम भक्ति, ज्ञान और क्रिया—इन तीनो को समान महत्व देते है। इन तीनों का समन्वय होने से ही भगवान बना जा सकता है। जैनदर्शन कहता है कि ज्ञान, दर्शन और चारित्र तीनो सम्यक् हो। कुछ लोग एकान्त भक्ति मे कुछ एकान्त ज्ञान मे और कुछ एकान्त क्रिया में विश्वास करते हैं। किन्तु उससे कल्याण नही होने वाला है। मै सोचता हू कि जैनदर्शन की इस मान्यता से आप भी सहमत होगी।

(आचार्यश्री ने उन्हें जैन साधुचर्या की विस्तार से जानकारी दी। पद-यात्रा, और अकिंचनता की बात सुनकर श्रीमती आरगेलिया बाली—'जैन बनना वस्तुत बहुत ही कठिन है। मैंने अनेक सन्त पुरुषा का साक्षात्कार किया है, किन्तु आपके प्रति मेरी सबसे अधिक आस्था है। आपने हमें समय दिया, इसके लिए हम अत्यन्त आभारी हैं। 'माता-पुत्री ने साधु-साध्वियों की कला और लिपि-साधना में गहरी अभिरुचि ली।' उन्होने कहा—'हमारी और भी बहुत सारी जिज्ञासाए हैं। हम पुन आपके सान्निध्य में उपस्थित होंगी।')

१८ जुलाई, १९६५
दिल्ली बिड़ला मन्दिर

आचार्य तुलसी : मेसिड्ज

[जुलाई महीने मे अपराह्न के समय अमरीका के यहूदी धर्म के प्रधान श्री मेसिड्ज आचार्यश्री तुलसी से भेट करने आए। श्री मेसिड्ज उस समय विश्वभ्रमण कर रहे थे। उस यात्रा मे ससार के सभी प्रमुख धर्मों का अध्ययन करना उनका लक्ष्य था। तब तक जेन धर्म के अध्ययन का अवसर उन्हे प्राप्त नही हुआ। दिल्ली मे अपना लम्बा प्रवास पूर्ण करके वे शीघ्र ही अमरीका वापस जा रहे थे। लाला गिरधारीलाल जन द्वारा आचार्यश्री के दिल्ली प्रवास का सवाद पाकर वे दर्शनार्थ चन्ले आए। उनके साथ प्रसिद्ध उद्योगपति श्री चुन्नीलाल जयपुरिया भी थे। श्री मेसिड्ज बहुत ही हसमुख और प्रसन्नमुख व्यक्ति थे। आचार्यश्री को नमस्कार कर वे बैठ गये।]

आचार्यश्री—जैन साधुओं से मिलने का कभी अवसर मिला ?

मेसिड्ज—साधुओ से मिलने का अवसर तो नही मिला किन्तु जैनधर्म के सम्बन्ध मे सुना अवश्य है कि वह हिन्दू और बौद्ध धर्म के बीच की एक शाखा है।

आचार्यश्री—जेन साहित्य कभी पढ़ने का अवसर मिला ?

मेसिड्ज—जी, बहुत थोड़ा साहित्य मुझे उपलब्ध हुआ है। मै जेनधर्म के विषय में कुछ जानना चाहता हू।

आचार्यश्री—जैनधर्म एक स्वतन्त्र धर्म है। किसी अन्य धर्म विशेष की शाखा नही। यह शुद्ध आध्यात्मिक भित्ति पर टिका है। आत्म-कर्तृव्य मे इसका विश्वास है। यह ईश्वर को कर्त्ता नही मानता। कर्मवाद इसका मुख्य सिद्धात है। इसने अहिंसा को बहुत सूक्ष्मता से स्वीकार किया है। चलने-फिरने वाले जीवो की हिंसा का वर्जन तो है ही साधुओं के लिए अग्नि वायु, वनस्पति आदि सूक्ष्म जीवो की हिंसा भी निषिद्ध हे।

मेसिड्ज—फिर आप चलते कैसे हैं ?

आचार्यश्री—दिन मे देखकर और रात में रजोहरण से पूजकर चलते है।

मेसिड्ज—जैनधर्म ने अहिंसा का स्वरूप बहुत गहराई से ग्रहण किया है।

क्या इसका कारण यह है कि मनुष्य जिस योनि के जीवो की हिंसा करता है उसी योनि मे उत्पन्न होकर उसे दु ख भोगना पड़ता है।

आचार्यश्री—नही, यह तो गोण कारण है। मुख्य कारण यह है कि हिंसा से वृत्तिया कलुषित होती हैं ओर आत्मा का पतन होता है। आत्म-पतन को रोकने के लिए ही अहिंसा का पालन किया जाता है।

मेसिड्ज—आत्मा की मुक्ति कैसे होती है ? बौद्ध धर्म मे आत्मा की समाप्ति को ही मुक्ति कहते हें। क्या जेनधर्म आत्म-मुक्ति का स्वरूप इससे भिन्न मानता है।

आचार्यश्री—जेनधर्म मे आत्मा के मूल स्वरूप म अवस्थित होने को मुक्ति कहा गया ह समाप्ति को नही।

मेसिड्ज—समाप्ति अच्छी होती है या पूर्ण विकास ?

आचार्यश्री—वस्तु का मूल कभी समाप्त नही होता। यदि मूल समाप्त हो जाएगा तो चेतन जड़ बन जाएगा। जैनदर्शन के अनुसार ऐसा कभी होता नही है। विकास का अर्थ है पूर्णता की प्राप्ति। इस दृष्टि से विकास अच्छा है, समाप्ति नही।

मेसिड्ज—जैनधर्म आत्मा के पूर्ण विकास को मुक्ति मानता है। ईसाई आदि दूसरे धर्म भी अपनी दृष्टि से आत्मा का पूर्ण विकास करते हैं। उनकी मुक्ति के विषय मे आपका क्या अभिमत हे ?

आचार्यश्री—अन्य कोई मुक्ति प्राप्त नही कर सकता जैनधर्म की ऐसी मान्यता नही हे। सही मार्ग को प्राप्त करन वाला कोई भी अपनी आत्मा का पूर्ण विकास करके मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

मेसिड्ज—जनधर्म ने पूर्णरूप से अहिंसा को जिस सूक्ष्मता से पकड़ा हे वेसा ईसाई धर्म म नही हे। उस स्थिति मं क्या आत्मा का पूर्ण विकास सम्भव हो सकता है ?

आचार्यश्री—जब दर्शन ही पूर्ण नही तब विकास भी पूर्ण कैसे होगा ? जैनधर्म मानता ह कि पहल ज्ञान सही होना चाहिए। फिर हमारा विश्वास भी सही हो। ज्ञान ओर विश्वास दोनो सम्यक् होने से आचरण सम्यक् होगा। उसके द्वारा सही विकास हो सकेगा।

मेसिड्ज—क्या ज्ञान का अर्थ ब्रह्म हे ?

आचार्यश्री—नही, ज्ञान का अर्थ ब्रह्म नही ह। ब्रह्म तो ईश्वर को कहते है। ज्ञान का अर्थ हे प्रकाश। दूसरा तत्त्व है श्रद्धा और तीसरा है चारित्र। इन तीनों का समन्वय ही मुक्ति का माध्यम है।

हमने सुना है कि ईसाईया म ईश्वर बनने का किसी को अधिकार नही हे। क्या यह ठीक है ?

मेसिड्ज—हा, यह ठीक हे।

आचार्यश्री—जैनधर्म मानता ह कि हर व्यक्ति ईश्वर वन सकता है।

मेसिड्ज—ईसाई धर्म मानता हे कि कोई भी पूर्णरूप से भगवान नही बन सकता। उसका एक अश वन सकता है।

आचार्यश्री—राजनीति म भी सबको समानाधिकार होता हे। फिर धर्म के क्षेत्र मं यह असमानता क्यो ?

मेसिड्ज—यदि ऐसा होगा तव आदमी और भगवान मे क्या अन्तर होगा ?

आचार्यश्री—जव तक आत्मा परमात्मा नही वनता तव तक तो अन्तर स्पष्ट हं। परमात्मा वनने के पश्चात् अन्तर की अपेक्षा ही क्या है।

मेसिड्ज—क्या भगवान पुन मनुष्य के रूप म अवतरित हो सकता है ?

आचार्यश्री—नही, ऐसा नही होता। क्योकि भगवान बनने के बाद पुन मनुष्य रूप मं अवतरित होने का कोई कारण अवशेष नही बचता।

मेसिड्ज—सम्पूर्ण विकास का साधन आप क्या मानते हैं ?

आचार्यश्री—सम्पूर्ण विकास के साधन हैं—ज्ञान, श्रद्धा, चारित्र ओर तपस्या।

मेसिड्ज—जैनधर्म तपस्या मं कितना विश्वास करता है ?

आचार्यश्री—जैनधर्म मे तपस्या का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। किन्तु केवल उपवास करना ही तपस्या नही है। इसके अतिरिक्त भी तप के अनेक प्रकार हैं।

मेसिड्ज—जेनधर्म के अनुसार कोई चीज हमे अच्छी लगती ह क्या वह पाप है ?

आचार्यश्री—नही, ऐसा नही है। आसक्ति पाप है। सही लक्ष्य का निर्धारण कर उस दिशा मे बढ़ने की इच्छा पाप नही हे।

मेसिड्ज—आप विश्राम को किस सीमा तक प्रश्रय देते है ?

आचार्यश्री—हमारा लक्ष्य शरीर को कष्ट देना मात्र नही है। हम आराम मे हैं। आत्मसुख की प्राप्ति के लिए जो कुछ करते है, उसमें हमे आराम मिलता हे।

मेसिड्ज—मुझे आज बहुत खुशी भी है और दुख भां। खुशी इसीलिए कि मैं आपके पास उपस्थित हू। मुझे जैनधर्म मे रुचि है। मै जो चाहता था वह आपके पास मिला। दुख इस बात का है कि मे आपसे ज्यादा बात नही कर सकूगा। क्योकि अभी-अभी मुझे राष्ट्रपति से मिलने जाना है।

आचार्यश्री—सम्भव हो तो भविष्य में आप पुन बात कर सकेंगे। ऊपर की सुविधाए न होते हुए भी इतनी देर तक आप हमारी बात सुन सके, यह प्रसन्नता का विषय है।

मेसिड्ज—आपकी वाणी से मुझे बड़ी शाति मिली है।

[श्री मेसिड्ज एक गहरी आत्मीयता की अनुभूति करते हुए वहा से उठे। श्रद्धा और विनम्रता से आचार्यश्री को नमस्कार कर विदा हुए।]

आचार्य तुलसी : हरूसा कबायसी

[जापानी दूतावास के प्रथम कौंसलर श्री हरूसा कबायसी ने आचार्यश्री तुलसी से भेट की। श्री कबायसी विचारा की गहराई मे उतरने वाले सहज व्यक्तित्व के धनी व्यक्ति थे। वे चिन्तनपूर्ण मुद्रा मे ही आचार्यश्री के पास आए थे। नम्रता एव शिष्टता से का अभिवादन कर बैठ गए। उन्होने अनेक विषयो पर बातचीत की।]

कबायसी—आचार्यजी ! मैने गत १० जुलाई को विश्वशान्ति और अणुव्रत विषयक आपकी विचार-परिषद में भाग लिया था। उस कार्यक्रम का मेरे मानस पर गहरा प्रभाव पड़ा। मुझे प्रसन्नता है कि शीतयुद्ध को रोकने के लिए आपका अणुव्रत आन्दोलन सफलतापूर्वक कार्य कर रहा है। अभी आपके पास आते समय मार्ग मे बेठा-बैठा मैं सोच रहा था कि जापान में आर्थिक विकास हुआ है किन्तु आध्यात्मिक उन्नति नही हुई है। हमारे देश के प्रधानमन्त्री भी इस बात का अनुभव करते है। अध्यात्म के बिना सब कुछ अधूरा है। क्योकि सब तत्त्वों का सवसम्मत एकमात्र आधार यही है। मै मानता हू कि इसके लिये आपका आन्दोलन बहुत अच्छा है। लोग कहते हैं कि आज विज्ञान ने बहुत विकास किया है। किन्तु मैं मानता हू कि वह जहा था वही पर है। क्योंकि इसके साथ हमारे नैतिक मूल्य इतने गिर गए है कि उसे वास्तविक विकास मानना भूल होगी। भारत के जननायक स्व० जवाहरलाल नेहरू जब टोकियो से आए थे तब वहा उनका प्रभावशाली भाषण हुआ था। उस भाषण का जापान की जनता पर असर हुआ। उन्होने कहा—'आज ससार में सर्वत्र भय का वातावरण है। सब परस्पर आतकित है। राजनीतिक विकास अवश्य हुआ है किन्तु केवल वही पर्याप्त नही है। आध्यात्मिक विकास की भी आवश्यकता है। इसके अभाव मे अन्य समस्त विकास ह्रास ही माना जाएगा। नेहरूजी की उक्त बात को सबने पसन्द किया। ससार में जितने धर्मगुरु हुए हैं, वे प्राय एशिया महाद्वीप में ही हुए हैं और उसमें भी सर्वाधिक भारत मे। अत इस क्षेत्र मे भारत को आगे आकर काम करना चाहिये। यहा से ऐसा घोष बुलन्द हो कि आर्थिक और भौतिक उन्नति ही सब कुछ नही है। इस घोष को सारा विश्व सुनेगा। इसकी सुन्दर प्रतिक्रिया होगी।

आज का जन-मानस हर बात का दार्शनिक आधार ढूढता है। दर्शन के अभाव म कोई भी विचारधारा पनप नही सकती। अत मेरी भावना है कि इस देश से कोई चीज दर्शन का आधार लेकर निकल और सारे ससार मे फैले। गत वर्ष टोकियो में जब नगर निगम के चुनाव हुए, तब एक ऐसी पार्टी जीत कर आई जो सरकार की नीतियों के विपरीत थी। वह बौद्ध दर्शन पर आधारित थी। सरकार से विपरीत होने पर भी जनता ने उसका स्वागत किया। क्योकि लोग दर्शन की गहराई चाहते हैं।

आचार्यश्री—आपके विचार बहुत सुन्दर हैं। मैं सोचता हू कि आपने मेरे ही विचारों का प्रतिपादन किया है।

कबायसी—आपका आन्दोलन इस देश की राजनीति को प्रभावित कर सकेगा।

आचार्यश्री—जापान मे मुख्य धर्म कौन-सा है?

कबायसी—मुख्यत वहा बौद्ध धर्म का प्रचलन है।

आचार्यश्री—क्या जापान मे जेन ईसाई आदि भी है?

कबायसी—है, किन्तु बहुत थोड़े।

आचार्यश्री—क्या बौद्ध धर्म जापान का राज-धर्म है?

कबायसी—नही, बौद्धधर्म वहा का राज-धर्म नही है। वहा के नागरिक अपनी इच्छानुसार कोई भी धर्म स्वीकार कर सकते हैं।

आचार्यश्री—क्या जापान में ध्यान सम्प्रदाय चल रहा है।

कबायसी—जब मैं लड़का था तब ध्यान सम्प्रदाय में मैंने साधना की थी। पहाड़ों मे रहकर गले में थैले जैसी कोइ चीज डालकर यह साधना की जाती है। ध्यान सम्प्रदाय वहा लाखा मे प्रचलित है। यहा तक कि विद्यार्थी भी ध्यान करते हैं।

आचार्यश्री—क्या सैनिकों में भी इसका प्रसार है?

कबायसी— हा सैनिकों मे भी इसका प्रसार है। किन्तु वह केवल इसलिये कि उनकी एकाग्रता बनी रहे। पहाड़ों में मन्दिर होते हैं। वहा साधना का क्रम चलता है। साधना-काल मे प्रतिदिन प्रात पहले पद्मासन से ध्यान किया जाता है। तत्पश्चात नाश्ता मिलता है। मन्दिर म जो भिक्षु होते हैं वे इस विषय में प्रवचन करते हैं। पिछले दो वर्षों में ध्यान सम्प्रदाय का प्रसार बहुत बढ़ा है। जो छात्र अध्ययन समाप्त करने के पश्चात नौकरी करते हैं, उन्हें उसका एक पाठ्यक्रम पढ़ना होता है। यह वहा का एक अनिवार्य नियम है। प्राइवेट कम्पनी वाले इस प्रकार के लोगों को सुदूर पहाड़ों और मन्दिरों में भेजने की व्यवस्था करते हैं। उन्हें परिवार से दूर रखते हैं और प्रशिक्षण के बाद ही उनसे काम लेते हैं।

आचार्यश्री—हमने एक नैतिक आन्दोलन प्रारम्भ किया है। वह सर्व धर्म-सम्मत

है। उसमें भी ध्यान के अभ्यास का क्रम रखा गया हे ।उसमें किसी धर्म या उपासना विशेष को महत्त्व नही दिया गया है। मेरा विश्वास चरित्र में ह। जैन बाद्ध, हिन्दू, सिख, ईसाई आदि कोई भी क्यो न हो, सबका चरित्र ऊचा होना चाहिए। आजकल धर्म भी रूढ़ बन गया है। वह यन्त्र की तरह चलता हे। उसी प्रकार ध्यान भी मशीन की तरह रूढ़ बन रहा है। इसके पीछे जो आध्यात्मिक दर्शन होना चाहिए, वह बहुत कम है। जो लोग ध्यान करते हैं, वे भी अधिकाशत शारीरिक स्वास्थ्य, समृद्धि, देश-सेवा आदि के लिए ही करते हैं। आत्म-शक्ति के लिए ध्यान करने वाले विरल व्यक्ति हैं। मन्दिरों मे भी लोग इसी भावना से जाते हैं और भगवान से प्रार्थना करते है कि उनके पाप धुल जाए। यह धर्म की वास्तविक आराधना नही है। धर्म को तेजस्वी बनाने तथा पुस्तकों में से निकालकर व्यवहार में लाने का उपक्रम हमने किया है। यदि हम जेनत्व के बारे में कुछ कहते तो लोग उसे साम्प्रदायिक समझते। इस दृष्टि से हमने अणुव्रत क माध्यम से केवल आचारवान बनने की बात कही। इस आन्दोलन का प्रसार भारत के सभी प्रान्तों में हुआ है। अब उसे विदेशों में प्रसारित करने के लिए भी सोचा जा रहा ह। सब धर्मों के मौलिक सिद्धान्तो का सग्रहण कर असाम्प्रदायिक धर्म या विश्वधर्म के रूप में पूरे ससार में चारित्रिक मूल्यो का प्रसार एक नया प्रयोग हो सकता है अपेक्षा एक ही है कि इसमें सब धर्मो की सभागिता हो और सब लोग इसे स्वीकार करे। कुछ राजनीतिज्ञ विश्व-सरकार की कल्पना करते हैं पर विश्वधर्म की बात नही सोचते। ससार मे शान्ति की स्थापना के लिए विश्वधर्म की कल्पना को मूर्त रूप देना होगा। भारत की समस्त राजनीतिक पार्टियो ने इसके महत्त्व को स्वीकार किया है। अब यदि मानवमात्र के हित के लिए इसका बाहर प्रसार किया जाए तो उसमें आपका क्या विचार हे ?

कथायसी—आपने मानवमात्र के हित के लिए जो निष्काम कर्त्तव्य की बात कही वह मुझे बहुत अच्छी लगी। वर्तमान विश्वस्थिति मे अणुव्रतो का प्रसार होना अत्यन्त आवश्यक हे। चारो ओर स्वार्थ भावना बढ़ रही है। एक दूसरे देश के बीच जो वैर भाव बढ़ रहा है उसे मिटाने के लिए प्रयास करना चाहिए। सयुक्त राष्ट्र सघ में ऐसा विधान है। किन्तु उसका प्रयोग नही होता। मेरे अभिमत से स्व० नेहरू जेसी कोई एक व्यक्तित्व-सम्पन्न शक्ति सामने हो तो यह काम करना सभव हे। सामान्यतया अनेक देश शान्ति चाहते हें किन्तु कुछ राजनीतिज्ञ शान्ति मे बाधक बन जाते है। इसलिए आज एक ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता है जो सबको साथ लेकर चल सके।

आचार्यश्री—आप अपने देश में आन्दोलन के प्रसार के लिए क्या सोचते हैं ?

कवायसी—भारत और जापान की आध्यात्मिक संस्कृति के आदान-प्रदान से स्वत ही एक ऐसी शक्ति उद्भूत होगी, जिससे यह कार्य सहज हो सकेगा। भारत और जापान के बीच सास्कृतिक विनिमय बहुत कम है। यह कैसे बढ़े ? इस विषय में चिन्तन करना है।

आचार्यश्री—यह सास्कृतिक एकता को बढ़ाने का उपक्रम है। क्या जापानी लोग जानते हैं कि जैनधर्म और बौद्ध धर्म बहुत निकट हैं?

कवायसी—नहीं, जापानी जनता यह नही जानती।

आचार्यश्री—आप इस बात को जानते हैं कि दोनों धर्म भारतीय हैं। दोनों के प्रवर्तक समकालीन थे। दोनों की विचारधारा में काफी सामजस्य था। फिर भी बौद्ध धर्मानुयायी जैनधर्म से अपरिचित हैं। जापान और भारत के बीच सास्कृतिक सम्बन्धों को दृढ़ करने के लिए यह जरूरी है कि श्रमण-सस्कृति की जैन और बौद्ध— दोनों धाराओं का ज्ञान हो। आज जिस प्रकार के सम्बन्ध बढ़ाने की बात सोची जा रही है वह राजनीतिक अधिक है और सास्कृतिक कम। क्या आपने बौद्ध भिक्षु जगदीश काश्यप का नाम सुना है ?

कवायसी—जी नहीं, मैंने नही सुना।

आचार्यश्री—उन्होंने हमसे कहा कि ऐसे अनेक बौद्ध साधु हैं जो जैनों का नाम तक नही जानते। यह बहुत अखरने वाली बात है। हमारे धर्मसघ में तो जैन और बौद्धो धर्म का तुलनात्मक साहित्य लिखा जा रहा है।

कवायसी—मैं आपसे एक निवेदन करना चाहता हू। मैंने अपने अनुभव से पाया कि पहले भारत मे ध्यान आदि का प्रत्यक्ष ज्ञान था। किन्तु अब उसके बारे मे केवल बातें ही अधिक होती हैं। बातों को छोड़कर यदि ध्यान की प्रवृत्ति को बढ़ाया जाए तो शक्ति का विकास हो सकता है।

आचार्यश्री—आपने ठीक कहा। भारतीयो में ध्यान की प्रवृत्ति कम हुई है। किन्तु अब एक ऐसी लहर आई है कि यह प्रवृत्ति क्रमश बढ़ रही है।

[आचार्यश्री ने उन्हे साधु-साध्वियों की कला एव लिपि-साधना से अवगत किया। सूक्ष्माक्षरों को देखकर वे बहुत प्रभावित हुए। उन्होने जाते-जाते आचार्यश्री से निवेदन किया 'मैं आपका बहुत आभारी हू कि आपने मुझे समय दिया। मैं विश्वास करता हू कि आपका अणुव्रत आन्दोलन देश के लिए अच्छे परिणाम प्रस्तुत कर सकेगा।']

आचार्य तुलसी : डगलस् बेनेट

[सायकाल के समय अमरीका के भारत स्थित राजदूत चेस्टर बोल्स के विशेष सहयोगी श्री डगलस् बेनेट ने आचार्यश्री तुलसी से भेट की। श्री डगलस् बेनेट प्रौढ अवस्था की प्रथम सीढी पर आरूढ हो चुके थे। फिर भी काफी गहराई से तत्त्व की सूक्ष्मता को पकडते थे। शांति और सहअस्तित्व की नीति मे उनका विश्वास था। वे आए और विनम्र भाव से अभिवादन कर बैठ गए। औपचारिक वार्त्तालाप के पश्चात आचार्यश्री ने अणुव्रत-आन्दोलन के लक्ष्य, उद्देश्य एव कार्य प्रणाली का परिचय दिया। एक साथ इतनी जानकारी पाकर उनके मन मे कई प्रश्न उठे। उनके प्रश्न और आचार्यश्री के उत्तर यहा प्रस्तुत है।]

डगलस्—अपरिग्रह का क्या अर्थ है ?

आचार्यश्री—एक निश्चित मर्यादा से अधिक सग्रह न करना।

डगलस्—ब्रह्मचर्य से आपका क्या तात्पर्य है ?

आचार्यश्री—ब्रह्मचर्य का अर्थ है—मन और इन्द्रियों का सयम तथा वासना-विजय का अभ्यास। इसका सम्पूर्ण पालन त्यागी और दृढ सकल्पी व्यक्ति ही कर सकता है।

डगलस्—महाव्रत और अणुव्रत दो क्यो किए गए ?

आचार्यश्री—महाव्रती गृहत्यागी होता है। वह अहिंसा सत्य आदि व्रतों का परिपूर्ण पालन करता है। गृहस्थ जीवन में रहने वाले ऐसा नही कर सकते। उनके लिए अणुव्रत है। अणुव्रत का अर्थ है—छोटे व्रत। एक आदर्श नागरिक की न्यूनतम मर्यादा का नाम अणुव्रत है। समाज में रहने वाला व्यक्ति अपनी सुरक्षा और जीवन-निर्वाह के लिए हिंसा का भी सहारा लेता है। किन्तु वह निरपराध प्राणी का सकल्पपूर्वक वध न करे, यह उसका अणुव्रत है।

डगलस्—मैं आपके इस कथन से पूर्णत सहमत हू।

आचार्यश्री—कोई भी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र दूसरे पर आक्रमण न करे। दूसरों द्वारा आक्रान्त होने पर उसका मुकाबला करना जरूरी होता है। किन्तु व्यक्ति स्वय

तो कम से कम आक्रान्ता न बने।

डगलस—आक्रान्ता कौन है ? और आक्रान्त कौन ? इसका निर्णय करना भी बहुत कठिन है।

आचार्यश्री—अणुव्रत कहता है कि प्रत्येक मनुष्य का मानवीय एकता और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में विश्वास हो। हम स्वतत्र रहना चाहते हैं तो हमारा कर्त्तव्य है कि दूसरा की स्वतन्त्रता मे भी हम बाधक न बने। जाति, वर्ण, लिंग सम्प्रदाय आदि को लेकर सघर्ष की स्थिति न हो। अपनी ओर से चलाकर आक्रमण करनेवाला आक्रान्ता होता है तथा जिस पर आक्रमण किया जाता है, वह आक्रान्त होता है। आक्रान्ता और आक्रान्त का निर्णय घटना की पृष्ठभूमि देखकर किया जा सकता है।

डगलस—आज बहुत सारे ईमानदार कहलाने वाले भी कहीं-न-कहीं अप्रामाणिकता का व्यवहार करते है।

आचार्यश्री—अणुव्रत कहता ह कि इस तरह का ढोग नही होना चाहिए। आज नैतिकता मे भी राजनीति का प्रयोग होने लगा है, यह वाछनीय नही है। व्यक्तिगत सग्रह की भी मर्यादा होनी चाहिये। अणुव्रत में मानव-मात्र के हित के लिए इसी प्रकार के नियमो की सघटना की गई है।

डगलस्—क्या आप सोचते है कि आज का विश्व शाति की ओर जा रहा है ?

आचार्यश्री—मैं ऐसा नही सोचता। उस शाति की दिशा म जाना चाहिये। इसके लिए तीव्र प्रयत्न अपेक्षित है। यदि ऐसा नही हुआ तो अणुविस्फोटो से विश्व नष्ट हो जाएगा।

डगलस्—मै व्यक्तिगत रूप मे मानता हू कि वर्तमान ससार बहुत दु खी है। जापान पर अणु-प्रयोग के पश्चात आणविक शस्त्रो के विरोध में व्यापक जनमत तैयार हुआ है। मेरा अपना विश्वास ह कि शाति के लिए अणुव्रत के सिद्धान्त मान्य हो होगे।

आचार्यश्री—हम भी इस दिशा मे प्रयत्नशील है। अमरीका जसे समृद्ध देश के नागरिक यदि इसके लिए पहल करे तो दूसरो पर भी इसका प्रभाव पड़ सकेगा। क्योकि आज सारे ससार की आखे अमरीका और रूस—इन दो बड़े देशों पर ही टिकी हुई हैं।

डगलस्—बहुत सौभाग्य की बात होगी यदि अमरीका-वासी अणुव्रत के नियमों को स्वीकार करें। अब भी वहा प्रथम और द्वितीय महायुद्ध म भाग लने वाले अनेक व्यक्ति मौजूद हैं। उनकी भावना में शायद परिवर्तन न भी हो। किन्तु नई पीढ़ी अणुव्रत का अवश्य आदर करेगी।

आचार्यश्री—यह भावी पीढ़ी को सुधारने का ही विशेष उपक्रम है।

डगलस्— केवल नियमो की सघटनामात्र से यह काम नही होगा। इनका जीवन मे प्रयोग कैसे हो, यह सिखाना पड़ेगा।

आचार्यश्री—हम भी मानते हैं कि इनका प्रशिक्षण आवश्यक है।

डगलस्—शायद आप जानते होगे कि अमरीका मे रगभेद का काफी प्रभाव था। वहा गाधीजी की अहिंसा का बहुत प्रभाव हुआ। आज के राष्ट्र-नेता यह महसूस करने लगे है कि समस्याओ के समाधान के लिए अहिंसा ही एकमात्र अमोघ शस्त्र है।

आचार्यश्री—क्या राष्ट्रपति कैनेडी की हत्या मे इसी रगभेद नीति का हाथ रहा ?

डगलस्—नही ऐसा कुछ नही था। वह हत्यारा कोई पागल था।

आचार्यश्री—क्या इसका निर्णय हो चुका है ?

डगलस्—निश्चयपूर्वक कुछ नही कहा जा सकता। क्याकि हत्यारे को भी मार दिया गया। किन्तु इस मामले की सूक्ष्मता से जो जाच की गई। उससे मालूम होता है कि हत्यारा कोई पागल था।

आचार्यश्री—क्या अमरीका में रगभेद कम हो रहा है ?

डगलस्—गत पाच वर्षों म वहा बहुत लड़ाई-झगड़े हुए। किन्तु अब गोरे लोग कुछ सहिष्णु बनने लगे हैं। वे वास्तविकता को महसूस करने लगे हैं आर अहिंसा के प्रति आस्थावान बने हैं। उनके दिलो मे अपने आचरण पर पश्चात्ताप है। वे मानने लगे हैं कि उन्होने जो हिंसा का प्रयोग किया वह गलत था।

आचार्यश्री—मैं सोचता हू कि अभी इस भावना मे ओर विकास अपेक्षित है।

डगलस्—हा अभी तो इसमं दस वर्ष ओर लग जाएगे।

आचार्यश्री—इसके साथ अणुव्रता की भूमिका भी तैयार होगी।

डगलस्—अणुव्रत के लिए तो भूमिका तैयार है। केवल बीज-वपन की अपेक्षा है।

आचार्यश्री—अमरीकी राजदूत चेम्स्टर वोल्स हमसे मिल चुके है।

डगलस्—में उन्हें आपका सन्देश भेजूगा।

आचार्यश्री—आप अपने साथियों को भी आन्दोलन के बारे मे बताए।

डगलस्—मैं मानता हू कि परिवर्तन बहुत धीमे होता है। फिर भी प्रसार होना चाहिये।

आचार्यश्री—हमारे प्रयत्नों मे ओर अधिक तीव्रता होनी चाहिये। ससार म और भी अनेक आन्दोलन हैं पर उनमे बहुतों के पीछे राजनीतिक उद्देश्य निहित है।

अणुव्रत-आन्दोलन शुद्ध अध्यात्म की भूमिका पर टिका हुआ है।

डगलस्—यदि आपके पास समय हो तो कृपया जैनदर्शन के बारे में मुझे कुछ बताए।

आचार्यश्री—जैनधर्म एक विशुद्ध आध्यात्मिक धर्म है। वह आत्म-कर्तृत्व मे विश्वास करता हे। प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न-भिन्न आत्मा होती है। वह किसी एक के आदेश में यन्त्र की तरह नही चलती। समस्त प्रवृत्तिया कृत कर्मों के आधार पर होती हैं। आत्मा कर्मों से आवृत है, इसलिए इसका पूर्ण विकास नही हो पाता। प्रयास से वे आवरण दूर हो सकते हैं। उसके तीन मार्ग हैं—

१ सम्यग्ज्ञान।

२ सम्यग्दर्शन।

३ सम्यग् चारित्र।

इन तीना साधनो से आत्मा परमात्मा वा पद प्राप्त कर सकती है। किसी दर्शन मे ऐसा माना जाता है कि परमात्मा बनने का अधिकार किसी को नही है। किन्तु जैन दर्शन कहता है कि प्रत्येक आत्मा में परमात्मा का पद प्राप्त करने की शक्ति है। अत ईश्वर भी एक नही, अनेक हैं। उनमें परस्पर कभी विरोधाभास नही होता। क्योकि उन्हें ससार का न तो निर्माण करना है और न ध्वस। आत्म-स्वरूप में रमण करना ही उनका गुण है।

डगलस्—उन मार्गों पर किस प्रकार चला जाता है?

आचार्यश्री—इसके लिए ध्यान का अभ्यास करना होगा।

डगलस्—मैं प्रतिदिन ध्यान करता हू। किन्तु उसकी विधि पूरी तरह नही जानता।

आचार्यश्री—आप जानना चाहेगे तो हमारे साधु उसकी विधि बता सकेंगे।

डगलस्—मैं इसके लिए समय निकालने का प्रयत्न करूगा।

आचार्यश्री—अहिंसा पर जैनदर्शन ने जितना बल दिया है उतना किसी अन्य दर्शन ने नही दिया। गाधीजी की अहिंसा श्रीमद्रायचन्द्र से प्रभावित थी और रायचन्द्र जैनदर्शन से प्रभावित थे। गाधीजी के विचार जैनत्व के बहुत निकट थे। जैनदर्शन विचार-सामजस्य में विश्वास रखता है। इसे स्याद्वाद कहते हैं।

डगलस्—यह भारत की सबसे बड़ी ताकत है।

आचार्यश्री—हम इसे सहअस्तित्व कहते हैं। आज सयुक्त राष्ट्रसघ के माध्यम से विभिन्न राष्ट्र बात करते हैं। उसमें अप्रत्यक्ष रूप से स्याद्वाद का ही हाथ है। स्याद्वाद का अर्थ है—अनेक विरोधी विचारों का समन्वय।

आचार्य तुलसी : हाइमो राड

१

[मध्याह्न क समय मेक्समूलर भवन के डायरेक्टर जर्मनवासी श्री हाइमो राड अपनी पत्नी श्रीमती हेर्टा राड और अपनी दो पुत्रियो के साथ आचार्यश्री तुलसी के सान्निध्य मे उपस्थित हुए। श्री राड धर्म और अध्यात्म के प्रति आस्थावान थे और भारतीय सस्कृति म गहरी अभिरुचि रखते थे। सन् १९६४ मे आचायश्री क दिल्ली प्रवास मे उनका प्रथम सम्पर्क हुआ। उनके निवेदन पर आचार्यश्री का मेक्समूलर भवन के पुस्तकालय म भी पदार्पण हुआ। वह बहुत ही समृद्ध और सुव्यवस्थित पुस्तकालय है। श्री राड ने आचार्यश्री को अपने इष्ट के रूप मे स्वीकार किया। उनकी भावना देखकर ऐसा लगा मानो किसी पूर्वजन्म के सस्कारो का सूत्र जुडा हुआ है। श्रीमती हेर्टा राड तो श्रद्धा की प्रतिमूर्त्ति लगी। श्री राड, उनकी धर्मपत्नी और दोनो पुत्रियो ने श्रद्धाभाव से आचार्यश्री का अभिवादन किया और वे सब बैठ गए। प्रारभिक औपचारिक वार्तालाप के बाद विभिन्न विषयो पर चर्चा हुई।]

श्री राड—इस वर्ष का चातुर्मास यहा है ?

आचार्यश्री—हा, इस वर्ष वर्षा-काल दिल्ली में ही बिताने का निश्चय किया गया है।

श्री राड—तब तो मेरा यह सौभाग्य है कि समय-समय पर आपक दर्शनों का लाभ मिलता रहेगा।

श्रीमती राड—गत वर्ष कर्जन रोड़ पर आपके दर्शन किये थे। एक वर्ष बाद पुन यह अवसर प्राप्त हुआ है।

श्री राड—जब आप बीकानेर थे, तब वहा से मुझे आमन्त्रण पत्र मिला था। किन्तु कारणवश मैं वहा नही आ सका।

आचार्यश्री—क्या बच्चों का भी पहले कभी सम्पर्क हुआ था ?

दोनों पुत्रियां—हा। हमने कर्जनरोड पर आपके दर्शन किये थे।

आचार्यश्री—क्या इस वर्ष भारत से बाहर जाने का भी काम पड़ा ?

श्रीमती राड—हा, हम जर्मनी गए थे। कुछ दिन पहले ही वापस आए है।

श्री राड—हम मद्रास भी गए थे। अन्तर इतना ही है कि हम मोटर मे चलते हे ओर आप पेदल। आप सारी चीज देखते हैं हम वैसे देख नही पाते।

आचार्यश्री—गत वर्ष हम दिल्ली में थे। उसके पश्चात राजस्थान की लगभग १५०० मील की यात्रा करके पुन यहा आ गए। हम सीमा-प्रदेश मे भी गए थे।

श्री राड—प्राचीनकाल में सरस्वती मरुभूमि मे ही बहती थी। आपने उसी को चरितार्थ किया है।

आचार्यश्री—आज हमारा पुराना परिचय पुन ताजा हो रहा है।

श्री राड—मैं मानता हू कि आपके साथ मेरा अन्तरग और आत्मीय सम्बन्ध बन चुका हे। पूर्वजन्म में आपके साथ मेरा कोई सम्बन्ध रहा हो, ऐसा प्रतीत होता हे।

श्रीमती राड—आप दिल्ली से पूर्व की ओर कितनी दूर जा चुके हैं ?

आचार्यश्री—बगाल में कलकत्ता तक।

श्री राड—मैं भी कुरुवेली गया था। चीनी यात्री ह्वेनसाग की भारत-यात्रा के समय वहा बौद्धों के सौ विहार थे। किन्तु आज वहा कुछ नही है। कुछ प्रतिमाए अवशेष के रूप में अब भी विद्यमान हैं।

आचार्यश्री—[श्रीमती राड से] क्या कभी साध्वियो से मिलने का काम पड़ा ?

श्रीमती राड—गत वर्ष एक बार मिली थी।

श्री राड—आपने मुझे याद किया, इसके लिए मै आपका कृतज्ञ हू। आज मै किसी अन्य कार्य मे व्यस्त होने के कारण अधिक देर नही ठहर पाऊगा। मैं पुन समय लेकर यहा आऊगा। मेरे अनेक प्रश्न भी हैं। आपके पास मुझे उनका समाधान पाना हे।

आचार्यश्री—आज हम वार्तालाप को आगे नही बढ़ाएगे। आपको यहा याद क्यो किया ? उसका उद्देश्य स्पष्ट कर देना हू। आज विश्व की स्थिति उसी प्रकार है, जैसी पिछले वर्षो मे थी। परस्पर अमैत्री बढ़ रही है और विश्वशाति की समस्या ज्यों-की-त्यो है। हमने इस बारे मे चिन्तन किया और उसी चिन्तन को आगे बढ़ाने के लिये यहा आए हैं। हम चाहते है कि चिन्तनशील व्यक्तियो से मिलकर एक ऐसा कार्यक्रम तैयार करें, जिससे विश्व-मैत्री की भावना बढ़े। इसके लिए हमने अणुव्रत को और अधिक व्यापक बनाने की बात सोची है। इसका एक अन्तर्राष्ट्रीय रूप भी तैयार किया हे। विदेशो में यह किस प्रकार प्रसार पा सके, इस पर हमे चिन्तन करना है।

श्री राड—मै इस सम्बन्ध में अवश्य चिन्तन करूगा।

आचार्यश्री—आपके जर्मन मित्रो में से और यहा कौन-कौन है ?

श्री राड—यहा कई मित्र है। आप चाहें तो वे मेरे साथ ही यहा आकर आपसे वार्तालाप कर सकते हैं। यदि इसके लिए कोई अलग समय आप हमें दे सकते हैं तो मैं वैसा प्रयास भी कर सकता हू।

आचार्यश्री—हमारी अपनी बात तो व्यक्तिगत ही अधिक अच्छी रहेगी। उनके साथ किसी दूसरे समय मिलना सभव हो सकेगा।

श्री राड—मैं चाहता हू कि मेक्समूलर भवन में ही एक मीटिंग बुलाई जाए। उसमें मेरे दूसरे जर्मन मित्र भी उपस्थित रहेगे।

आचार्यश्री—ऐसा भी सभव है।

श्री राड—ठीक है, यह और अधिक अच्छा होगा। मैं ३१ जुलाई को आपके सान्निध्य में पुन उपस्थित होऊगा। उस दिन विस्तार से वार्तालाप हो सकेगा।

२९ जुलाई, १९६५
दिल्ली, बिड़ला मन्दिर

२

[मध्याह्न २ बजे मेक्समूलर भवन के डायरेक्टर श्री हाइमो राड पूर्व निश्चित समय पर पुन. आचार्यश्री के सान्निध्य मे उपस्थित हुए। वे समय के बडे पाबन्द थे। निश्चित समय से पाच मिनट पहले ही उपस्थित हो गए। वार्ता का प्रारभ श्री राड ने किया।]

श्री राड—आज मै आपको अपने गुरु के विषय में कुछ बताना चाहता हू।

आचार्यश्री—अवश्य बताइए।

श्री राड—मेक्समूलर भवन से एक पुस्तक जर्मन भाषा में प्रकाशित हुई है। उसमें आपके सम्बन्ध में भी काफी लिखा गया है। बम्बई में एक जर्मन कौंसलर आपसे मिला था। उसने आपके साथ हुई वार्ता का सम्पूर्ण ब्यौरा उस पुस्तक में दिया है। वह कौंसलर भी मेरे गुरु का ही शिष्य था। मेरे गुरु का नाम था रूडोलस्टाइना। जब श्रीमती एनीबेसेण्ट जे॰ कृष्णमूर्ति को अवतार के रूप में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न कर रही थीं तब उनका इस सम्बन्ध में मतभेद हो गया और वे थियोसोफिकल

सोसाइटी से अलग हो गए। वे ध्यान के बहुत बड़े अभ्यासी थे। उनके प्रवचन मुद्रित है जो अंग्रेजी भाषा में भी है। वे पुनर्जन्म में विश्वास करते थे। उनकी मान्यता थी कि मनुष्य मरकर पशु, वनस्पति आदि छोटी जातियों मे नही, देव आदि ऊची जातियों मे ही जन्म ग्रहण करता है।

आचार्यश्री—क्या यह मान्यता ईसाइयों की है?

श्री राड—ईसाई धर्म की यह मान्यता नही है। ऐसा केवल मेरे गुरु ही मानते थे। ईसाइयों में तो कहा जाता है कि मनुष्य का मनुष्य रूप में ही पुनर्जन्म होता है। ईसा एक अवतार थे। उन्होंने आध्यात्मिकता का प्रसार किया। भटके हुए मनुष्यो को राह पर लगाया। मैं मानता हू कि महात्मा ईसा आज भी हमारे बीच व्याप्त है। आध्यात्मिक अनुभूति सर्वत्र हो सकती है। उसमें जैन, बौद्ध, ईसाई आदि धर्म विशेष बाधक नही बनते। भारत में ईसा की अनुभूति मुझे आपके रूप म ही हो रही है। क्या आप भगवान में विश्वास करते हैं?

आचार्यश्री—अविश्वास का कोई कारण नही है।

श्री राड—मेरे अभिमत से सारे ससार की आध्यात्मिकता एक और अखड है। वह विश्व के किसी भी कोने की क्यों न हो, उसमें एकसूत्रता रहती है। जैन बौद्ध, ईसाई आदि किसी भी नाम से उसे अभिहित क्यों न किया जाए, उसके स्वरूप में अन्तर नही है।

आचार्यश्री—आध्यात्मिकता के आधार से ही मानवीय एकता स्थापित हो सकती है।

श्री राड—सामान्य मानदण्डों से कुछ ऊपर उठने पर ऐसा सभव हो सकता है। मेरे गुरु वास्तव में आध्यात्मिक थे। उन्हे दिव्य ज्ञान था। उनका साहित्य मैं आपको दिखाऊगा। ई॰ सन् १९२४ में उनका देहान्त हो गया। उस समय मैं बालक था। हिटलर हमारी आध्यात्मिकता की हत्या करना चाहता था। उस समय ये सारे विचार दिए गए। मेरे गुरु के अनुयायी कितने है, इसके पूरे आकड़े तो मैं आपको नही बता सकता किन्तु इतना निश्चित है कि उनके अनुयायी सारे ससार मे फैले हुए है।

आचार्यश्री—केवल सख्या में हमारा भी विश्वास नही है।

श्री राड—आज सबसे बड़ी खराबी यह हुई है कि आध्यात्मिकता भी धर्म-स्थान में बध गई है।

आचार्यश्री—आप ठीक मेरे विचारो के अनुरूप कह रहे हैं। हमारे गुरु भिक्षु स्वामी ने इसी बात बल दिया था कि धर्म का सम्बन्ध किसी धर्मस्थान से नही है।

अध्यात्म का कोई स्थान हो ही नही सकता ।

(श्री राड को अन्तर्राष्ट्रीय अणुव्रतों का एक प्रारूप दिखाया गया, जिसे उन्होंने पूरा पढ़ा ।)

श्री राड—इसका मानवीय एकता में विश्वास करने का पहला नियम बहुत सुन्दर है । व्यक्तिगत स्वतत्रता के लिए इसमें जिस प्रकार का सकेत है, उसके सबध में मैं ऐसा मानता हू कि प्रत्येक व्यक्ति की स्वतत्रता के सबध में अपनी भिन्न-भिन्न परिभाषा होती है । हिटलर के समय में स्वतत्रता की जो व्याख्या दी गई, उससे हमें एक नया अनुभव हुआ । हम अच्छी तरह समझ गए कि स्वतत्रता क्या है ? अत यहा मानवीय अधिकारों की हत्या नही करूगा—इस भावना का प्रतीक नियम होना चाहिए । इन नियमों में सभी धर्मों और दर्शनो के प्रति सहिष्णुता की जो प्रेरणा दी गई है मैं उसमें विश्वास करता हूँ । किन्तु राजनैतिक दर्शन में नही । हिटलर का भी अपना एक राजनीतिक दर्शन था । मैं उसमें विश्वास नही करता । दूसरों के द्वारा शान्ति और सहिष्णुता का दबाव डालने से सहिष्णु नही बना जा सकता । हिटलर के समय में भी जिनके मन में शान्ति की प्रबल भावना थी, उन्हें देश छोड़ कर जाना पड़ा । अत राजनीतिक दर्शन के विषय में हम सहिष्णु कैसे रह सकते है ?

आचार्यश्री—सहिष्णुता का अर्थ यहा उसे स्वीकार करना नही है ।

श्री राड—चीन ने भारत पर आक्रमम किया । वह आक्रामक है । उसके प्रति सहिष्णु कैसे रहा जा सकता है ? बल-प्रयोग न किया जाए, यह तो ठीक है । किन्तु बल-प्रयोग को सहने का क्या औचित्य है ?

आचार्यश्री—विचारधारा में अन्तर हो सकता है । हमारा दृष्टिकोण सम्यग् रहे । हम गलत को गलत समझे । किन्तु किसी के साथ लड़ना या किसी को बाध्य करना उचित नही है ।

श्री राड—यदि उन विचारों को मानने के लिए बाध्य किया जाए तो ?

आचार्यश्री—आप सहिष्णुता का क्या अर्थ लेते हैं, यह अबतक स्पष्ट नही हुआ । मैं मानता हू कि दो विरोधी विचार वाले व्यक्ति एक दूसरे के प्रति लिखने और बोलने में स्वतत्र हैं । फिर भी उन्हें परस्पर व्यक्तिगत आक्षेप और आक्रमण नही करना चाहिए ।

श्री राड—रूस आदि देशों में कही-कही ऐसा होता है । किन्तु यह दूर की बात है । हमारा देश आज दो टुकड़ों में विभक्त है । मैं कही रहता हू और मेरी बहन कही । इस स्थिति में सहिष्णुता कैसे रखी जा सकती है ?

आचार्यश्री—तो फिर आप क्या करेंगे?

श्री राड—हम कुछ नही कर सकते। पर इतना कह तो सकते हैं कि यह उचित नही है।

आचार्यश्री—इसमें आप पूर्ण स्वतत्र हैं। भारत में जैन, बौद्ध, वैदिक, सिक्ख आदि अनेक धर्म हैं। विचार-भेद होते हुए भी हम सबसे प्रेम पूर्वक मिलते हैं। एक दूसरे को समझने का प्रयास करते हैं। मैं इसे मानवीय गुण मानता हू। सहिष्णुता तो इसलिए रखी जाती है कि व्यक्ति कम-से-कम अपनी शान्ति को खतरे में न डाले। औरों की अशान्ति से क्या मनुष्य स्वय अशात हो जाएगा?

श्री राड—और बातों के लिए तो यह ठीक हो सकता है। पर राजनीतिक दर्शन के प्रति कैसे सभव हो सकता है? शक्ति-प्रयोग का जहा तक प्रश्न है, मैं भी उसे ठीक नही मानता।

आचार्यश्री—सहिष्णुता का अर्थ है—किसी के प्रति आक्रामक प्रयोग नही करना।

श्री राड—किसी को सुनने में तो सहिष्णु होना ही चाहिए। सुनने में भी यदि असहिष्णुता होती है तो मैं उसे मानसिक दौर्बल्य मानता हू। मैं किसी को कष्ट नही दू, यह तो ठीक है। पर उसका कार्य ठीक नहीं है, यह तो कह सकता हू। यदि ऐसा भी नही कह सका तो इसका अर्थ होगा कि मैं सत्य से विपरीत जा रहा हू।

आचार्यश्री—स्पष्टवादिता को मैं बुरा नही मानता। पर उसके साथ सहिष्णुता भी हो। दूसरों की बात छोड़ें, चार्वाक जैसे नास्तिक दर्शन को भी हम सुनते हैं।

श्रीराड—किन्तु दूसरों को सतुष्ट करने की कोशिश नही होनी चाहिए।

आचार्यश्री—सतुष्ट करना तो दूर रहा, मैं मानता हू कि गलत विचारों के प्रति मानसिक अनुमोदन भी नही होना चाहिए।

श्री राड—ससार विचित्रता से भरा है। ससार की विचित्रता सदा से रही है। उसे मिटाया नही जा सकता। हमारा कर्त्तव्य यही है कि उससे ऊपर उठ जाए। तटस्थता और निष्पक्षता का विकास होना चाहिए। ताकि कोई भी बाह्य वस्तु हमारे ऊपर हावी न हो सके। हमें प्रतिदिन सुबह और साय आत्म-निरीक्षण करना चाहिए। मध्यस्थ भाव से चिंतन करने पर सुधार हो या नही, किंतु वास्तविकता का ज्ञान भली प्रकार हो जाता है। हम दोनों पति-पत्नी सदा दिन में तीन बार ध्यान करते हैं। उसमें कई बार सफलता मिलती है, कभी नही भी मिलती। मैं इसमें समय की मर्यादा को विशेष महत्त्व नही देता। ध्यान में तो एकाग्रता का ही महत्त्व है।

आचार्यश्री—क्या पश्चिम के लोग ध्यान की उपादेयता स्वीकार करते हैं ?

श्री राड—पाश्चात्य लोगों का जीवन इतना अधिक व्यस्त है कि यदि ध्यान की परम्परा न हो तो वे जी नही सकते। इससे आत्मतोष मिलता है। भारत तो बहुत शात देश है। यहा इतनी व्यस्तता और व्यग्रता नही है।

आचार्यश्री—यह आपका व्यक्तिगत विचार है या सर्वसम्मत ?

श्री राड—बहुतों के विचार ऐसे ही हैं। ईसाईयों मे भी क्षमाधर्म का विशेष महत्त्व है। २४ दिसम्बर से २६ जनवरी तक ऐसा क्रम रहता है। उस समय बहुत शान्त जीवन होता है।

आचार्यश्री—आज की वार्ता मे एक विषय चिंतनीय रहा कि राजनैतिक दर्शन के प्रति सहिष्णु किस प्रकार बना जाए ? इस पर और भी अधिक गहराई से चिंतन किया जा सकता है।

श्री राड—मुझे इस विषय में काफी कटु अनुभव है। किसी अन्य समय पर आपसे निवेदन करूगा।

आचार्यश्री—अणुव्रत का जो अन्तर्राष्ट्रीय प्रारूप हमने तैयार किया है, उस आधार पर क्या अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कुछ कार्य हो सकता है ? आप इस विषय में क्या सोचते है ? हम एक ऐसा माध्यम बनाना चाहते हैं, जो उपयोगी हो किन्तु भारी न हो तथा उसका व्यापक प्रसार हो।

श्री राड—मैं चाहता हू कि मेरे अन्य जर्मन मित्रों के साथ भी इस प्रश्न पर चिंतन किया जाए। मैं अपना सौभाग्य मानता हू कि दिल्ली-चातुर्मास में समय-समय पर आपके सान्निध्य का लाभ मुझे मिलता रहेगा।

३१ जुलाई १९६५
दिल्ली

आचार्य तुलसी : श्री टेनेटानी

[जापान के भारत स्थित कार्यवाहक राजदूत श्री टेनेटानी सपत्नी आचार्यश्री तुलसी से भेट करने आए। श्री टेनेटानी बहुत ही हसमुख और प्रसन्न व्यक्तित्व के धनी थे।प्रौढ होते हुए भी उनमे बच्चो जैसी जिज्ञासा पाई गई। आचार्यश्री के साथ उनकी वार्ता मे गहरी आत्मीयता की झलक थी, ऐसा प्रतीत होता था मानो वे पूर्व परिचित हो। आचार्यश्री द्वारा किए गये जिज्ञासाओ के समाधानो को बार-बार दुहराकर वे इस प्रकार ग्रहण कर रहे थे, जैसे कोई शतावधानी प्रश्नकर्त्ताओ के प्रश्नो को ग्रहण कर रहा हो। कक्ष मे प्रवेश करते ही उन्होने आचार्यश्री का विनम्रता से अभिवादन किया। प्रारम्भिक औपचारिक वार्ता के बाद जैन परम्परा, दर्शन और इतिहास के बारे म उन्होंने अनेक प्रश्न किए।]

आचार्यश्री—जैनों में मुख्यत दो सम्प्रदाय हैं—दिगम्बर और श्वेताम्बर। वस्त्र नही पहनने वाले साधु दिगम्बर कहलाते हैं। श्वेतवस्त्र धारण करने वालों को श्वेताम्बर कहा जाता है।

टेनेटानी—आप श्वेताम्बर सम्प्रदाय के आचार्य हैं?

आचार्यश्री—हा।

टेनेटानी—क्या दिगम्बर साधु गाव में आते हैं?

आचार्यश्री—हा, दिगम्बर साधु गाव में आते रहते हैं।

टेनेटानी—जैनदर्शन के विषय में मैं आपसे कुछ विशेष सुनना चाहता हू।

आचार्यश्री—जापान में बोद्धधर्म फैला हुआ है?

टेनेटानी—हा।

आचार्यश्री—जैन और बौद्ध दोनों एक ही श्रमण-सस्कृति की दो धाराए हैं।

टेनेटानी—मुझे मालूम है।

आचार्यश्री—विचार के क्षेत्र में जैनधर्म का प्रमुख सिद्धान्त है अनेकान्त। उसका प्रायोगिक रूप स्याद्वाद है। आचार की दृष्टि से अहिंसा और अपरिग्रह उसके दो मुख्य सिद्धान्त हैं। अहिंसा का सूक्ष्म विवेचन जितना जैनधर्म में है उतना अन्य धर्मों

मे नही है। अहिंसा का अर्थ है न किसी प्राणी को मारना और न सताना। केवल स्थूल जीवो को ही नहीं, सूक्ष्म जीवों की हिंसा भी वर्जनीय है।

टेनेटानी—क्या वनस्पति की हिंसा भी वर्जनीय है?

आचार्यश्री—वनस्पति भी सजीव है। हम उसे छू नही सकते। क्योकि उसे भी उतनी ही पीड़ा होती है जितनी अन्य जीवो को।

टेनेटानी—तब आप वृक्ष आदि का उत्पीड़न नही करते?

आचार्यश्री—नही, बिल्कुल नही। हम उसे छूते भी नही।

टेनेटानी—आपने अहिंसा अपरिग्रह और समन्वय—ये तीन बातें बताईं। इसके अतिरिक्त क्या चौथी बात भी कोई है?

आचार्यश्री—जैनदर्शन कर्मवाद मे विश्वास करता है। वह ईश्वरवादी नही है।

टेनेटानी—आप ईश्वर को कर्त्ता या सरक्षक नही मानते?

आचार्यश्री—आत्मा ही कर्मों की कर्त्ता और सरक्षक है।

टेनेटानी—तब ईश्वर क्या है?

आचार्यश्री—हमारी आत्मा बन्धनयुक्त अवस्था में आत्मा है और बन्धन-मुक्त होकर जब अपने मूल स्वरूप में अवस्थित हो जाती है, तब वही परमात्मा कहलाती है।

टेनेटानी—आपके कथन का तात्पर्य यह हुआ कि भगवान हमारे अन्दर है दूसरी जगह नही?

आचार्यश्री—नही हमारे अन्दर भगवान नही हैं। हम खुद ही भगवान बनने वाले हैं।

टेनेटानी—कर्म सिद्धान्त के अनुसार क्या आत्मा शाश्वत है?

आचार्यश्री—केवल आत्मा ही नही, ससार के समस्त पदार्थ शाश्वत हैं।

टेनेटानी—किन्तु यह शरीर तो नाशवान है।

आचार्यश्री—यह तो केवल रूप परिवर्तन है।

टेनेटानी—मैं ऐसा समझा हू कि यह शरीर नही, आत्मा ही गमन करती है। किन्तु मरने के बाद वह कहा जाती है?

आचार्यश्री—दूसरी योनि अर्थात् दूसरे जन्म में।

टेनेटानी—वह वनस्पति या और कुछ भी हो सकती है?

आचार्यश्री—हा।

टेनेटानी—आपके मुख्य नियम क्या है?

आचार्यश्री—जैनधर्म में साधकों की दो श्रेणिया हैं—मुनि और श्रावक। मुनि अहिंसा सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पाचों महाव्रतो का पूर्णरूप मे पालन करते हैं। श्रावकों के लिए उसकी यथाशक्ति सीमा होती है। मुनि सदा पदयात्रा करते हैं। वे अपना सामान भी अपने कन्धों पर लेकर चलते है।

टेनेटानी—क्या आप पैसे का उपयोग नही करते ?

आचार्यश्री—नही बिल्कुल नही।

टेनेटानी—आपके पास जो पुस्तके हैं, वे कहा से आती हैं ?

आचार्यश्री—हम उसे भिक्षा से मागकर लाते हैं।

टेनेटानी—पहनने आदि के कपड़े भी क्या आप भिक्षा से ग्रहण करते है ?

आचार्यश्री—धार्मिक जीवन के लिए जितनी भी आवश्यक चीजे होती है, हम उन्हे भिक्षा से प्राप्त करते हैं। भोजन पानी वस्त्र, पात्र, पुस्तक आदि सभी वस्तुए इसी विधि से प्राप्त की जाती है। इन्हे हमारे लिए खरीद कर दें तो भी हम नही लेते।

टेनेटानी—भोजन के लिए आप आमन्त्रण स्वीकार नही करते हैं ?

आचार्यश्री—नही सहज रूप से जो भोजन तैयार हो, उसी का कुछ हिस्सा गृहस्थ यदि हमें सहर्ष दें तो हम ग्रहण करते हैं।

टेनेटानी—आप क्या खाते है ?

आचार्यश्री—रोटी, दूध, उबली सब्जी आदि।

टेनेटानी—उबला हुआ मास खाते हैं ?

आचार्यश्री—नही, बिल्कुल नही।

टेनेटानी—क्या मछली भी नही ?

आचार्यश्री—नही, कभी नही। हम आमिष का ग्रहण नही करते। शाकाहार भी हमारे लिए बनाया हुआ नही लेते। हम भोजन बनवाते नही है। क्योकि बनाने और बनवाने मे हिंसा की दृष्टि से कोई अन्तर नही होता। इसी प्रकार हमारे पास कोई मकान भी नही होता।

टेनेटानी—तब आप कहा रहते हैं ? और कहा सोते हैं ?

आचार्यश्री—यह मकान हिन्दू महासभा वालों का है। हमने रहने के लिए इसे माग लिया है। हम खुले में नही सोते। जमीन पर, मकान में या वृक्ष के नीचे सोते हैं।

टेनेटानी—यदि मलेरिया फैलाने वाले मच्छर आपको काटने लगे तो आप क्या करेंगे ?

आचार्यश्री—हम उन्हें मारते नहीं।

टेनेटानी—वे आपको मारने लगे तो ?

आचार्यश्री—आपको यह जानकर भी आश्चर्य होगा कि हमारे साधुओं को मलेरिया अपेक्षाकृत बहुत कम होता है। हम अपने में इतना आत्मबल रखते हैं कि किसी के द्वारा सताए जाने पर भी उसे मारते नही। हम ऐसा मानते हैं कि हमें जीने का अधिकार है तो दूसरे को वैसा क्यों नही होना चाहिये ? यह तो मनुष्य का स्वार्थ है कि वह अपने लिए दूसरो को मार देता है।

टेनेटानी—यदि आप कही जगल मे जा रहे हों, वहा कोई शेर आप पर झपटने लगे तो आप क्या करेंगे ?

आचार्यश्री—'अहिंसाप्रतिष्ठाया तत्सन्निधौ वैरत्याग'—जहा अहिंसा की प्रतिष्ठा हो जाती है, वहा वैर का त्याग हो जाता है। तीर्थंकरो के समवसरण मे हिंसक पशु और साधारण प्राणी एक साथ बैठते हैं। वहा निरन्तर वैर रखने वाले प्राणी भी आपसी वैरभाव को भूल जाते हैं।

टेनेटानी—वह झपटने लगे तो ?

आचार्यश्री—फिर भी हम उसे मारते नही, ध्यानस्थ हो जाते हैं। क्योंकि मरना एक बार है।

टेनेटानी—शेर आक्रमण करे तो भी आप उसे नही मारेंगे ?

आचार्यश्री—नहीं, कभी नहीं।

टेनेटानी—यदि चीन आक्रमण करके आपको मारना चाहे तो आप क्या करेंगे ?

आचार्यश्री—जैन साधु उन्हे मारेंगे नही। श्रावक गृहस्थ होते हैं। वे देश के नागरिक है। वे अपनी और अपने देश की सुरक्षा के लिए आक्रान्ता का प्रतिकार करते हैं।

टेनेटानी—मुझे बहुत दिनों से इस विषय में जिज्ञासा थी। आज आपके पास समाधान पाकर पूर्ण सन्तोष हो गया है।

(आचार्यश्री ने श्री टेनेटानी को साधु-साध्वियों की कला-साधना के कुछ नमूने दिखाए।)

आचार्यश्री—साधुओं के काम आने वाली वस्तुए बहुत हल्की होती हैं। इससे

यह अनुमान लगाया जा सकता है कि साधु-साध्वियो का जीवन कितना हल्का होता है। एक साधु तीन से अधिक पात्र अपने पास नही रख सकता।

टेनेटानी—आपके पास ये अधिक कैसे हैं?

आचार्यश्री—कोई साधु दो पात्र रखता है तो उसके बदले में दूसरा साधु एक अधिक रख सकता है। किन्तु कुल मिलाकर प्रत्येक के पास औसत मात्र तीन ही होंगे।

टेनेटानी—क्या साधु विवाह कर सकते हैं?

आचार्यश्री—विवाह किए हुए साधु बन सकते हैं। किन्तु साधु बनने के बाद वैसा नहीं किया जा सकता। साधु स्त्री का स्पर्श भी नही कर सकते।

टेनेटानी—ऐसा क्यों?

आचार्यश्री—यह ब्रह्मचर्य की साधना के लिए है।

टेनेटानी—आपने तो चार बातें बताई थी। ये पाच कैसे हो गई?

आचार्यश्री—यह अपरिग्रह का ही एक भेद है इसे अलग नहीं मानने की भी एक परम्परा रही है

टेनेटानी—क्या स्त्री का स्पर्श भी परिग्रह है?

आचार्यश्री—मानसिक विकार या आसक्ति उसी का एक प्रकार है।

टेनेटानी—आप दूसरों से हाथ नही मिलात? ऐसा क्यों?

आचार्यश्री—हाथ मिलाना सामाजिक व्यक्तियों का शिष्टाचार है। साधुओं की मर्यादा भिन्न होती है। अत हम किसी से हाथ नहीं मिलाते।

(आचार्यश्री ने साधु-चर्या का विस्तार से परिचय देते हुए पाच महाव्रतो और छठे रात्रि भोजन विरमणव्रत पर प्रकाश डाला।)

टेनेटानी—रात्रि का अर्थ क्या सूर्यास्त से सूर्योदय तक है?

आचार्यश्री—हा।

टेनेटानी—आप रात में क्यों नही खाते?

आचार्यश्री—रात्रि में जीव बहुत होते हैं। रात्रि भोजन में हिंसा की सम्भावना रहती है।

टेनेटानी—आप बिजली का प्रयोग क्यों नही करते?

आचार्यश्री—उसमें भी जीव-हिंसा की सभावना रहती है। हम ऐसा नही करते, यह हमारी मर्यादा है। किन्तु कोई अपने लिए वैसा करता है तो उसके सुख में

अवरोधक भी नहीं बनते। हमारा सिद्धान्त है कि धर्म आत्मा की चीज है। वह किसी पर थोपने का तत्त्व नहीं है। बलपूर्वक किसी को अहिंसक बनाना भी हिंसा है। जो लोग बल से धर्म-परिवर्तन कराते हैं, उसे हम हिंसा मानते हैं। जैनधर्म में साधुओं के लिए महाव्रत और गृहस्थों के लिए अणुव्रत का विधान है। प्रत्येक जैन गृहस्थ का कर्तव्य है कि वह किसी पर आक्रमण न करे। इसी प्रकार सत्य आदि व्रतों में भी सीमा होती है।

टेनेटानी—क्या चोरी में भी किसी प्रकार की सीमा होती है?

आचार्यश्री—हां।

टेनेटानी—किस परिस्थिति में चोरी कर सकते हैं?

आचार्यश्री—राह चलते तिनका उठा लेना भी एक प्रकार की चोरी है। किन्तु गृहस्थ ऐसी साधारण चोरी से न बच सके तो कम से कम वह ऐसी चोरी न करे, जिससे लोक मे निन्दा हो। यह चोरी करने का विधान नहीं है, बल्कि उसके बचाव की एक सीमा है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य के विषय में भी सीमा है। यदि गृहस्थ पूर्ण ब्रह्मचारी न बन सके तो कम से कम व्यभिचारी तो न बने।

टेनेटानी—एक जैन गृहस्थ कितनी पत्नियां रख सकता है?

आचार्यश्री—साधारणतया एक से अधिक नहीं रखता।

टेनेटानी—मैं कई ऐसे जैनों को जानता हू, जो दो पत्नियां रखते हैं। क्या इसका कोई विधान है?

आचार्यश्री—जैनधर्म मे गृहस्थों के लिए स्वदार-सन्तोष का विधान है।

टेनेटानी—जो अधिक पत्नियां रखते हैं उसमे क्या धर्म की सहमति है?

आचार्यश्री—वह व्यक्ति की दुर्बलता है। उसमें धर्म की सहमति नहीं है।

टेनेटानी—किसी गृहस्थ की स्त्री बीमार है और उसके बच्चे नहीं हैं तो वह क्या करे?

आचार्यश्री—इस प्रकार की परिस्थिति मे कुछ व्यक्ति दो पत्नियां भी कर लेते हैं।

टेनेटानी—तब तो सिद्धान्ततः ही दो पत्नियां सिद्ध हो गईं।

आचार्यश्री—मैंने कहा कि वह व्यक्ति की दुर्बलता है। दुर्बलता कभी सिद्धान्त नहीं बनती। प्राचीनकाल में एक-एक राजा के सैकड़ों-हजारों पत्नियां होती थी। किंतु वैसा होने मात्र से वह सामान्य सिद्धान्त नहीं बन सकता।

हमने अणुव्रत-आन्दोलन को व्यापक बनाने की सोची है। हम चाहते हैं कि एक ऐसा तत्त्व हो, जो विश्व के हित का हो। इसके लिए हमने कुछ व्रत भी तैयार किये हैं।

टेनेटानी—अणुव्रत का अर्थ क्या है?

आचार्यश्री—अणुव्रत का अर्थ है—छोटे-छोटे व्रत। ये महाव्रत नही है। इनके द्वारा अच्छे जीवन का प्रारम्भ होता है। ये नियम सबके लिए उपयोगी हो सकते हैं।

टेनेटानी—(अन्तर्राष्ट्रीय अणुव्रतों को देखकर) नियम बहुत अच्छे हैं और जरूरी भी हैं।

आचार्यश्री—हम चाहते हैं कि विदेशों में भी इनका प्रसार हो। क्या जापानी जनता इनका स्वागत करेगी?

टेनेटानी—जो व्यक्ति इनके योग्य होगे, वे तो इन्हें अवश्य स्वीकार करेगे। जो सहअस्तित्व मे विश्वास नही करते वे नही मानेगे।

आचार्यश्री—हम मानते हैं कि सब लोग अच्छे नही बन सकते। हम यह कल्पना भी नही करते कि सारा ससार बदल जाएगा। हम इसमें आपका व्यक्तिगत परामर्श चाहते हैं, सरकारी तौर पर नही।

टेनेटानी—आप इनका प्रसार व्यक्तिगत रूप से चाहते हैं या समूह रूप से?

आचार्यश्री—पहले व्यक्तिगत रूप से। फिर समूह में तो स्वत हो जाएगा।

टेनेटानी—मैं इन नियमों से सहमत हू। किन्तु अच्छी बातें समूह की अपेक्षा व्यक्ति में ही अधिक फलित होती हैं। मेरा अनुभव है कि अच्छी बातों का प्रसार शब्दों से नही, कार्यों से सम्भव है। यही कारण है कि आपके जीवन का प्रत्यक्ष प्रभाव जनता पर पड़ता है। ये सिद्धान्त बौद्धों में भी समान रूप से पाए जाते हैं किन्तु जापान के बौद्ध भिक्षु इतने आधुनिक हो गए हैं कि मास, मद्य, धूम्रपान आदि का सेवन करने लगे हैं। कई शादी भी कर लेते हैं। बहुत थोड़े व्यक्ति सयमी रहे हैं।

आचार्यश्री—जो प्रवाह में बह गए, उन्हें भी मार्ग पर लाना है।

टेनेटानी—क्या आपका जापान जाने का कोई कार्यक्रम है?

आचार्यश्री—हमारा तो नहीं, कुछ अणुव्रत प्रतिनिधि वहा जा सकते हैं।

टेनेटानी—आप न तो समुद्र यात्रा कर सकते हैं और न विमान में उड़ सकते हैं तब विदेशों में काम कैसे करेंगे?

आचार्यश्री—हमारे विचार वहा तक जा सकते हैं। उनके वाहक आप बन सकते हैं।

टेनेटानी—इस कार्य में बहुत समय लगेगा। मैं पुन अवसर पाकर इस सबध मे आपके साथ वार्तालाप करूगा तथा इनके प्रसार में यथासभव योग दूगा।

आचार्यश्री—आज सर्वत्र राजनीति का प्रयोग चलता है। धर्म में भी कुछ ऐसा ही चलने लगा है। अत हम सोचते हैं कि एक ऐसे धर्म का स्वरूप सामने आए, जिस पर किसी सम्प्रदाय विशेष की छाप न हो। सार्वजनिकता में बहुत सारे लोग विश्वास करते हैं। हम चाहते हैं कि कुछ भी बनने से पहले मनुष्य अच्छा आदमी बने। इस दृष्टि से आपके अन्य जापानी मित्रों के सुझाव भी उपयोगी बन सकेंगे।

टेनेटानी—मैं इसका पूरा अध्ययन करके आपसे कुछ निवेदन करूगा।

[लगभग एक घण्टे के वार्तालाप में श्री टेनेटानी ने आचार्यश्री के सान्निध्य में बहुत कुछ सीखा और समझा। वे और भी कुछ पाना चाहते थे, किन्तु समयाभाव के कारण वार्तालाप स्थापित करना पड़ा। श्री टेनेटानी और उसकी पत्नी दोनो ने साधु- साध्वियों की कला और लिपि-साधना में गहरी अभिरूचि अभिव्यक्त की।]

आचार्य तुलसी : फ्रेंच शिष्टमंडल

[फ्रेंच विद्यार्थियो के एक शिष्टमडल ने आचार्यश्री तुलसी से भेट की। विद्यार्थी उस समय इजीनियरिंग का अध्ययन कर रहे थे। अध्ययनकाल के बीच ही इन्हे भारत भ्रमण का अवसर मिला। कुमारी एलिजाबेथ ब्रूनर के द्वारा आचार्यश्री के दिल्ली प्रवास का सवाद पाकर वे जैनदर्शन और साधुचर्या के विषय मे विभिन्न जिज्ञासाए दिल मे सजोए समाधान प्राप्त करने के लिए चले आए। शिष्ट मण्डल मे चार विद्यार्थी थे। जिनके नाम क्रमश. बर्नार्ड (प्रथम) बर्नार्ड (द्वितीय) जीनलक और जीनलूप थे।औपचारिक वार्ता के अनन्तर विद्यार्थिया ने प्रश्न पूछे। आचार्य श्री द्वारा प्राप्त कराए गए समाधान से उन्हे बहुत सन्तुष्टि का अनुभव हुआ।]

जीनलूप—हमारे देश फ्रास में भी लोग माला फेरते हैं और प्रार्थना करते हैं। आप माला फेरते समय किसका स्मरण करते हैं?

आचार्यश्री—हम माला के प्रत्येक मनके पर नमस्कार महामन्त्र का स्मरण करते हैं।

जीनलूप—आपके ध्यान का मुख्य विषय क्या है?

आचार्यश्री—मानसिक सकल्प-विकल्प से दूर होना ही समारे ध्यान का मुख्य विषय है।

बर्नार्ड—आप एक विषय पर ध्यान करके मस्तिष्क को शून्य कर देते हैं?

आचार्यश्री—हम प्रारम्भ मे किसी मन्त्र या आकृति आदि का आलम्बन लेते हैं किन्तु आगे चलकर वह भी क्रमश छूट जाता है।

बर्नार्ड—आप अकेले ही ध्यान करते हैं या सबके साथ?

आचार्यश्री—हम अकेले भी करते हैं और सबके साथ भी करते हैं।

बर्नार्ड—आप प्रारम्भ में किसी एक चीज का आलम्बन लेते है और अन्त में आत्म-साक्षात्कार कर लेते हैं?

आचार्यश्री—हा।

बर्नार्ड—क्या इस सम्बन्ध में आपका कोई खास तरीका भी है ?

आचार्यश्री—हा है। हम अपने साधुओं को इसका प्रशिक्षण भी देते हैं।

बर्नार्ड—क्या आज आप भिक्षा के लिए गए ?

आचार्यश्री—मैं तो नही गया, किन्तु मेरे शिष्य गए थे। भिक्षा भी हम वही ग्रहण करते हैं जो सहज उपलब्ध हो। हमारे लिए किसी प्रकार की विशेष तैयारी नहीं होनी चाहिए।

बर्नार्ड—बौद्ध दर्शन के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं ?

आचार्यश्री—जैन और बौद्ध दोनों भारतीय विचारधाराए हैं। ईश्वरवाद के सम्बन्ध में दोनों का एक सिद्धान्त है। क्रियाकाण्ड के सम्बन्ध में भी दोनों लगभग एक मत हैं। इसके साथ आत्मा आदि के सम्बन्ध में कुछ मतभेद भी हैं।

जीनलूप—क्या वे ऐसा विश्वास करते हैं कि हर आत्मा ईश्वर है ?

आचार्यश्री—नही, ऐसा नही है। सब आत्माए परमात्मा बन सकती हैं।

बर्नार्ड—क्या गगा पवित्र नदी है ?

आचार्यश्री—जैन धर्म में किसी नदी या पहाड़ के बारे में पवित्र या अपवित्र के रूप में कोई धारणा नही है। यह अन्य धर्मावलम्बियों की मान्यता है।

जीनलूप—उसमें नहाने से मनुष्य पवित्र होता है। क्या आप ऐसा मानते हैं ?

आचार्यश्री—उसमें नहाने से मनुष्य पवित्र हो जाता है इस प्रकार की मान्यता में कोई गहरा दर्शन नही है। ये पौराणिक काल की बातें हैं।

एलिजाबेथ—पुराने जमाने मे तीर्थ-यात्रा करने में अनेक तकलीफें होती थीं। सभवत इसी कारण उसका विशेष महत्व बताया गया हो ?

आचार्यश्री—यदि गगा मे नहाने मात्र से ही मुक्ति होती तब तो पानी में रहने वाले मछली आदि प्राणी सर्वप्रथम मुक्त हो गए होते।

एलिजाबेथ—पवित्रता मानकर चले तो निश्चित सम्भावना है कि पवित्रता होगी।

आचार्यश्री—केवल मानने से ही काम होता तब तो यहा बैठे-बैठे ही हो सकता था। यह उपनिषत्काल की मान्यता नहीं है।

बर्नार्ड—क्या आप मुखवस्त्रिका इसीलिए बाधते हैं कि आपके द्वारा कोई जीव मरे नही अथवा इसका और भी कुछ उपयोग है ?

आचार्यश्री—इसका उद्देश्य है कि वायु के जीवों की हिंसा न हो। बोलते समय मुह से तेज और गर्म हवा निकलती है। अन्दर से निकलने वाली हवा की टक्कर

जब बाहर की हवा से होती है तब वायु के जीवो की हिंसा होती है। इसी हिंसा से बचने के लिए हम ताली नही पीटते, फूक नही देते और जोर से दौड़ते भी नहीं।

बर्नार्ड—आप हवा में भी जीव मानते हैं?

आचार्यश्री—हा।

जीनलूप—और पानी में भी?

आचार्यश्री—हा, जैनधर्म में पाच प्रकार के स्थावर जीव माने गए हैं— पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति।

बर्नार्ड—तब आप कोई चीज उगा भी नही सकते?

आचार्यश्री—नही। हम वनस्पति को छू भी नहीं सकते।

बर्नार्ड—अहिंसा का सिद्धान्त अच्छा है। पर छोटी-छोटी हिंसा से कैसे बचा जा सकता है?

आचार्यश्री—यह कठिन अवश्य है, किन्तु असभव नही। एक बात और समझें कि सम्पूर्ण हिंसा का त्याग केवल साधुओं के लिये ही होता है गृहस्थों के लिये नहीं?

बर्नार्ड—क्या आप में अवतार भी हुए हैं?

आचार्यश्री—हमारे यहा चौबीस तीर्थंकर हुए है। उनमें अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर थे।

बर्नार्ड—महात्मा ईसा के सम्बन्ध में आपके क्या विचार हैं?

आचार्यश्री—महात्मा ईसा एक विशिष्ट व्यक्ति थे। उन्हाने अपने जीवन में त्याग और सत्य की साधना की। भगवान महावीर और महात्मा ईसा के सिद्धान्ता में काफी समानता है।

बर्नार्ड—कैसे?

आचार्यश्री—महात्मा ईसा ने कहा कि दुश्मना के साथ भी मैत्री का व्यवहार करो और भगवान महावीर ने कहा—किसी को दुश्मन मानो ही मत।

जीनलूप—किसी आदमी को यह पता चले कि अमुक व्यक्ति उसका दुश्मन है, तब उसके साथ तो प्रेम का व्यवहार करना ही चाहिए।

आचार्यश्री—किन्तु किसी को दुश्मन मानो ही मत— यह सिद्धात उससे भी आगे हैं।

बर्नार्ड—क्या आप ईसा को जन मानते है?

आचार्यश्री—उनके सिद्धान्त जैनधर्म से काफी मिलते हैं।

बर्नार्ड—जैन शब्द कब से प्रचलित हुआ?

आचार्यश्री—जैन शब्द महावीर के बाद का है। उससे पहले 'निर्ग्रन्थ' अथवा 'श्रमण' धर्म शब्द था।

बर्नार्ड—क्या आप भारत के सारे जैनों के आचार्य हैं।

आचार्यश्री—जैनों में अनेक सम्प्रदाय है, जैसे— श्वेताम्बर, दिगम्बर आदि। मैं श्वेताम्बर-परम्परा के एक धर्मसघ तेरापन्थ का आचार्य हू।

बर्नार्ड—क्या श्वेताम्बर और दिगम्बर में गम्भीर मतभेद हैं?

आचार्यश्री—दिगम्बर मुनि वस्त्र नही रखते। वे मानते हैं कि वस्त्र रखने वाले को मुक्ति नही मिलती। श्वेताम्बर कहते हैं कि आसक्ति से मुक्ति नही मिलती। यदि आसक्ति नही है तो कपड़े रखने में क्या हानि है? दिगम्बर स्त्री की मुक्ति नही मानते, जबकि श्वेताम्बर स्त्री की मुक्ति मानते हैं।

बर्नार्ड—वर्षा ऋतु पूर्ण होने पर क्या आप सारे भारत में भ्रमण करते हैं?

आचार्यश्री—हम वर्षा ऋतु सम्पन्न होते पर प्राय एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते हैं।

बर्नार्ड—क्या आप गावों में भी रहते हैं?

आचार्यश्री—हमारा अधिक समय गावों मे ही बीतता है।

बर्नार्ड—क्या आप सारे रास्ते रजोहरण से पूजकर चलते हैं?

आचार्यश्री—रजोहरण का उपयोग हम प्राय रात्रि में ही करते हैं। क्योकि उस समय दीखता नही है। दिन मे जहा अपेक्षा हो वहा इसे काम मे लेते हैं।

बर्नार्ड—कोई सर्प किसी साधु को काट खाए तो आप उस सर्प का क्या करगे?

आचार्यश्री—हम साधु का उपचार करेंगे, किन्तु सप को नही मारगे।

बर्नार्ड—आपने ठीक कहा। उसे मारने से होगा भी क्या।

आचार्यश्री—यही हमारे विचार हैं।

बर्नार्ड—कोई पशु किसी काम का न रहे तब उसे मारा जा सकता है क्या?

आचार्यश्री—कोई भी प्राणी बिना काम का नही होता। मा-बाप यदि बूढ़े हो जाए और कोई काम न कर सके तो क्या उन्हें मार दिया जाता है?

बर्नार्ड—क्या आप कभी महात्मा गाधी से मिले हैं?

आचार्यश्री—उनसे मै नही मिल सका, किन्तु हमारे शिष्य उनसे मिले हैं। हमारे

सन्देश अवश्य उनके पास पहुचे हैं।

बर्नार्ड—गाधीजी के सम्बन्ध में आपका क्या विचार है?

आचार्यश्री—गाधीजी पक्के जैन थे। अहिंसा और सत्य का जितना व्यावहारिक प्रयोग उन्होने किया, उतना अन्य किसी ने नही किया।

बर्नार्ड—किन्तु गाधीजी ने ऐसा कभी नही कहा कि वे जैन हैं।

आचार्यश्री—मैं केवल विचार-साम्य के आधार पर ऐसा कहता हू। यह सब जानते हैं कि अहिंसा का सूक्ष्म चिन्तन जितना जैन शास्त्रो में है, उतना अन्यत्र नही है। गाधीजी ने उसका व्यवहारिक प्रयोग किया। इस दृष्टि से हम उन्हे जैन कह सकते हैं।

बर्नार्ड—क्या आप अपने बाल नही काटते?

आचार्यश्री—हम उन्हें काटते नही, किन्तु हाथों से उखाड़ते हैं।

बर्नार्ड—जैन साधु-चर्या बहुत कठिन है।

आचार्यश्री—(मुस्कुराते हुए) क्या इसे स्वीकार करने का मन होता है?

बर्नार्ड—(हसते हुए) इस जन्म में तो नही, किसी अगले जन्म में ही ऐसा सम्भव है।

आचार्यश्री—कठोर मानकर कोई चीज छोड़ी नही जाती। अपने देश के लिए व्यक्ति मर मिट जाता है। तब क्या अपनी आत्मा के लिए ऐसा नही किया जा सकता है?

बर्नार्ड—क्या सब साधुओं की एक ही चर्या है?

आचार्यश्री—हा, सबकी चर्या समान ही है।

बर्नार्ड—क्या आपका इस स्थान के अतिरिक्त और भी कोई स्थान है?

आचार्यश्री—यह स्थान भी हमारा नही है। हम तो इसे मागकर रह रहे है?

बर्नार्ड—क्या आपके यहा दीक्षा की कोई विशेष विधि होती है?

आचार्यश्री—हा, उस विधि के अनुसार जनता के बीच माता-पिता आदि अभिभावकों की सहर्ष अनुमति से दीक्षा होती है।

बर्नार्ड—दीक्षा के लिए क्या योग्यता अपेक्षित है?

आचार्यश्री—साधु जीवन के कष्ट सहन कर सके, यही उसकी योग्यता है। पहले इसका अभ्यास किया जाता है और साथ में ज्ञान भी प्राप्त करना होता है।

बर्नार्ड—क्या साध्वियो के लिए भी यही चर्या है?

आचार्यश्री—हा साधु और साध्वियो की चर्या समान है।

(वार्तालाप के बीच आचार्यश्री ने विद्यार्थियों को साधु-साध्वियों द्वारा निर्मित हस्तकला के कुछ नमूने दिखाए। विद्यार्थियों ने उन्हें देखने में पूरा रस लिया।)

बर्नार्ड—क्या आप इन्हें बेच नहीं सकते।

आचार्यश्री—बेचकर क्या करेंगे ?

बर्नार्ड—इनसे जो पैसा मिलेगा, उससे आप भोजन आदि खरीद सकेंगे।

आचार्यश्री—हम पैसे का उपयोग नहीं करते। भिक्षावृत्ति से ही अपनी आवश्यकता की पूर्ति करते हैं।

बर्नार्ड—क्या हर घर में आपका सत्कार होता है ?

आचार्यश्री—हमें सत्कार और तिरस्कार दोनों ही मिलते हैं। हमारा लक्ष्य रहता है कि हम दोनों स्थितियों में सन्तुलित रहें।

९ अगस्त, १९६६
दिल्ली

आचार्य तुलसी : डॉ. डब्ल्यू. एन. ब्राउन

[विश्व के प्रसिद्ध विद्वान एव पेनेन्सियल विश्वविद्यालय (अमेरिका) के सस्कृत विभाग के अध्यक्ष एव अमेरिकन इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डियन स्टडीज के अध्यक्ष डॉ डब्ल्यू एन ब्राउन ने अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी से जैन आगमो के अनुसधान कार्य और विविध पहलुओ पर लगभग एक घटे तक वार्तालाप किया। वार्तालाप के प्रसग मे महाराष्ट्र विधान परिषद के चेयरमन श्री वी एस पागे, मुनि नथमलजी, मुनि दुलहराजजी, ऋषभदासजी राका, रमणीक भाई एव सुन्दरभाई झवेरी भी उपस्थित थे। डॉ ब्राउन ने आते ही प्रसन्न मुद्रा म हाथ जोडकर वदन किया। उनकी बातचीत यहा प्रस्तुत है।]

ब्राउन—आपके दर्शन किए बहुत वर्ष हो गए। लगभग १३ वर्ष पूर्व आपके दर्शन किए थे।

आचार्यश्री—हा सिक्कानगर में आपसे मुलाकात हुई थी। आप यहा कब आए और बम्बई में कब तक ठहरेंगे ?

ब्राउन—मैं तीस दिसम्बर को यहा पहुचा और चार पाच दिन ठहरकर बीस तारीख को यहा से दिल्ली जाऊगा। वहा से सीलोन होते हुए वापिस अमेरिका पहुचने का कार्यक्रम है। आप आगे किधर पधारेंगे ?

आचार्यश्री—हम यहा से दक्षिण भारत की ओर बढ़ने का विचार रखते हैं।

ब्राउन—आप तो पैदल चलकर इतनी दूर पहुच जाते हैं। किन्तु मे तो पैदल नही चल सकता। आपके साथ कितने साधु हैं ?

आचार्यश्री—हमारे धर्मसघ में लगभग ६५० साधु-साध्विया हैं। किन्तु अभी हमारे साथ ३३ साधु एव ५१ साध्विया हैं।

ब्राउन—क्या ये सब आपके साथ दक्षिण जाएगे ?

आचार्यश्री—नही, इनमें से कुछ साधु-साध्वियों को अन्यत्र भेजने का चिन्तन है। १५ फरवरी को हमारे धर्मसघ की मर्यादाओं का एक विशेष पर्व होने वाला है। उस दृष्टि से ही अभी हमारे साथ इतने साधु-साध्विया हैं। सभव हो तो आप भी

उस समय उपस्थित रहें।

ब्राउन—पिछली बार भारत आया था तो अष्टग्रह की बड़ी चर्चा थी। किन्तु हमारा तो उसने कुछ नही बिगाड़ा।

आचार्यश्री—हम भी इनसे भयभीत नही होते। क्योकि हमारा विश्वास पुरुषार्थ मे है। २८ जनवरी को तेरापथी महासभा कलकत्ता द्वारा जैन आगम विमोचन का कार्यक्रम आयोजित है। इसमें भाग लेकर आप प्रसन्नता अनुभव करेंगे।

ब्राउन—मैं यदि बम्बई में रहूगा तो अवश्य भाग लूगा। क्योकि वह एक स्मरणीय दिवस होगा।

आचार्यश्री—विज्ञान ने आज दुनिया बहुत छोटी कर दी है और साधन भी बहुत सुलभ हैं। व्यक्ति थोड़े समय में ही कहा से कहा तक पहुच जाता है।

[आचार्यश्री ने तब तक के प्रकाशित आगमों मे से दशवैकालिक ग्रथ उनके हाथ मे देकर बताया कि उसमें क्या-क्या विशेषताए हैं।]

ब्राउन—यह बहुत उपयोगी होगा। क्योंकि इसमें मूलपाठ सस्कृत छाया और हिन्दी अनुवाद तीनो हैं। साथ मे समीक्षात्मक नोट्स भी दिए गए है, जो विशेष उपयोगी हैं। क्या आप इनमे प्राचीन भारतीय ग्रथों का भी उपयोग करते हैं। शकर भाष्य मे भी जैन ओर बौद्धों का विवेचन मिलता है।

आचार्यश्री—हा, हम विविध धर्मग्रन्थों को पढ़ते है और उनसे तुलनात्मक अध्ययन करते हुए अनुसधान कार्य चला रहे हैं। उन धर्मग्रन्थों के उद्धरणों का भी उपयोग करते है।

ब्राउन—जैन आगमो मं उत्तराध्ययन महत्त्वपूर्ण एव सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। इसमे कहानिया भी बहुत हैं जो दशवैकालिक में नही हैं।

आचार्यश्री—वस्तुत यदि सभी जैन आगमो का साराश देखना हो तो वह उत्तराध्ययन है। आचाराग मे साधुओं के आचार का विवेचन किया गया है। आपने उत्तराध्ययन का मूल पाठ देखा है क्या?

ब्राउन—(ग्रन्थ देखते हुए) यह बहुमूल्य एव बहुत काम का है। धर्म प्रज्ञप्ति मे विषयवार वर्णन है और दशवैकालिक का समीक्षात्मक अध्ययन भी महत्त्वपूर्ण है। इन ग्रथो के प्रकाशन एव अर्थ की व्यवस्था कोन करता है? क्या आपके श्रावक करते हैं?

आचार्यश्री—यह सारा कार्य 'श्री जैन श्वेताम्बर तेरापथी महासभा कलकत्ता' द्वारा होता है। आर्थिक व्यवस्था का दायित्व भी सस्थान या समाज पर है। हमारे

पास तो एक कौड़ी भी नही है और न इस विषय में हमारा कोई हस्तक्षेप रहता है।

सुन्दरभाई—दूसरे भी कोई सहयोग करना चाहें तो एतराज नहीं है।

आचार्यश्री—आगम-सम्पादन कार्य को हम कई भागों में बाटकर कर रहे हैं। ४५ जैन आगमों का अनुसधान इसी विधा से चल रहा है। इस श्रृखला में लगभग तीन सौ ग्रथ प्रकाशित होने की सभावना है। उनमें से कुछ ग्रथ २८ जनवरी को प्रस्तुत हो जाएगे। आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस कार्य में हमने किसी वेतन- भोगी पडित का सहयोग नहीं लिया है। हमारे ३० साधु-साध्विया निष्ठा से इस काम में सलग्न हैं।

ब्राउन—इतना बड़ा काम कुल तीस सत- सतियों द्वारा हो रहा है और कोई भी वेतनभोगी पडित का सहयोग नही लिया जा रहा है। यह जानकर प्रसन्नता हुई। आप लोग वस्तुत महान कार्य कर रहे हैं।

आचार्यश्री—यह कार्य भी एक स्थान पर बैठकर नहीं चलते फिरते करना पड़ता है। साथ में स्वय की साधना, अणुव्रत का कार्य और दूसरे कार्य भी करने पड़ते हैं। स्वर्गीय डा. राजेन्द्रप्रसादजी ने एक बार दिल्ली में यही पूछा था कि आप यात्रा के साथ-साथ इतना कार्य कैसे कर लेते हैं? मैंने कहा—'हमारा तो चलता-फिरता विश्वविद्यालय और शोध-केन्द्र है।

ब्राउन—आपका हेडक्वार्टर (मुख्यालय) कहा है?

आचार्यश्री—अभी तो यहीं है। जहा हम बैठते हैं वही हमारा प्रमुख केन्द्र हो जाता है। वैसे किसी स्थान पर हमारा क्वार्टर ही नहीं है तो हेडक्वाटर कहा होगा।

ब्राउन—यूरोपीय कॉलेजों में रिसर्च का कार्य चल रहा है। क्या आप उससे परिचित रहते हैं। शूब्रिंग एव जेकोबी ने भी जैन आगमों पर काम किया है।

मुनि नथमलजी—हा हम उनके कार्य से भी अवगत रहने का प्रयास करते हैं। अन्यथा हमारा अनुसधान कार्य अधूरा रहेगा। यूरोपियन विद्वानो ने जितना कार्य जैन आगमों पर किया है, उतना भारतीयों ने भी नही किया। आचाराग म शूब्रिंग ने ही सर्वप्रथम कार्य किया। वैसे ही मैक्समूलर, स्पेन्सर, जेकोबी आदि का योग भी महत्त्वपूर्ण है।

ब्राउन—नि सदेह आप लोग साहित्य का महान कार्य कर रहे हैं। मैं बहुत प्रभावित हू।

आचार्यश्री—हमारे साधु-साध्वियों के लिये सात वर्ष का स्वतत्र पाठ्यक्रम भी चलता है। अब हमारा चिन्तन है कि साधु गृहस्था के बीच में साधको की एक श्रेणी

तैयार हो। इसलिए साधनाकेन्द्र की भी योजना है।

ब्राउन—अणु का अर्थ क्या है ? यह शब्द अनु तो नहीं है ? अनु का अर्थ तो पीछे होता है।

आचार्यश्री—यह शब्द अनु नही है, अणु है। अणु का अर्थ है छोटा। हमारा अणु प्रतिगामी है। हमारे साहित्य की आपके देश में क्या उपयोगिता हो सकती है ?

ब्राउन—प्रत्येक देश के विद्वान इस साहित्य से लाभान्वित होंगे। विभिन्न देशों के पुस्तकालयों में इनका उपयोग विद्वान कर सकेंगे। साथ में अग्रेजी अनुवाद होता तो और अधिक काम का हो सकता था। यूनाइटेड स्टेट्स की लाइब्रेरी काग्रेस भारत की सारी पुस्तकें खरीदती है। उसके अतर्गत पचास-साठ पुस्तकालय हैं जो हजारों डालर उस सस्था को देते रहते हैं। वैसे अमेरिकन ओरियण्टल सोसायटी के सदस्य जैनदर्शन मे विशेष रुचि रखते हैं और वे यह साहित्य खरीद भी सकते हैं। इसलिए उस सोसायटी के मत्री से इस सबध में वार्तालाप करना चाहिए।

आचार्यश्री—जैन आगमों पर सदियों से जो कार्य नही हुआ है, वह हम कर रहे हैं। इस काम का लाभ विदेशी विद्वानों को भी मिलना चाहिए।

ब्राउन—यह सही है और ओरियण्टल सोसायटी के सदस्य इससे अच्छा लाभ उठायेंगे।

आचार्यश्री—आपको भी इससे बराबर सपृक्त रहना चाहिए। आप तक यह सारा साहित्य पहुचेगा तो इसके बारे मे आप भी अपने विचारों से दूसरा को अवगत कराते रहें।

ब्राउन—सारा साहित्य देखना तो कठिन है। वैसे आत्मा बहुत चाहती है परन्तु शरीर नहीं कर पाता। फिर भी थोड़ा बहुत काम जरूर करूगा।

आचार्यश्री—आप २८ जनवरी जरूर याद रखें। क्योंकि हमारा यहा आना, आपसे मिलना और इस काम का होना—ये तीनो बातें एक साथ बहुत कठिन थीं। किन्तु एक सयोग मिल गया है। इसलिए उस अवसर पर आप उपस्थित रह सके तो और भी अच्छा रहेगा।

ब्राउन—यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है। उस अवसर पर आ सका तो मैं अपने को भाग्यवान मानूगा।

१२ जनवरी, १९६८
मुम्बई

आचार्य तुलसी : डॉ. टेड

[अमेरिका के शोध विद्वान डॉ टेड एव उनकी धर्मपत्नी श्रीमती मिनरी वायन ने आचार्यश्री तुलसी के दर्शन किए। डॉ टेड खाद्य पदार्थों की पोष्टिकता के बारे मे 'होसल्ली ग्राम' मे शोधरत थे। मुमुक्षु बहन की शोभायात्रा देखकर उनके मन मे एक विकल्प उठा— एक बहन ससार के अतुल ऐश्वर्य का परित्याग कर सन्यास स्वीकार कर रही है। इसे सन्यस्त करने वाले गुरु कैसे होगे ? इस जिज्ञासा ने उस दम्पत्ति को आचार्यश्री तक पहुचा दिया। साक्षात्कार के बाद हुई बातचीत का कुछ अश यहा प्रस्तुत है।]

आचार्यश्री—हम जैन साधु हैं। अपनी साधना करते हैं। लोगों को भी सत्पथ दिखाते हैं। अणुव्रत हमारा मिशन है। उसके माध्यम से हम नैतिक मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास कर रहे हैं। आपके देश में नैतिकता के प्रचार की जरूरत है या नही ?

डॉ टेड—अमेरिका मे छोटी-छोटी अनैतिकता को काइ अवकाश नही है। क्योंकि ऐसा करने वाले को तत्काल जेल की सजा हो जाती है। वहा करोड़ों व अरबों रुपयो का गबन होता रहता है।

आचार्यश्री—अमेरिकी जनता पर ईसाई पादरियों का क्या कोई असर है ?

डॉ टेड—आज अमेरिका स्वतत्र रूप से विकसित हो रहा है। वहा अण्डरग्राउण्ड चर्चो का विकास हो रहा है। वृद्ध लोग जरूर कुछ चर्चों में जाते हैं। किन्तु युवा पीढ़ी किसी भी परम्परा को मानने को तैयार नही है। वहा के लोग परम्परावादी नहीं हैं। वे परम्पराओं मे स्पष्टत अविश्वास व्यक्त कर सकते हैं। वहा व्यवहार में दिखावा नही है। लोग जो कुछ करते हैं, स्पष्टता एव स्वतत्रता से करते हैं। समाज का व्यक्तिगत जीवन पर कोई दबाव नही होता।

आचार्यश्री—अमेरिका आदि देशो में क्या अब नए क्रिश्चियन बन रहे हैं ?

डॉ टेड—ऐसा तो विशेष कुछ नही है। ईसाईयत के प्रति अब उतना आकर्षण

भी नही है।

आचार्यश्री—युवापीढ़ी के आकर्षण केन्द्र कौन हैं ? क्या हिप्पी, बीटल्स आदि को उनका आकर्षणकेन्द्र माना जा सकता है ?

डॉ टेड—आज अमेरिका एक विचित्र दौर से गुजर रहा है। वहा ग्यारह वर्ष का बच्चा जब हाईस्कूल म पढ़ने लगता है तो वह स्वतत्र चिंतक बन जाता है। अपने पूर्वजो द्वारा बनाए मार्ग पर चलना वह पसन्द नही करता। वहा प्रत्येक बालक को स्वतत्र रूप से अपना मार्ग तय करने की स्वतत्रता है। वह अपने मित्रो और सहपाठियों के सहयोग से जीवन का मार्ग निर्णीत करता है।

आचार्यश्री—क्या वे इससे स्वच्छन्द नहीं बनेगे ?

डॉ. टेड—ऐसा सभव नही है। क्योकि इससे उनमें एक नई सामाजिकता पनप रही है, जो अमेरिका के जीवन मे नही के बराबर थी। वहा की पीढी भारतीय परम्परा की ओर झुक रही है।

आचार्यश्री—उन्हे यदि जैनिज्म मिल जाए तो शायद वे झूम उठें।

डा. टेड—जैनिज्म से आपका क्या तात्पर्य है ?

आचार्यश्री—अहिंसा में विश्वास करना जैनिज्म है। अर्थ के प्रति अनासक्त रहना जैनिज्म है।

डॉ टेड—अमेरिका की जनता का हिंसा, युद्ध आदि में विश्वास नही है। वहा की जनता वियतनाम में हो रहे युद्ध के खिलाफ है। आज वहा सम्पत्ति के प्रति कोई आकर्षण नही है। वहा अहिंसा और अनासक्ति के विचारों को विस्तार देना कठिन नही है।

आचार्यश्री—क्या आप जैनधर्म के तत्त्व को जानना पसन्द करेंगे ?

डॉ टेड—मेरा किसी व्यक्ति के धर्म में विश्वास नही है। मैं व्यक्ति की शक्ति में विश्वास अवश्य करता हू। व्यक्ति पवित्र जीवन से स्वय का विकास कर सकता है। उसे किसी अन्य शक्ति की आवश्यकता नहीं। मेरे मे इतनी शक्ति है कि मैं दूसरों को उपकृत कर सकता हू। तब किसी के पास याचना करने का क्या तात्पर्य ?

आचार्यश्री—इन विचारों के मूल स्रोत आपको जैनधर्म में बहुत मिलेंगे। आप जैनधर्म का अध्ययन कर गहराई मे पैठने का उपक्रम करें।

डॉ टेड—जैनधर्म में अहिंसा पर बल दिया है। लेकिन औषधि आदि निर्माण के लिए हिंसा की जाती है तब उसे अहिंसक कैसे माना जा सकता है ?

आचार्यश्री—अणुव्रती के लिए ऐसा निषेध नही है। महाव्रती ऐसी हिंसा नहीं कर सकता।

डॉ टेड—क्या जैनधर्म दूसरे देश के सत्य के बारे में विश्वास कर सकता है?

आचार्यश्री—क्यो नही, वह सत्य को आकाश की तरह व्यापक मानता है। अपने घर में आकाश के होने का विश्वास करने का अधिकार हर व्यक्ति को हो सकता है। किन्तु सारे विश्व का आकाश उसके घर मे ही सिमट गया है, यह मानना अज्ञान ही होगा।

३ मई १९६९
मैसूर

आचार्य तुलसी : डुगलस. ए. सेचर

[अमेरिका निवासी डुगलस ए सेचर लेटिन, प्राचीन ग्रीक, हिब्रू, सस्कृत आदि भाषाओ के विशिष्ट विद्वान थे। उन्होने भारत, लका और पाकिस्तान मे भ्रमण कर वहा की सस्कृति का अध्ययन किया तथा ऐतिहासिक स्थल देखे। भारत के आध्यात्मिक ज्ञान का यूरोप, अमेरिका तथा केनेडा में प्रचार करना उनके जीवन का प्रमुख उद्देश्य रहा। इसी उद्देश्य की सम्पूर्ति हेतु उन्होने सस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी तथा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी मे हिन्दी और सस्कृत का गभीर अध्ययन किया। जब उन्होने आचार्यश्री तुलसी एव जैन विश्वभारती, लाडनू के विषय मे सुना, वे जैन विश्वभारती मे आचार्यश्री के दर्शन करने पहुचे।]

आचार्यश्री—आपका क्या नाम है ?

डुगलस—अमेरिकन नाम डुगलस ए सेचर है और भारतीय नाम त्रिभुवन है।

आचार्यश्री—त्रिभुवन किसे कहते हैं, क्या आप जानते हैं ?

डुगलस—तीन लोक का नाथ।

आचार्यश्री—नही, त्रिभुवन का तात्पर्य है तीन लोक।

(बातचीत में आचार्यश्री ने डुगलस को वर्धमान नाम से सम्बोधित किया।)

डुगलस—वर्धमान किसे कहते हैं ?

आचार्यश्री—वर्धमान शब्द वृद्धि या समृद्धि का वाचक है। भगवान महावीर का नाम वर्धमान था।

डुगलस—नमस्कार महामत्र में प्रयुक्त 'अरहताण' शब्द का क्या अर्थ है ?

आचार्यश्री—सस्कृत भाषा में 'अर्ह' धातु पूजा और योग्यता के अर्थ में प्रयुक्त होती है। जो सर्वाधिक पूज्य एव सर्वाधिक अर्हता सम्पन्न होता है उसे अर्हत् कहते हैं।

डुगलस—सिद्ध किसे कहते हैं ?

आचार्यश्री—अर्हत् जीवन्मुक्त होते हैं। जब वे शरीरमुक्त होते है तब सिद्ध हैं।

डुगलस—क्या कोई जीवन्मुक्त हुआ है ?

आचार्यश्री—भगवान महावीर जीवन्मुक्त थे।

डुगलस—जीवन्मुक्त से आपका क्या तात्पर्य है ?

आचार्यश्री—जो वीतराग और वीतद्वेष, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी होते हैं, वे जीवन्मुक्त कहलाते हैं।

डुगलस—क्या वीतराग और वीतद्वेष होना सभव है ? क्या कोई पूर्ण अहिंसक बन सकता है ?

आचार्यश्री—अनेकान्त की दृष्टि से पूर्ण अहिंसक होना भी एक सापेक्ष सत्य है। उसके साथ जो अपेक्षाए व सीमाए हैं, उनको ध्यान में रखकर यह स्वीकार किया जा सकता है कि पूर्ण अहिंसा का पालन सभव है। इसी आधार पर हम मानते हैं कि हमारा धर्मसघ अहिंसक जीवन जीता है। हम उठते-बैठते सोते-जागते अहिंसा के प्रति सजग रहते हैं। हमारा रजोहरण भी अहिंसा की अनुपालना में निमित्त बनता है। पूर्ण अहिंसा की साधना करने वाला साधक ही एक दिन वीतरागता या वीतद्वेषता के शिखर तक पहुचता है।

डुगलस—क्या पुनर्जन्म एक तथ्य है। क्या आपके पास उसके ठोस प्रमाण हैं ?

आचार्यश्री—पुनर्जन्म एक प्रामाणिक सत्य है। हमारे सभी ऋषिमुनि इस विषय में एकमत हैं। इस युग मे भी परामनोविज्ञान के आधार पर पुनर्जन्म के बारे में शोध हो रहा हे। आधुनिक वैज्ञानिक भी अब पुनर्जन्म के बारे में सोचने लगे है।पिछले जन्म की स्मृति रखने वाले कुछ व्यक्ति मेरे सम्पर्क मे भी आए हैं।

डुगलस—क्या जैनदर्शन भगवान के अवतारों मे विश्वास करता हे ? यदि नही तो विश्वहित के दायित्व का निर्वाह कौन करता है ?

आचार्यश्री—ईसाई, इस्लाम, हिन्दू आदि धर्मों की अवतार विषयक मान्यताओ से जैनदशन सहमत नही है। ऐसे परमात्मा के अस्तित्व में हमारा विश्वास नही हैं, जो किसी कार्य को अपनी इच्छानुसार करे तथा सारे विश्व का नियन्ता हो।

डुगलस—यदि ऐसा है तो ससार के दु खी प्राणियो पर कृपा कर उनका कोन उद्धार करेगा ? जगत के उद्धार के लिए ईश्वरीय कृपा की अनिवार्य आवश्यकता है।

ईसाई ईसामसीह को जगत का उद्धारक मानते हैं। वैदिक धर्मावलम्बी दस अवतारों की कल्पना करते हैं। भविष्य में कल्की अवतार उनको अभीष्ट है। इसी प्रकार ईसाई धर्मावलम्बी भी भविष्य में होने वाले अवतार में विश्वास करते हैं। क्या जैन धर्म में ऐसे अवतार स्वीकृत नही हैं? यदि नहीं हैं तो ससार के दु खी जीवों का दु ख कैसे मिटेगा?

आचार्यश्री—जैनधर्म में जगत्कर्ता के रूप में ईश्वर स्वीकृत नही है। वह प्रत्येक व्यक्ति मे ईश्वरत्व स्वीकार करता है। कोई भी व्यक्ति अपने ही प्रयासों से ईश्वर बन सकता है। जैनधर्म की मान्यता है कि कुछ आत्माए समय-समय पर अपना आध्यात्मिक विकास करते हुए तीर्थंकर के पद तक पहुच जाती हैं। तीर्थंकर शब्द का अर्थ है—तीर्थ अर्थात धर्मसघ की स्थापना करने वाला महापुरुष। वह वीतराग एव वीतद्वेष होता है तथा करुणा से आप्लावित होकर मानवजाति के उद्धार मे सतत प्रवृत्त रहता है। तीर्थंकर अहिंसा धर्म की देशना करता है, जो सभी प्राणियों के लिए हितकर है तथा निर्वाण का एक मात्र मार्ग है। सभी जीव अपने ही कर्मों के कारण सुख-दु ख का भोग करते हैं। उन्हें सुख या दुख देने वाली कोई अन्य ईश्वर जैसी शक्ति नही है।

डुगलस—आप एक स्थान में रहकर इतने बड़े सघ का नियत्रण कैसे करते हैं?

आचार्यश्री—हमारा धर्मसघ शाश्वत नियमों के आधार पर स्वचालित है। उन नियमो का यथाविधि पालन करवाना मेरा दायित्व है। मैं स्वय भी इन नियमो से नियन्त्रित हू। सघ का कोई साधु या साध्वी आचार्य की स्वीकृति के बिना कोई भी कार्य नही करती। आपने अभी-अभी जो वन्दना का कार्यक्रम देखा, वह भी नियत समय पर प्रात एव साय सभी साधु-साध्विया के लिए करणीय है चाहे वे कहीं हो।

डुगलस—आपके वन्दना कार्यक्रम का तात्पर्य क्या है? क्या आप किसी दिव्य शक्ति से इष्ट वस्तु की प्रार्थना करते हैं।

आचार्यश्री—इस वन्दना में हम अपनी आत्मा की उपासना करते हैं अन्य किसी व्यक्ति विशेष की नहीं। अपनी आत्मा के विकास हेतु वन्दनीय पुरुषों को वन्दना कर हम अपने अह का विसर्जन करते हैं। किन्तु न तो हम किसी से किसी वस्तु की याचना करते हैं न वैसी याचना मे विश्वास करत है और न ही किसी ऐसी दिव्य शक्ति मे विश्वास रखते हैं जो हमारी कामनाओ की पूर्ति कर सके। इसलिए

इसका नाम प्रेयर—प्रार्थना न रखकर वन्दना रखा है। हमारी वन्दना का अंग्रेजी अनुवाद उपलब्ध है। यदि आप उसे ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे तो आपके इन सभी प्रश्नों का समाधान आपको सहज ही मिल जाएगा।

डुगलस—क्या अपने धर्म के समुचित प्रचार के लिए आप विदेश यात्रा पसन्द नही करते?

आचार्यश्री—विदेश यात्रा का हमारे धर्म में निषेध नही है, पर पदयात्रा का नियम अवश्य है। यह नियम हमारे धर्म के प्रचार मे बाधक नही है। हमारे साधु-साध्वियो द्वारा हजारों मील की पदयात्रा की जाती है। मैं स्वय भी पदयात्रा करता हू। हमारे देश का क्षेत्रफल भी ही इतना विस्तृत है कि सतत प्रयत्नशील रहकर भी हम सब स्थानो पर पहुच नही पाते। हमारे पड़ोसी देश बर्मा में साधुओ को भेजने की योजना हमने बनाई थी। किन्तु वीसा नही मिल सका। अनुकूल परिस्थितियो में धर्म-प्रचार के निमित्त विदेश यात्रा हमें इष्ट है।

[श्री डुगलस ने श्रद्धानत हो कर आचार्यश्री के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धा अभिव्यक्त की तथा अवसर मिलने पर जैन विश्वभारती में आकर वहा के शोधकार्य मे अपना सहयोग प्रदान करने की उत्कट अभिलाषा व्यक्त की।]

१९८०
जैन विश्वभारती, लाडनू

आचार्य तुलसी : अमेरिकी छात्र-छात्राएं

[आचार्य श्री तुलसी तेजोमय जीवन में विश्वास करते है। वे तैजस की आराधना करते ह, इसलिए सदा जीवत रहते है। व्यक्तित्व की जीवन्तता उसे मिलती है, जो पारुप के राजपथ पर चलता है। पौरुष आचार्यश्री के कर्तृत्व की पहली पहचान है। उन्होने अपने कर्तृत्व का प्रभाव उन सब लोगो पर छोडा, जो प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी-न किसी रूप म उनके सम्पर्क म आ गए। जिन लोगो न आचार्यश्री को एक बार भी देखा, सुना या पढा, वे उनक व्यक्तित्व से अभिभूत हुए बिना नही रहे। उनके चिन्तन मे सार्थक ओर शाश्वत मूल्यो की सुगन्ध है। वह सुगन्ध देश को इस छोर स उस छोर तक सुगन्धित बनाती हुई परदेशी धरती तक पहुच चुकी है।

बहुतबार अनेक देशो के अधिकृत व्यक्तियो ने आचार्यश्री को अपने-अपने देश म आने क लिए आमन्त्रित किया। किन्तु आचायश्री एक ऐसे धर्मसघ के आचार्य है, जिसकी अपनी सीमाए हे, अपने आदर्श है ओर अपने कार्यक्रम ह। आचार्यश्री के सार्वजनिक और सार्वभाम कार्य मानव मात्र के निश्रेयस को ध्यान म रखकर किए जा रहे है। इस व्यापक और उदार दृष्टिकोण के कारण अनेक देशा के अनेक अनेक लोगा ने आचार्यश्री से साक्षात्कार किया और अपनी जिज्ञासाआ का समाधान पाया।

फ्रेड्स वर्ल्ड कॉलेज साउथ एशिया केन्द्र से तरह अमरीकी छात्र छात्राए २७ अक्टूबर, ८९ को जैन विश्वभारती आए। उनके निदशक श्री इ पी मेनन एव शैक्षणिक निदेशक श्री एस के डे भी उनके साथ थे। उन विद्यार्थियो म ध्यान तथा सादगीपूर्ण जीवन के प्रति सहज आकर्षण था। उल्लेखनीय बात यह है कि उस कॉलज के विद्यार्थी छह-छह महीने के लिए दूसरे दशो की यात्रा पर जाते है। वहा वे उन देशो की सभ्यता, सस्कृति, धर्म आदि के बारे म अध्ययन करते ह।

अमेरिकन छात्र छात्राए तीन दिन तक जैन विश्वभारती मे रहे। उन्होने एक-एक क्षण का अच्छा उपयोग किया। उन्होने बहुत कुछ देखा, जाना, समझा और प्रयोग भी किया। उन्होने त्रिदिवसीय कार्यक्रमो मे सर्वाधिक महत्त्व दिया आचार्यश्री तथा युवाचार्य श्री के सान्निध्य मे बीते क्षणो को। २९ अक्टूबर को दीपावली का दिन था। उस दिन प्रवचन के बाद आचार्यश्री ने उन विद्यार्थियो को मुक्त समय दिया। उन्होंने उनके उपपात में अपनी जिज्ञासाओ के पख खोले और आचार्यश्री ने बहुत सक्षेप म उनको समाधान दिया। उस समय हुई बातचीत को यहा अविकल रूप से उद्धृत किया जा रहा है।]

कु॰ कैथरीन—आचार्यजी! आध्यात्मिक दृष्टि से स्त्री और पुरुष मे कोई अन्तर नही माना जाता। साधु-साध्विया अध्यात्म के प्रति आस्थावान है। इस अपेक्षा से उनमे कोई अन्तर नही रहना चाहिए। फिर साध्वी आचार्य क्यो नही बन सकती?

आचार्यश्री—जैन परम्परा मे साध्वी के आचार्य बनने पर कोई प्रतिबन्ध नही है।

कु॰ कैथरीन—क्या कभी किसी साध्वी को आचार्य बनाया गया?

आचार्यश्री—इतिहास मे ऐसा कोई प्रसग उल्लिखित नही है। पर कुछ ऐसी घटनाए अवश्य घटित हुई है, जो साध्वी की क्षमता को प्रकट करती हैं। वे घटनाए बताती है कि साध्विया कुछ महान आचार्यों की गुरुणी या शिक्षिका अवश्य रही हैं। जन धर्मसघा की परम्परा म जो सात पद मान्य रहे हैं उनमें 'प्रवर्तिनी' का पद केवल साध्वियो के लिए है।

कु॰ कैथरीन—क्या प्रवर्तिनी साध्वी आचार्य के बराबर होती है?

आचार्यश्री—आचार्य आदि सातो पदो के अपने-अपने दायित्व हैं। अपने क्षेत्र में प्रवर्तिनी का पद भी उतना ही गरिमापूर्ण हे। यह चिन्तन का एक बिन्दु हे। दूसरे बिन्दु से देखा जाए तो ऐसा लगता है कि आचार्य, उपाध्याय आदि पद अब पुराने पड़ गए है। इस वर्ष हमने अपने धर्मसघ मे दो नए पदों का सृजन किया है—महाश्रमण और महाश्रमणी। इन दोनों पदो पर नियुक्त साधु और साध्वी के कार्यक्षेत्र में कोई अन्तर नही है।

कु॰ जीना—मेरा प्रश्न इस चर्चा से हटकर है। मै जानना चाहती हू कि मृत्यु क्या है? इसके सम्बन्ध में आपके क्या विचार है? युवावस्था मे मृत्यु के सम्बन्ध में आपकी जो धारणाए थी वही अब है अथवा वर्तमान परिस्थितियों के सन्दर्भ मे उनमें कोई परिवर्तन भी आया है?

आचार्यश्री—जन्य जीवन का अग है तो मृत्यु भी जीवन का अग है। जन्म जीवन का आदि छोर है तो मृत्यु उसका आखिरी छोर है। जैन शास्त्रों के अनुसार मृत्यु के तीन प्रकार हैं—अवाछनीय, वाछनीय और ससार से छुटकारा देने वाली। बाल मृत्यु अवाछनीय है। यह अज्ञानावस्था में होती है। पडित मृत्यु वाछनीय है। क्योंकि इसमें सयम की प्रधानता रहती है। निर्वाण वह मृत्यु है, जो ससार से छुटकारा दे देती है। मृत्यु के सम्बन्ध में हमारी धारणा में कोई बड़ा अन्तर नही आया है। यह बात अवश्य समझ मे आ रही है कि मृत्यु को भी सुखद बनाया जा सकता है। जन्म प्रसन्नता का विषय है। इसी प्रकार मृत्यु भी प्रसन्नतापूर्वक हो सकती है। हमारे यहा मृत्यु को महोत्सव माना जाता है अगर वह समाधि से समन्वित हो।

डॉ प्रकाश बोरा—मृत्यु का भय सदा बना रहता है। इस भय से मुक्त होने का क्या उपाय है ?

आचार्यश्री—मृत्यु से मनुष्य को भय क्यों हो ? वह तो एक निश्चित घटना है। आकस्मिक रूप से कोई अवाछनीय परिस्थिति या अप्रिय प्रसग की उपस्थिति हो तो मनुष्य कदाचित् भयभीत हो सकता है। पर जो निश्चित है, उससे घबराने का कोई औचित्य नही है।

अनशनपूर्वक मृत्यु अभय का उत्कृष्ट उदाहरण है। वह मृत्यु नही महामृत्यु है उसमें व्यक्ति साहस के साथ मौत का मुकाबला करता है। भय मौत का हो अथवा अन्य किसी परिस्थिति का वह अपने आप में हिंसा है। अहिंसक कभी भयभीत नही होता। अहिंसा के साधक को कभी भयभीत नही होना चाहिए। भय आखिर भय ही है, फिर चाहे वह बीमारी का हो अभाव का हो, शत्रु का हो कष्ट का हो या मृत्यु का हो। भयभीत व्यक्ति हिंसा करता है। वह किसी दूसरे की नहीं स्वय की हिंसा करता है। हमारे यहा मृत्यु का जो दर्शन है, पश्चिमी लोग उसकी कल्पना भी नहा कर सकते। जो व्यक्ति अभय होकर शान्ति के साथ मृत्यु का सामना करने के लिए तैयार रहते हैं मौत उनको कभी भी नही डरा सकती।

प्रश्न हो सकता है कि क्या अनशन आत्महत्या नही है ? जनशास्त्रो के आधार पर मेरा यह निश्चित अभिमत है कि आत्महत्या से अनशन सर्वथा भिन्न है। आत्महत्या हिंसा है, पाप है। उसके पीछे आवेश भय अभाव, निराशा आदि कारण रहते है। जबकि अनशन का एक मात्र हेतु है आत्मशुद्धि। तार्थकरा ने अनशन करने की आज्ञा दी है। तीर्थकरों की आज्ञा उसी कार्य में होती है जो करणीय होता है धम होता है। इसलिए हमारी यह स्पष्ट अवधारणा है कि अनशन और आत्महत्या एक नहीं है।

जोनायन—कहा जाता है कि लोक सीमित है और अलोक असीमित है। मैं जानना चाहता हू कि यह लोक सीमित क्यों है ? और अलोक मे क्या है ?

आचार्यश्री—आकाश असीम होता है। उसकी कोई सीमा नही है। वह दो भागो में विभक्त है—लोकाकाश और अलोकाकाश। लोक षड् द्रव्यात्मक होता है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल—ये पाच द्रव्य जिस आकाश में हों, वह लोक कहलाता है। अलोक में आकाश के अतिरिक्त दूसरा कोई द्रव्य नही होता।

जॉन—इस विश्व मे अनेक प्राणी हैं। वे सहज रूप से हिंसा में प्रवृत्त होते हैं। जीने के लिए हिंसा करनी पड़ती है। सीमा सुरक्षा के लिए हिंसा करनी पड़ती है। कुछ और कारणों से भी हिंसा करनी पड़ती है। प्राणीमात्र मे हिंसा की जो सहज प्रवृत्ति है उसका क्या कारण है ?

आचार्यश्री—हिंसा का सबसे बड़ा कारण है ससारी होना। जो ससारी होता है वह कर्म मूर्च्छा और अह से बधा हुआ है। जब तक ये रहेगे व्यक्ति हिंसा करेगा। जब तक वह हिंसा करेगा ससार बना रहेगा। कुछ लोग ही ऐसे होते हैं जो मूर्च्छा और अह को तोड़ते है कर्मों के आवरण को हटाते हैं और हिंसा से दूर रहते हैं। इसके लिए बहुत गहरी साधना और तपस्या की आवश्यकता रहती है।

जॉन—ससार मे जितने प्राणी हैं, उन सबको जीने का अधिकार है। जीने के लिए सबको भोजन चाहिए। मनुष्य को अपना भोजन चाहिए और पशु को अपना। अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए कोई शेर किसी प्राणी पर झपटता है। क्या इसमे भी कोई बुराई है ?

आचार्यश्री—शेर को जीने का अधिकार है। वह जीना चाहता है तो क्या दूसरे प्राणियों में जिजीविषा नही है ? अपने जीवन के लिए अन्य प्राणियों के प्राण लूटने म औचित्य क्या है ? बड़े प्राणियो की तो बात ही क्या कीड़ो-मकोड़ों और पेड़-पोधो मे भी जीने की इच्छा रहती है।

तत्त्व यह है कि सब जीव जीना चाहते है, अपने अस्तित्व की सुरक्षा चाहते है। अन्य प्राणियो में अज्ञान होता है। मनुष्य ज्ञानी होता है। उसमें समझ और विवेक की शक्ति है। वह ऐसी हिंसा क्यो करे जिसके बिना उसका काम चल सकता है। जब मनुष्य अपनी हिंसा को त्याज्य मानता है तो वह दूसरो की हिंसा क्यो करे ? हिंसा अन्तत हिंसा है वह मनुष्य की हो, पशु की हो, पक्षी की हो अथवा दूसरे छोटे-बड़े जीवो की हो। मनुष्य के पास सोचने की शक्ति है। इसलिए उसको हिंसा

से बचने के लिए प्रतिबोध दिया जाता है। मनुष्य अनर्थ हिंसा से अपना बचाव कर सकता है। अशक्य हिंसा वह भी नही छोड़ सकता। पर अशक्यता के आधार पर हिंसा का सिद्धान्त सही नही हो सकता।

जॉन—कर्म का सिद्धान्त केवल मनुष्य पर ही लागू होता है या ससार के सभी प्राणी कर्म से परतन्त्र हैं?

आचार्यश्री—ससार के सब प्राणी कर्म करते हैं और उन सबको कर्म का फल भोगना होता है। कर्म के क्षेत्र मे किसी प्रकार का पक्षपात नही चलता।

रॉबर्ट—अहिंसा की बात मेरी समझ में नही आ रही है। किसी भी प्राणी को क्रोध या घृणा के आवेश में मारना गलत है। पर सामान्यत हिंसा-विरति कैसे सभव है? हम सृष्टि को देखते हैं। उसमे सृजन होता रहता है और विनाश भी होता रहता है। सृजन और विनाश को ही दूसरे शब्दो मे जन्म और मृत्यु कहा जाता है। हमारे सामने यह धरती है। इस पर एक पेड़ उगता है, बड़ा होता है और नष्ट हो जाता है। इसमें धरती का क्या दोष है? दूसरी बात—हम कोई भी पदार्थ काम मे लेते हैं, वह हमें जीव के विनाश बिना नही मिल सकता। इस पूरी पृष्ठभूमि के साथ मेरी जिज्ञासा यह है कि किसी जीव का प्राकृतिक रूप से विनाश होता है और किसी जीव को घृणा या आसक्ति से मारा जाता है। इन दोनों स्थितियों में अन्तर क्या है?

आचार्यश्री—दो प्रकार की परिस्थितियों क अन्तर को समझने से पहले हिंसा और अहिंसा की परिभाषा को समझना आवश्यक है। इस ससार में प्रतिदिन ही नही, प्रतिपल लाखो-करोड़ों जीव मरते हैं, यह हिंसा नही है। इसी प्रकार लाखों-करोड़ों जीव जन्म लेते हैं, यह दया नही है। इस प्रसग में आचार्य भिक्षु का मन्तव्य मननीय है। उन्होंने कहा—

जीव जीवै ते दया नही, मरै हो ते तो हिंसा मत जाण।
मारणवाला नै हिंसा कही, नही मारै हो ते तो दया गुणखाण॥

प्राकृतिक रूप से जीव का जीना और मरना न दया है न हिंसा है। दया का सम्बन्ध है सावधानी से, अप्रमाद से। हिंसा का सम्बन्ध असावधानी, प्रमाद, आसक्ति तथा क्रूरता के साथ है। निष्कर्ष के रूप में यह माना जा सकता है कि आवेश, आसक्ति या प्रमादवश किसी भी जीव का प्राणवियोजन हिंसा है। स्वाभाविक मृत्यु हिंसा नही है। हम अपनी विधि से चलते हैं। उस समय कोई प्राणी हमसे टक्कर खाकर मर जाए, उसका दोष हमको नही है।

रॉबर्ट—आपने बताया कि सावधानी से चलते समय टक्कर खाकर कोई प्राणी

मर जाए तो चलने वाला हिंसा का अपराधी नही होता। यह बात मेरी समझ मे आ गई। पर अब तक भी मैं यह नही समझ पाया हू कि आप सावधानी से चलते हैं फिर भी हाथ में रजोहरण क्यो रखते है ?

आचार्यश्री—यह भी हमारी सावधानी के लिए है। इसके द्वारा जीवों को बचाना हमारा उद्देश्य नही है। हमारा प्रयत्न स्वय को बचाने के लिए है। दिन के उजाले मे यदि हम आख मूदकर चलते हैं तो हमारे द्वारा कोई जीव मरे या नहीं, हम हिंसा करते हैं। रात के अन्धेरे मे भी हम सावधानी से चलें, इसलिए रजोहरण का उपयोग करते हैं।

मेक्स—हमने अतीन्द्रिय ज्ञान की चर्चा सुनी है। इस ज्ञान के द्वारा आत्मा से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो सकता हे, यह भी सुना है। क्या इसकी प्रतीति कराने के लिए कोई व्यावहारिक उदाहरण दिया जा सकता है ? क्या बन्द दरवाजे के भीतर की वस्तु या घटना का ज्ञान किया जा सकता है ?

आचार्यश्री—अतीन्द्रिय ज्ञान के अस्तित्व मे किसी प्रकार का सन्देह नही है। आज भी कुछ लोगो को भविष्य में होने वाली घटना का पूर्वाभास हो जाता है। यह ज्ञान मतिज्ञान और श्रुतज्ञान से आगे का है। इसकी प्राप्ति आज भी सभव है। इसके साधनो में सयम और एकाग्रता का अभ्यास बहुत सीधा और कार्यकारी साधन है। प्रेक्षाध्यान की साधना से सयम और एकाग्रता—दोनों फलित हो सकते है। इसमें समझने की बात इतनी ही है कि कोई भी अतीन्द्रिय ज्ञान कही बाहर से नही आता। ज्ञान आत्मा के भीतर है। आत्मा स्वय ज्ञानस्वरूप है। पर वह आवृत है। आवरण को हटाना है, ज्ञान स्वय प्रकट हो जाएगा।

[आचार्यश्री के सान्निध्य में प्रश्नोत्तर का क्रम चल रहा था। उस समय कुछ साधु-साध्विया भिक्षा की झोलिया लेकर वहा पहुच गईं। आचार्यवर ने विद्यार्थियों को जैन मुनि की चर्या में भिक्षा प्राप्त करने की प्रक्रिया बताते हुए कहा—]

आचार्यश्री—जैन मुनि भोजन करते हैं। पर उनके लिए कहीं भोजनशाला में या किसी घर में विशेष भोजन नही बनता। घर-घर में सहज रूप से भोजन निष्पन्न होता है। साधु-साध्विया वहा जाती हैं और थोड़ा-थोड़ा भोजन ले आती हैं। शर्त एक ही है कि वह भोजन हमारे लिए बना हुआ नही होना चाहिए और अभक्ष्य—मास-मदिरा आदि नही होना चाहिए।

रॉबर्ट—आप यह कहते हैं कि हम अपने लिए बनाया हुआ भोजन नही लेते। क्योंकि उसमें हिंसा होती है। पर यह बात हमारी समझ में नही आती। भोजन बनाने

वाला अपने लिए बनाए या आपके लिए बनाए, हिंसा तो उसमें होगी ही। गृहस्थ द्वारा अपने लिए बनाया गया भोजन लेकर क्या आप उस हिंसा में शामिल नही हो जाते हैं ?

आचार्यश्री—अहिंसा एक तत्त्व है। उसकी परिभाषा और सीमा को समझना आवश्यक है। उसके साथ एक दूसरा तत्त्व है खाद्य-सयम। साधु के लिए भोजन तैयार करना विहित हो तो अनेक चीजें बनाई जा सकती हैं। सामान्यत साधु को जिस वस्तु की जरूरत हो, भिक्षा मे वह मिल भी सकती है और नही भी मिल सकती। वैसी स्थिति में उसे अपनी इच्छाओं पर नियन्त्रण करना होता है। क्योकि सहज निष्पन्न पदार्थ भी मागकर लेने की विधि नही है। इसीलिए एक साधु और भिखारी की भिक्षा में बहुत बड़ा अन्तर है। साधु की भिक्षा गोचरी कहलाती है। वह गाय की तरह थोड़ा-थोड़ा भोजन ग्रहण करता है और अनासक्त भाव से खाता है। भिखारी भीख मागता है बेगिंग करता है। भिखारी को गृहस्वामी देना नही चाहता। वैसी स्थिति में वह गिड़गिड़ाता है, दीनता प्रकट करता है। भिक्षु को गृहस्वामी जितना देना चाहता है, वह उससे कम लेता है और न देने की स्थिति में दीन-हीन नही बनता। भिखारी घर पर आता है तो उसे कोई आदर नही दिया जाता। भिक्षु के घर मे आने पर व्यक्ति धन्यता का अनुभव करता है। कुल मिलाकर यह माना जा सकता है कि जैन मुनियों की भिक्षाविधि से अहिंसा, अपरिग्रह, खाद्यसयम आदि अनेक बातें फलित होती हैं।

२७-२८ अक्टूबर, १९८९
जैन विश्वभारती, लाडनू

आचार्य तुलसी : एच. लियोपाल्ड

[राजस्थान यूनिवर्सिटी के प्रो० यूनिथान और उनकी धर्मपत्नी के साथ नीदरलेड (हालैण्ड) के राजदूत श्री एच लियोपाल्ड और उनकी धर्मपत्नी ने आचार्यश्री तुलसी के दर्शन किए। प्रवेश करते ही उन्होने विनतभाव से आचार्यश्री का अभिवादन किया। राजस्थान के जिला एव सत्र न्यायाधीश श्री सोहनराजजी कोठारी ने राजदूत महोदय का परिचय आचार्यश्री से करवाया तथा आचार्यश्री, तेरापथ धर्मसघ, मुनिजीवन, अणुव्रत आदि के सबध मे आगन्तुको को जानकारी दी। राजदूत महोदय ने आचार्यश्री का परिचय पाकर कहा—'आपके दर्शन पाकर मै अपने आपको सम्मानित अनुभव कर रहा हू।' वे लोग लगभग पचास मिनट तक वहा ठहरे। उस अवधि मे उन्होने अपनी जिज्ञासाओ का समाधान पाया, जैन दर्शन के बारे मे विस्तार से समझा और साधु-साध्विया द्वारा निर्मित कलात्मक वस्तुओ का निरीक्षण किया। आचार्यश्री और राजदूत महोदय के मध्य हुए वार्तालाप का मुख्य अश यहा उद्धृत है।]

आचार्यश्री—आपको यहा आने की प्रेरणा किससे मिली ?

राजदूत—(प्रो. यूनिथान की ओर सकेत करते हुए। यहा की यूनिवर्सिटी मे पढ़ाते हैं प्रो यूनिथान। इन्होने मुझे बताया कि यहा आचार्यश्री तुलसी जी आए हुये हैं और मैं आपसे मिलू।

आचार्यश्री—इससे पहले आपने जैन मुनियों को देखा है ? उनके बारे में कुछ सुना है ?

राजदूत—बाईस वर्ष पहले मैं जयपुर गया था। तब कुछ जैन मुनियो को देखा था। उसके बाद मे मैं माउण्टआबू, राणकपुर आदि जैन तीर्थस्थानों मे गया था। अभी मैं श्रवणबेलगोल जाकर आया हू। इन तीर्थस्थानो में जाने से मुझे थोड़ी थोड़ी जानकारी होती रही है।

आचार्यश्री—एक राजदूत की हैसियत से भी आपके लिये भारतीय सस्कृति और धर्मों का ज्ञान आवश्यक हो जाता है।

राजदूत—आचार्यजी ! वर्तमान विश्वस्थिति के बारे में आपकी क्या विचारधारा है ?

आचार्यश्री—विश्व की स्थिति में उतार-चढ़ाव आते रहते हैं । उसे लेकर चिंतित होने की जरूरत नहीं है, पर उस ओर जागरूक अवश्य रहना है । अध्यात्म पर भौतिकता हावी न हो जाए, इसके लिये कुछ प्रयत्न भी करना है । आज जो स्थिति है, वह सतोषप्रद नही है । भौतिकता का प्रभाव बढ़ रहा है और आध्यात्मिक अभिरुचि क्षीण हो रही है । इस बात में हमारा विश्वास नही है कि सारा ससार कभी आध्यात्मिक हो जाएगा । पर अध्यात्म और भौतिकता के बीच का सतुलन सेतु ही टूट जाए, यह स्थिति अच्छी नहीं हो सकती । आज ससार में जितना दु ख और अशाति है उसका मूलभूत कारण जीवन के प्रति भौतिकताप्रधान दृष्टिकोण है जबकि सुख और शाति का एकमात्र रास्ता अध्यात्म है । अध्यात्म जीवन के यथार्थ दर्शन को प्रस्तुति देता है और वहा उपस्थित होने वाले अवरोधों को समाप्त कर चिन्तन को प्रशस्त बना देता है ।

राजदूत-पत्नी—आप कभी हिन्दुस्तान से बाहर भी गए हैं ?

आचार्यश्री—नही, हम बाहर नहीं गए और न हमारे मन मे ऐसा कोई आकर्षण ही है कि हम भारत से बाहर जाकर काम करें । क्योकि काम करनेवालों के लिए यहा भी काम बहुत है । हम बाहर नही गए, इसका अर्थ यह भी नहीं कि हम वहा की स्थितियों से अवगत नही । भारत की यात्रा पर आनेवाले विदेशी हमसे मिलते रहते हैं । वहा की स्थिति का अध्ययन कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुचा हू कि आज एक विपरीत प्रवाह चल रहा है । पश्चिम के लोग सदा से भारत के प्रति आशावान रहे हैं । वे यहा से अध्यात्म की प्रेरणा पाते हैं । मानसिक सत्रास और घुटन की स्थिति में उनको भारत की धरती पर सुख और शाति के आसार दिखाई देते हैं । किन्तु आज के भारतीय शाति की खोज मे पश्चिम की ओर आकृष्ट हो रहे हैं । यह दृष्टिकोण का अतर है ।

राजदूत—वहा के लोगो मे अब भी भारत के प्रति आकर्षण है ।

आचार्यश्री—मेरा विश्वास है कि आज भी भारत मे ऐसे व्यक्ति हैं जो अध्यात्म की ऊचाई तक पहुचे हुए है । वे विश्व को शाति का सदेश दे सकते हैं ।

राजदूत—हमारे देश के बहुत लोग मानते है कि भारत मे अध्यात्म का जो सदेश मिलेगा, वह अन्यत्र दुर्लभ है ।

आचार्यश्री—पश्चिम में भौतिकता का जो प्रवाह है, वह टी. वी., रेडियो आदि आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणो के माध्यम से भारत मे भी पहुच गया। पश्चिम के लोग जिस स्थिति से अघा रहे हैं, भारतीय उस ओर खिंचे जा रहे हैं। यह अच्छी स्थिति नही है। भारत की आध्यात्मिक परम्परा और उन्नत सस्कृति से बहुत कुछ सीखा जा सकता है।

राजदूत—अब तो हमारे सामने जो कुछ है, वह मिला-जुला रूप है। भारत के अध्यात्म मे भौतिकता आ रही हे और पश्चिम के भौतिकवाद पर अध्यात्म का प्रभाव बढ़ रहा है।

आचार्यश्री—अध्या म किसी की बपौती तो है नही जो देश विशेष की सीमाओ में बधकर रह जाए। यह देश और काल से परे एक अखण्ड तत्त्व है। यह किसी भी समय कही भी हो सकता है। विगत शताब्दियों सहस्राब्दियों से यह भारत की थाती बनकर रहा हे। हिन्दुस्तान के पास अपनी लबी परपरा है। आज भी यहा कुछ व्यक्ति ऐसे मिल जाते हैं जो प्राचीन परपरा और सस्कृति के सवाहक हैं। इस दृष्टि से ऐसा कहा जाता है कि भारत अध्यात्म-प्रधान देश है।

राजदूत—जैनधर्म की प्रमुख बाते क्या है ?

आचार्यश्री—जैनधर्म के अनुसार प्रत्येक आत्मा की स्वतत्र सत्ता है। वह ईश्वर का अश नही हे। उसका अस्तित्व और विकास किसी परम सत्ता पर निर्भर नहीं है। हर आत्मा का त्रैकालिक अस्तित्व हे। वह है थी और रहेगी। उसका जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा, सुख दु ख आदि सब उसके द्वारा कृत कर्मो की निष्पत्तिया हैं। वह जैसा कर्म करती है, वैसा ही फल उसे भोगना होता है। इस जन्म में नही तो अगले जन्म में उसे अपने कर्मों का फल भोगना होगा।

दूसरी बात यह है कि इस सृष्टि का कर्त्ता कोई नही है। ससार सदा था और सदा रहेगा। इसका 'सल्फ एग्जिस्टेस' हे। ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता मानने से कुछ नई समस्याए खड़ी हो जाती हैं जिनका समाधान नही मिलता। सृष्टि का कर्त्ता मानने से इसकी आदि स्वीकार करनी होगी, जब कि इसका अस्तित्त्व अनादिकाल से है।

ससार मे धर्म का तत्त्व भी शाश्वत है। वर्तमान जैनधर्म का जो रूप है वह चौबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर की परपरा का प्रतिनिधित्व करता है। भगवान महावीर ने दो प्रकार की साधना बताई—महाव्रत साधना, और अणुव्रत साधना। महाव्रत की साधना वे करते हैं, जो घर-परिवार छोड़ ससार से विरक्त हो मुनि बन

जाते है। वे पाच महाव्रतों का पालन करते हैं और एक विशिष्ट चर्या वाला जीवन जीते है। अणुव्रत की साधना उन लोगो के लिए है, जो घर में रहते हुए धार्मिक जीवन जीना चाहते हैं। पाच अणुव्रतों की साधना करने वाले लोग श्रावक कहलाते हैं। यह मार्ग सीधा है, पर है लबा। वह मार्ग कठोर है, पर छोटा है। अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार इन मार्गों को स्वीकार किया जाता है।

जेन साधना के सबध में भ्राति है कि जेनधर्म शरीर को कष्ट देने में धर्म मानता हे। पर मैं कहना चाहता हू कि शरीर के साथ हमारी दुश्मनी नही हे। यह तो हमारी साधना मे सहयोगी बनता है। इसीलिए इसकी सार सभाल की जाती है।

राजदूत—आपने बताया कि व्यक्ति को अपने कर्मों का फल अगले जन्म में भी भोगना पड़ता है। इसका मतलब आदमी का पुनर्जन्म होता है क्या?

आचार्यश्री—हा पुनर्जन्म निश्चित रूप से होता है। पर यह जरूरी नही हे कि आदमी अगले जन्म मे आदमी ही हो। वह आदमी हो सकता है पशु हो सकता है पक्षी भी हो सकता हे, और कुछ भी हो सकता है। जन्म ओर मृत्यु के इस प्रवाह मे बहते-बहते एक समय एसा भी आ सकता हे जब पुनर्जन्म समाप्त हो जाए। निर्वाण, मुक्ति या शाश्वत आनद उपलब्ध हो जाए। उसी के लिए हम साधना कर रहे हैं। आप भी उसी आनद की खोज में हैं। इस ससार मे ऐसा कौन व्यक्ति होगा जिसे शाश्वत सुख पाने की चाहत न हो।

राजदूत—मने सुना हे कि जैनधर्म को मानने वाले कुछ लोग मूर्तिपूजक है और कुछ अमूतिपूजक। आप उनमे से कौन है?

आचार्यश्री—हम अमूर्तिपूजक हैं।

राजदूत—(आश्चर्य व्यक्त करते हुए) क्या आप मूर्तियो को नही मानते? उनमें कितना आर्ट भरा पड़ा है।

आचार्यश्री—हम मूर्तियो को नही मानते, यह बात नही है। मूर्तियो को मूर्तिया तो मानते ही हैं। यह भी मानते है कि उनमे आर्ट है इतिहास हे, सस्कृति हे ओर आलबन रूप में वे एकाग्रता का निमित्त भी बन सकती है। पर जिस रूप में मूर्तियो की पूजा चल रही है उसमें हमारा विश्वास नही है। हमारी दृष्टि मे पूज्य वही हो सकता हे, जिसमें ज्ञान दर्शन और चारित्र हों।

राजदूत—अच्छा अब मैं समझ गया कि मूर्ति के अस्तित्व मे आपकी कोई असहमति नहीं हे, पर उसकी पूजा-उपासना म आपका विश्वास नही है।

आचार्यश्री—हा, आपने ठीक समझा है।

राजदूत—आपका यह चिन्तन मुझे भी ठीक लगता है। मैं आपसे और भी बहुत कुछ जानना चाहता हू। सभव हुआ तो मैं दिल्ली में भी आपसे मिलूगा। आपने हमको इतना प्रतिबोध दिया, इसके लिए हम आपके बहुत कृतज्ञ हैं। बहुत-बहुत धन्यवाद।

आचार्यश्री—आपने इतनी जिज्ञासाए कर ज्ञान-चर्चा को आगे बढ़ाया इस दृष्टि से हम भी आपको साधुवाद देते हैं।

२५ मार्च

आचार्य तुलसी : जापानी शिष्टमंडल

[प्रेक्षाध्यान का प्रशिक्षण पाने के लिए जापान से एक शिष्टमडल आया। जापानी भाई-बहिनो को जब भी आचार्यश्री तुलसी की उपासना का अवसर उपलब्ध होता, वे अपने जिज्ञासु मन को खोलकर रख देते। उनकी उत्सुकता और ग्रहणशीलता दोनों के साथ समय की नियमितता दर्शनीय और ग्रहणीय थी। सहज विनम्रता का गुण उनम विशेष रूप से परिलक्षित हुआ। ८२ वर्षीय एक जापानी भाई ने अपना अनुभव सुनाते हुए कहा—'मै आप लोगों के शात, सौम्य और निर्मल जीवन को देखकर मुग्ध सा बन जाता हू।']

जापानी भाई—हम जापानी अत्यधिक श्रम करते हैं। हम समझते हैं कि हमने बहुत तरक्की की है। सही माने में आर्थिक दृष्टि से हम आगे भी बढ़े हैं। पर हमारे यहा मृत्यु बहुत जल्दी होती है। प्राय पैंतीस-चालीस वर्ष में लोग चले जाते हैं। हम उससे कैसे उबर सकते हैं?

आचार्यश्री—अतिश्रम मनुष्य को क्षीण करता है। यह एक वास्तविक सचाई है। किन्तु श्रम न किया जाए, यह भी ठीक नही है। अपेक्षा है श्रम के साथ-साथ बढ़ रहे तनाव को दूर करने के लिये नियमित कायोत्सर्ग की। कोई व्यक्ति कितना ही श्रम करे, यदि वह कायोत्सर्ग करता रहेगा तो दीर्घजीवी बन सकेगा। यदि गति के साथ स्थिति का सतुलन रख लिया जाए तो दुष्परिणाम से बचा जा सकता है। प्रेक्षाध्यान तनाव को मिटाने का अमोघ उपाय है। उसका प्रतिदिन प्रयोग किया जाए।

जापानी भाई—आज हम पारमार्थिक शिक्षण सस्था में मुमुक्षबहनों और साध्वियों के पास गए। उनके हसते-खिलते सौम्य चेहरों को देखकर बहुत प्रभावित हुए। उनकी आखों में हमें आकर्षण दिखाई दिया।

आचार्यश्री—यह सारा त्याग और सयम का प्रभाव है। दूसरी बात—ये ध्यान की साधना भी करती हैं। तीसरी बात—ये निश्चिन्त जीवन जीती हैं। अपने गुरु और लक्ष्य के प्रति पूर्णत समर्पित हैं। इन्हें किसी प्रकार की चिंता करने की जरूरत नही। ये अपनी साधना और अध्ययन में दत्तचित्त रहती हैं।

श्रीमती ओरागाई—आचार्य जी। मैं चाहती हू कि अपनी लड़की को यहा भेजू। वह यहा की सस्कृति की इस अमूल्य धरोहर से परिचित बने और अपने जीवन में उतारे। आज जापानवासियो को इसकी बहुत जरूरत है।

जापानी भाई—आचार्य श्री। हमें भारतीय लोगो में बहुत-सी अच्छाइया दिखाई देती हैं। लेकिन यहा समय की नियमितता नही है। आपके यहा सारे काम समय पर होते हैं। आम लोगों से आप में यह भिन्नता कैसे हुई?

आचार्यश्री—हमें भगवान महावीर से बोधपाठ मिला है। महावीर ने कहा—'काले काल समायरे'—साधु अपनी समग्र चर्या— खाना, पीना, सोना आदि सब समय पर करे। इस बोधपाठ को हमने केवल पढ़ा ही नही, आत्मसात् किया है। हमारे देश के लोग समय के कम पाबद है। यह अच्छी बात नही है। अनेक लोग 'इडियन टाइम' कहकर बात को टालना चाहते हैं। यह मुझे बहुत बुरा लगता है। इससे भारत की छवि बिगड़ी है। हमारे यहा समय की नियमितता पर कभी-कभी तो इतना ध्यान दिया जाता है कि यदि एक मिनिट भी लेट हो जाए तो प्रायश्चित्त करना पड़ता है। समय की नियमितता के सस्कार गहरे बनाने की दृष्टि से हमने एक गीत की रचना की है—

समय का अकन हो।
जागे शुभ सस्कार, समय का अकन हो॥

(आचार्यवर से भावपूर्ण गीत के पद सुन जापानी लोग झूम उठे।)

जापानी भाई—हम आपके यहा आकर आपके आभामडल से, व्यक्तित्व से और सिद्धान्तों से प्रभावित ही नही होते, प्रसन्नता का भी अनुभव करते हैं। यहा आने के बाद मन करता है कि यही बस जाए। यहा से जाते समय मन कैसा-कैसा हो जाता है। आपके मन पर किसी के आने जाने से प्रसन्नता और उदासी नही आती। इसका क्या कारण है?

युवाचार्यश्री—आचार्यश्री एक महान साधक हैं। आपने लबे समय तक साधना की है। इसलिए आपके पवित्र मानस पर छोटी-छोटी बातों का कोई असर नही होता। यह सत्य है कि व्यक्ति इन सयोग-वियोगों के साथ अपनी सवेदना को जोड़कर ही सुख-दुख का अनुभव करता है। यदि आप इनसे उपरत होना चाहे तो आचार्यश्री जैसी लबी साधना करनी होगी। फिर आपको भी दुख की अनुभूति नही होगी।

जापानी भाई—भारत में जैनों की सख्या बहुत है। हिन्दुओं की सख्या और

भी अधिक है । क्या आपको हिन्दुओं की ओर से कठिनाइया नही आती है ? हम यह अनुभव करते हें कि ओकी आश्रम में जितने सदस्य है, सख्या बहुत कम है। हम मास आदि का परिहार कर रहे हैं । इसलिए भी हमारी अलग पहचान है । लेकिन बहुसख्यक लोगो की ओर से हमे कठिनाइयो का सामना करना पड़ रहा है । आपके सामने फिर कठिनाइया कैसे नही आएगी ?

आचार्यश्री—कठिनाइयों का जहा तक प्रश्न है, जीवन मे आई है, आती रहेंगी। हम उन्हे समाहित करते रहें हें । मेरी दृष्टि में हिन्दू धर्म नही, समाज है, सस्कृति है । जैन बौद्ध, वैदिक ये धर्म हे । जेनो की गणना भी हिन्दू समाज में होती है । यदि हिन्दू का धर्म मान लिया जाए तो जैन हिन्दू नही होगे । समाज और सस्कृति के सन्दर्भ म हम भी हिन्दू हैं । हमारे इन विचारों को देश के बौद्धिक वर्ग ने सहमति प्रदान की हे । हिन्दू शब्द को धर्म के साथ जोड़ने से ही अधिक समस्या पैदा हुई है । हम अपना दृष्टिकोण व्यापक रखते हें । इसलिए आने वाली समस्याओं को सुलझा लेते है ।

जापानी बहनें—हमे आपके सान्निध्य मे दूर-दूर रहना पड़ता है । आज हम साध्वियो के यहा गईं । वहा उनके बिल्कुल पास में बैठी । उनके साथ हम घुलमिल गइ । बड़ा आनद आया ।

आचार्यश्री—यहा जो स्थिति आपकी बनती है साध्वियो के पास हमारे भाइयो की बन जाती है ।

मैं चाहता हू कि जैन विश्वभारती और ओकी आश्रम के सदस्य परस्पर सम्पर्क बनाए रखे । साधना-पद्धतियो का विनिमय करते रहें और अध्यात्म की ऊर्जा प्राप्त करते रहें ।

जापानी भाई—हम समण-समणियों के कार्यक्रम व्यापक रूप से आयोजित करते आए है । भविष्य मे इस दिशा मे और अधिक जागरूकता से काम करेंगे ।

00

साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

जन्म विक्रम सवत् १९९८, श्रावण कृष्णा त्रयोदशी, कलकत्ता

दीक्षा विक्रम सवत् २०१०, आषाढ शुक्ला पूर्णिमा केलवा (राजस्थान)

साध्वीप्रमुखा-पद विक्रम सवत् २०२८, माघ कृष्णा एकादशी गगाशहर (राजस्थान)

महाश्रमणी-पद विक्रम सवत् २०३५, माघ शुक्ला सप्तमी, राजलदसर (राजस्थान)

शिक्षा तेरापथ धर्मसघ म प्रचलित पाठ्यक्रम की स्नातकोत्तर परीक्षाओ मे विशिष्ट योग्यता प्राप्त कर नये कीर्तिमान स्थापित किये।

हिन्दी सस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओ की अधिकृत विदुषी। कुशल लेखिका एव कवयित्री। आगम सम्पादन-कार्य म वर्षो से सलग्न। आपकी प्रमुख कृतिया ह—

- आचार्य तुलसी दक्षिण के अचल म
- पाव पाव चलने वाला सूरज
- जब महक उठी मरुधर माटी
- बहता पानी निरमला
- परस पाव मुसकाई घाटी
- दस्तक शब्दा की
- स्मृति के दर्पण पर
- सरगम
- सासो का इकतारा
- इतस्तत
- सत्य का पछी विचारो का पिजरा

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्यश्री तुलसी की अनेक कृतियो का आपने बडी कुशलता के साथ सम्पादन किया है।